खंड: 2, अंक: 6, जनवरी–मार्च 2022
Vol: 2, Issue: 6, January–March 2022

प्राग्ज्योतिका
PRAGJYOTIKA

पूर्वोत्तर भारत और हिंदी

www.pragjyotikapatrika.com

सूचना

1. यह पत्रिका विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के मानकों के अनुसार 'पीयर रिव्यूड एंड रेफ्रीड' शोध पत्रिका है।
2. पत्रिका में प्रकाशित होने वाले लेखों का प्लेगरिज्म (Plagiarism) परीक्षण अनिवार्य है।
3. शोध लेख हिंदी अथवा अंग्रेजी भाषा में होना चाहिए।
4. शोध संदर्भ, तथ्य, वक्तव्य आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
5. शोध लेख मौलिक एवं अप्रकाशित होना चाहिए।
6. लेख में शोध संदर्भो का उपयोग अकादमिक शोध नियमों में होना चाहिए।
7. शोध लेख के साथ लेखक अपना संक्षिप्त परिचय, पासपोर्ट आकार का फोटो, ईमेल तथा मोबाइल नंबर अवश्य भेजें।
8. शोध लेख 2500 से 5000 शब्दों तक का हो सकता है। कंप्यूटर पर अंकित शोध सामग्री ही स्वीकार की जाएगी।
9. आप लेख pragjyotikapatrika@gmail.com पर भेज सकते हैं।
10. प्रत्येक अंक की सूचना पत्रिका की वेबसाइट www.pragjyotikapatrika.com पर उपलब्ध रहेगी।
11. शोध पत्रिका की किसी भी सामग्री का बिना अनुमति अन्यत्र प्रकाशन अनुचित है।
12. शोध पत्र हमारी विशेषज्ञ समीक्षा समिति (Peer & Review Committee) के द्वारा द्वि-स्तरीय समीक्षित होकर प्रकाशन हेतु स्वीकृत किया जाता है।
13. पत्रिका के सभी पद अवैतनिक एवं परिवर्तनीय हैं।
14. पत्रिका का प्रकाशन पूर्णतः अव्यवसायिक है।

खंड : 2, अंक : 6, जनवरी- मार्च, 2022

प्राग्ज्योतिका

पूर्वोत्तर भारत और हिंदी

साहित्य, मानविकी, समाज विज्ञान और प्रदर्शनकारी कलाओं की 'पीयर रिव्यूड एँड रेफ्रीड' शोध पत्रिका

संपादक

प्रो. चन्दन कुमार

कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007

अतिथि संपादक

डॉ. प्रभांसु ओझा

डॉ. मणि कुमार

समीक्षा समिति

प्रो. त्रिभुवन प्रसाद

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007

प्रो. प्रकाश नारायण

दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007

प्रो. राकेश कुमार उपाध्याय

काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी,
उत्तर प्रदेश- 121005

प्रो. ओकेन लेगो

राजीव गांधी विश्वविद्यालय, ईटानगर,
अरुणाचल प्रदेश- 791111

डॉ. दिव्यज्योति महंत

कृष्णकांत हांडिक राज्यस्तरीय मुक्त विश्वविद्यालय,
गुवाहाटी, असम- 781017

डॉ. नरेंद्र शुक्ल

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय,
दिल्ली- 110011

परामर्श मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर,
राजस्थान- 302004

प्रो. ज्ञानतोष कुमार झा

प्राचार्य, आत्माराम सनातन धर्म महाविद्यालय,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110021

प्रो. हरीश कुमार शर्मा

सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु, सिद्धार्थनगर,
उत्तर प्रदेश- 272202

प्रो. हितेंद्र मिश्र

नॉर्थ- ईस्टर्न हिल विश्वविद्यालय, शिलॉन्ग,
मेघालय- 793022

प्रो. संजय कुमार

मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल,
मिजोरम- 796004

डिजाइनिंग एवं टाइपिंग

आविद अली, दिल्ली

कवर डिजाइनिंग

गौरव सिंह, दिल्ली

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली-110089

CENTRE FOR LITERA RYA ND CULTURAL STUDIES (CLCS), DELHI-110089

Volume : 2, Issue : 6 , January -March, 2022

Pragjyotika

Peer-Reviewed& Refereed Journal of Literature, Humanities, social science and Performing Arts

Editor

Prof. Chandan Kumar
Faculty of Arts
University of Delhi, Delhi-11007

Guest-Editor

Dr. Prabhansu Ojha
Dr. mani Kumar

Peer-Review Committee

Prof. Tribhuwan Prasad
University of Delhi, Delhi-110007

Prof. Prakash Narayan
University of Delhi, Delhi-110007

Prof. Rakesh Kumar Upadhyay
Banaras Hindu University
Varanasi (UP)-121005

Prof. Oken Lego
Rajiv Gandhi University, Itanagar,
Arunachal Pradesh-791111

Dr. Dibyajyoti Mahanta
Krishna Kanta Handiqui State Open
University, Guwahati, Assam-781017

Dr. Narendra Shukla
Nehru Memorial Museum and
Library,
New Delhi-110011

Advisory Board

Prof. Nand Kishore Pandey
University of Rajasthan, Jaipur
Rajsthan-302004

Prof. Gyantosh Kumar Jha
Principal, Atmaram Sanatan Dharma
College, Delhi University, Delhi-
110021

Prof. Harish kumar Sharma
Siddharth University Kapilvastu,
Siddharth Nagar (UP)-272202

Prof. Hitendra Mishra
North-Eastern Hill University,
Shillong,
Meghalaya-793022

Prof. Sanjay kumar
Mizoram University, Aizawl,
Mizoram-796004

Designing & Typing
Avid Ali, Delhi

Cover Designing
Gaurav Singh, Delhi

साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली- 110089

CENTRE FOR LITERA RYA ND CULTURA L STUDIES (CLCS), DELHI-110089

साहित्य, मानविकी, समाज विज्ञान और प्रदर्शनकारी कलाओं की त्रैमासिक शोध पत्रिका- प्राग्ज्योतिका

प्राग्ज्योतिका, खंडः 2, अंक 6: , जनवरी-मार्च, 2022

© साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली (भारत)
CENTRE FOR LITERA RYA ND CULTURA L STUDIES (CLCS), DELHI, (INDIA)

प्रकाशक : अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली- 110090
A kshar Publisher& Distributors,
Delhi-110090, Mo. 9711255121

संपादकीय कार्यालय : यूनिट नंबर- 108 (प्रथम तल), वर्धमान, एसी मार्केट, सी.एस.सी, ब्लॉक- ई, सेक्टर- 18, रोहिणी, दिल्ली- 110089 (भारत)

ई- मेल : pragjyotikapatrika@gmail.com

UNIT N0. 108 (1ST FLOOR), VA RDHMA N, AC MARKET, C.S.C, BLOCK-E, SECTOR-18, ROHINI, DELHI-110089 (INDIA)

वार्षिक मूल्य : व्यक्तिगत प्रति अंक : 250
वार्षिक : 1000
विदेशों में प्रति अंक : US $ 5
वार्षिक : US $ 15
संस्थागत वार्षिक : 1500

मुद्रक : अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली- 110090
Akshar Publisher & Distributors,
Delhi-110090, Mo.: 9711255121

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के मत और स्थापनाओं का 'साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली' व 'प्राग्ज्योतिका' का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए स्वामी/प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है। किसी भी विवाद के निपटारे का न्याय क्षेत्र दिल्ली होगा।

स्वामित्व : साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन केंद्र, दिल्ली (भारत)

CENTRE FOR LITERA RYA ND CULTURA L STUDIES (CLCS), DELHI, (INDIA)

अनुक्रमणिका

संपादक : **प्रो. चंदन कुमार**
अतिथि संपादक : **डॉ. प्रभांसु ओझा/ डॉ. मणि कुमार**

भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए-सी.कामलोवा
-आशुतोष : 07
माजुली के हिंदी प्रचारक
-माधूर्ज्य कमल हजारिका : 12
पूर्वोत्तर भारत और हिंदी
-प्रो. लालचंद राम : 16
मिजोरम में हिंदी के बढ़ते चरण
-प्रो. संजय कुमार : 26
पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिंदी
-प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र : 39
त्रिपुरा में हिंदी के प्रति बढ़ती आत्मीयता
-मुनीन्द्र मिश्र : 43
मणिपुर में हिंदी की स्थिति
- डॉ. ई. विजय लक्ष्मी : 47
त्रिपुरा में हिंदी भाषा व साहित्य : एक अवलोकन
-डॉ. काली चरण झा : 51
सिक्किम में हिंदी शिक्षण
-छुकी लेप्चा : 54
त्रिपुरा में कला और हिंदी
-डॉ. अमिता मिश्र : 57
मणिपुर में हिंदी का परिदृश्य
-डॉ. आर.के. मोबी सिंह : 60
सिक्किम में हिंदी
-सुवास दीपक : 63
असम के मारवाड़ी समुदाय और हिंदी
-जाहिदुल दीवान : 67
पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की विकास यात्रा
-अनंत मिश्र : 71
हिंदी भाषा और पूर्वोत्तर भारत : कल, आज और कल
-मीनाक्षी : 75
देश को जोड़ती हुई पूर्वोत्तर की हिंदी
-सूर्यप्रकाश : 80

संपादक : प्रो. चन्दन कुमार

पूर्वोत्तर और हिंदी के प्रेम की कहानी पुरानी है। पन्द्रहवीं शताब्दी में असमिया के एक बहुत प्रसिद्ध कवि हुए श्रीमंत शंकरदेव। श्रीमंत शंकरदेव असम सहित संपूर्ण प्राग्ज्योतिषपुर के समाज, साहित्य और जीवन-बोध के केंद्र में हैं। जब भक्तिकाल चल रहा था तब पूर्वोत्तर के साहित्य में शंकरदेव सक्रिय थे। शंकरदेव की रचनात्मकता ब्रजभाषा के राष्ट्रीय स्वरूप का प्रमाण है। असम में नव वैष्णव आंदोलन ब्रजबुलिरु/ब्रजावली में संभव होता है। ब्रजबुलिध्ब्रजावली ब्रजभाषा, असमिया, मैथिली, संस्कृत और बांग्ला का सम्मिलित रूप है। शंकरदेव ने अपने जीवन में दो बार भारत का भ्रमण किया था। वे अपने साहित्य में कहीं भी असम शब्द का प्रयोग नहीं करते। भारतवर्ष उनकी रचनाधर्मिता के केंद्र में है। यही वह बिंदु है जहाँ से मैं पूर्वोत्तर और हिंदी के संबंध को समझता हूँ।

नवंबर 2017 की बात है। तेजपुर विश्वविद्यालय के अतिथि गृह के एक कमरे में मैं दयाल कृष्ण बोरा से बात कर रहा था। दयाल कृष्ण बोरा असमिया, हिंदी और ब्रजबुलि के विद्वान रहे। अब वे नश्वर शरीर में नहीं हैं। वे एकनाथ भगवती समाज से थे। असम के बरपेटा सत्र से संबंधित थे। सत्र बोले तो मठ। बरपेटा सत्र श्रीमंत शंकरदेव का कर्मस्थल रहा है। खैर, दयाल दा ने एक बात कही-'चौबे जी, ज्योति अगरवाला के खिलाफ अगर आप कुछ बोलेंगे ना तो असम में आग लग जाएगी। ज्योति अगरवाला की बहुत प्रतिष्ठा है यहाँ'।

आपको पता है, कौन है ज्योति प्रसाद अगरवाला? ये सज्जन एक मारवाड़ी व्यापारी थे। असमिया साहित्य में हिंदी के छायावादी युग के समानांतर रचना-समय के नायक हैं- ज्योति प्रसाद अगरवाला। इनका जन्मदिन असम में 'शिल्पी दिवस' के रूप में मनाया जाता है और पूरे असम में सार्वजनिक अवकाश रहता है। मैं यह सूचना आपको यह बतलाने के लिए दे रहा हूँ कि पूर्वोत्तर का समाज, संस्कृति, साहित्य और कला की सेवा करने वाले एक मारवाड़ी व्यक्ति को नायक बनाने में सहर्ष तैयार रहा। ज्योति अगरवाला हिंदी सेवी भी थे। यह आजादी के पहले की बात है। तब असम आज का असम नहीं बल्कि पूर्वोत्तर का अधिकांश क्षेत्र असम में ही आता था।

सांस्कृतिक रूप से सात राज्यों का, सिक्किम को मिला दें तो आठ राज्यों का, यह भू-भाग भौगोलिक रूप से कमोबेश एक जैसा है। आज जिसे हम पूर्वोत्तर भारत कहते हैं, वह स्वयं में अनेकानेक भाषाओं-बोलियों, जनजातियों, नृत्य-संगीत, कलाओं, वनस्पतियों, वन्यजीवों, पारिस्थितिक विविधताओं और लोक संस्कृतियों को समेटे हुए है। सिक्किम से लेकर अरुणाचल तक और नागालैंड से लेकर त्रिपुरा तक, भारत के इन आठ राज्यों में लगभग दो सौ से अधिक जनजातियाँ निवास करती हैं। इनका हिंदी से परिचय भावात्मक कम, तार्किक ज्यादा है। मैं ऐसा इसलिए कह रहा हूँ कि उत्तरी भारत, पश्चिमी भारत या दक्षिणी भारत में हिंदी से प्यार और घृणा के संबंध भावुकता केंद्रित अधिक हैं। 'मेरी मातृभाषा है, मेरी मातृभाषा नहीं है'- वाला तर्क। पूर्वोत्तर में हिंदी को लेकर यह तर्क नहीं है। असमिया-बोडो से, बोडो -कार्बी से, कार्बी-मिसिंग से, मिसिंग-न्यीशी से, मोनपा-सोनोवाल से, किस भाषा में संवाद करें? आपको यहाँ बैठे लगता होगा कि पूर्वोत्तर के सातों-आठों राज्यों का मामला एक जैसा है जबकि आप वहाँ जाए तो पता चलता है कि वहाँ विपुल मात्रा में भाषाई एवं सांस्कृतिक विविधता है।

लुसाई हिल्स जो अब मिजोरम कहलाता है, में हिंदी 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ब्रिटिश सेना के गोरखाली लोगों से पहुँची। आज वहाँ तीस प्रतिशत से अधिक लोग हिंदी बोलने, लिखने और समझने में रुचि रखते हैं। स्कूली स्तर पर छः सौ से अधिक प्राथमिक अध्यापक, आठ सौ पचास से अधिक माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक और पाँच सौ से अधिक उच्च माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक हिंदी में हैं। एक सौ पचास से अधिक हिंदी सेवी संस्थाएं हैं। मिजोरम विश्वविद्यालय में हिंदी का संपन्न विभाग है। मुझे एक प्रसंग

याद आ रहा है–लेंगपुई हवाई अड्डे से बाहर निकला। प्रो. संजय जी ने गाड़ी भेज रखी थी। मिजो ड्राईवर था। गाड़ी में बैठते ही उसने 'क्या करते थे साजना, तुम हमसे दूर रहकर' बजाना शुरू कर दिया। मैंने पूछा–हिंदी जानते हो? उसने अंग्रेजी में उत्तर दिया– लिटिल बिट सर। इसका उल्लेख मैंने मिजोरम के हिंदी दिवस के कार्यक्रम में किया तो मिजोरम विश्वविद्यालय के उप–कुलपति ने कहा कि तीस साल पहले ऐसा नहीं था। प्रो. संजय जी ने नूरी और ललमोअना को मुझे आइजॉल घुमाने के लिए भेजा। मैंने नूरी से कहा– तुम्हारे पिताजी क्या करते हैं ? नूरी ने कहा– वह बैंक में हैं। फिर मैंने पूछा– आप कैसे हिंदी में आ गई? नूरी ने बताया कि उसने स्नातक कॉमर्स में किया है। 'पिताजी ने कहा हिंदी पढ़ो, हिंदी में नौकरी है। हिंदी में नौकरी थी इसलिए हिंदी में आ गई'। ललमोअना ने हिंदी साहित्य में पीएच.डी. की है। मिजो हैं और उनके पिता सरकारी अधिकारी हैं। वह हिंदी में आए क्योंकि हिंदी में नौकरी है। इसलिए कह रहा हूँ कि पूर्वोत्तर के साथ हिंदी के संबंध को तार्किकता से समझा जा सकता है। यह भाषा पूर्वोत्तर के आपसी समुदायों के बीच और पूर्वोत्तर व शेष भारत के बीच एक संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो रही है। साथ ही रोजगार की भाषा के रूप में भी विकसित हो रही है।

मेघालय में तो पांचवी, छठीं और सातवीं कक्षा में तो हिंदी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जा रही है। नेहू (NEHU) में संपन्न हिंदी विभाग है। अरुणाचल प्रदेश जब नेफा था (नोर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) तभी से वहाँ के विद्यालयों में हिंदी अनिवार्य भाषा के रूप में पढ़ाई जाती थी। शुरुआती हिंदी शिक्षक तो बिहार और उत्तर प्रदेश के ही लोग थे। अब तो वहाँ अरुणाचल के ही स्थानीय युवक–युवतियाँ हिंदी शिक्षक हैं। पासी घाट में, बोमडिला में, तवांग में जय हिंद से अभिवादन करते हुए लोग मिल जाएगें। अरुणाचल देश का एकमात्र ऐसा राज्य है जहाँ सामान्य अभिवादन में 'जय हिंद' बोला जाता है। पूर्वोत्तर की कई भाषाओं की लिपि देवनागरी हो चुकी है। अरुणाचल में मोनपा, मिजि व अकाकी भाषाओं की लिपि देवनागरी है। असम में मिरि, मिसिंग और बोडों की लिपि देवनागरी है। नागालैंड में अडागी, सेमा, रेग्मा, चाखे और नेपाली की लिपि देवनागरी है। सिक्किम में लेपचा, भडपाली और लिम्बू की लिपि देवनागरी है। सुनिए एक बात बताऊँ, आपको मणिपुर में विष्णुप्रिया समुदायों में जो रास–लीला आदि का मंचन होता है उसके अधिकतर संवाद भोजपुरी में बोले जाते हैं। है ना रोचक बात!

मणिपुर के मैतेयी वैष्णव हैं। वहाँ गुरु को ओझा कहते हैं और असम में लोकनाट्य है ओजापालि। बिहार के एक सज्जन हमारे ही जिले से थे शिवशंभु ओझा। लंबे समय तक असम में मंत्री रहे। लोग वोट देते थे कि ये गुरु ओझा हैं। चाहे नेतृत्व का मुद्दा हो या भाषा का मुद्दा हो– पूर्वोत्तर के लोग उदार रहे हैं। भरत त्रिपाठी, शिवशंभु ओझा, त्रिवेणी प्रसाद, मतंग सिंह और मनमोहन सिंह जी असमिया समाज के नेता रहे हैं। एक अशोक सिंघल हैं। मूल रूप से हिंदी प्रदेश के रहने वाले हैं। उनके पूर्वज असम में व्यवसाय करने गए। तेजपुर में डेकिया जुलि विधानसभा क्षेत्र में भारी मतों से जीतते हैं। मैं यह उदाहरण इसलिए दे रहा हूँ कि पूर्वोत्तर का मन वैसा नहीं है जैसा आप अखबारों से समझते हैं। अखबार और अखबारी खबरों से अगर आप पूर्वोत्तर को समझेंगे तो एक गलत समझ होगी।

अप्रैल 1934ई. में महात्मा गांधी गुवाहाटी गए। अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। उन्होंने असमिया लोगों से कहा कि आपको हिंदी सीखनी चाहिए। 1936ई. में गुवाहाटी में अखिल भारतीय हिंदी प्रचार समिति की स्थापना हुई। एक बात बताऊँ? एक थे पंडित विशेश्वर दत्तशर्मा। वो सन् 1919ई. से ही डिब्रूगढ़ से 'प्रकाश' नामक हिंदी समाचार पत्र निकाला करते थे। अब तो पूर्वोत्तर भारत में पूर्वांचल प्रहरी, दैनिक पूर्वोदय, प्रातः खबर, दैनिक प्रेरणा भारती और सैन्टिनल जैसे हिंदी समाचार पत्र हजारों की संख्या में बिकते हैं।

असम के तीनसुकिया को तो दूसरे बिहार के रूप में जाना जाता है। असम और अरुणाचल प्रदेश की विधानसभा में तो हिंदी में सवाल पूछे जाते हैं। हिंदी असम की ब्रह्मपुत्र घाटी को बराक घाटी से जोड़ती है। असम में एक जिला है डिमाहसाऊ। वहाँ का शहर है हाफलांग। वहाँ हाफलांगी हिंदी बोली जाती है। दिमासा समुदाय के लोग इसे बोलते हैं। जैसे वह कहें– तुम कुत्ता हम खाया य तो इसका मतलब तुम्हारे कुत्ते ने हमें काट लिया (Your dog has bitten me.)। जैसे कोई कहे कि हम आगे गिरेगा तो आशय है Please drop me there. मुझे वहाँ छोड़ दो। मैं मजाक नहीं कर रहा हूँ। आप गूगल पर खोज कर देख लीजिए। मौका मिले तो हाफलांग जरूर जाइयेगा। असम का हिल स्टेशन है, धरती का स्वर्ग है।

अरुणाचल नागरी संस्थान, मणिपुर हिंदी परिषद्, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, पूर्वोत्तर साहित्य अकादमी, मिजोरम हिंदी प्रचार सभा जैसे कई संस्थान हिंदी के प्रचार–प्रसार में, शब्दकोश निर्माण में लगे हुए हैं। बाबा राघवदास, जमुना प्रसाद श्रीवास्तव, गोपीनाथ बरदलै, देवाकांत बरुआ का

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के विकास में अविस्मरणीय योगदान है। कार्बी समुदाय में जनार्दन पाठक ने आजीवन भाषा तथा समाज के लिए कार्य किया। मणिपुर में पंडित छत्रध्वज शर्मा, कौशाम कुंज बिहारी, जयेंद्र शर्मा आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। मेघालय में केशव शर्मा, विश्वनाथ, पद्मनाथ बरठाकुर, मिजोरम में चित्र महंत आदि हिंदी प्रचारकों के माध्यम से पूर्वोत्तर में हिंदी प्रचार-प्रसार का कार्य निरंतर आगे बढ़ा। असम में कृष्ण नारायण प्रसाद मागध, धर्मदेव तिवारी, अरुणाचल में नंदकिशोर पांडेय, ओकेन लेगो, अरुण कुमार पांडेय, नागालैंड में ब्रज बिहारी कुमार, त्रिपुरा में रमेंद्र कुमार पाल, शिलांग में दिनेश चौबे, हितेंद्र मिश्र, मिजोरम में सी. कामलोवा, संजय कुमार मिजो-हिंदी, कोकबरक-हिंदी, खासी- हिंदी, न्यीशी- हिंदी, लुसाई-हिंदी, नागामी- हिंदी के बीच संवाद के तंतु बने। मैं इन सभी को प्रणाम करता हूँ। दो नाम, जो बार-बार पूर्वोत्तर और हिंदी के संबंधों के उल्लेख होने पर आते हैं वे हैं- आदरणीय डॉ. कृष्णगोपाल जी और उत्तर कमलाबाडी सत्र, माजुली के सत्राधिकार आचार्य जनार्दनदेव गोस्वामी जी। भारत राष्ट्र के निर्माण में और हिंदी को सच्चे अर्थों में राष्ट्रभाषा बनाने में इन महानुभावों को देश याद रखेगा।

'प्राग्ज्योतिका' पत्रिका का यह अंक 'पूर्वोत्तर भारत और हिंदी' पर केंद्रित है। इस अंक में सर्वप्रथम 'भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए-सी.कामलोवा' शीर्षक में सी. कामलोवा जी का आशुतोष तिवारी द्वारा लिया हुआ साक्षात्कार है। सी. कामलोवा जी का मिजोरम में हिंदी प्रचार प्रसार में विशेष योगदान रहा है। भारत सरकार ने श्री सी. कामलोवा जी के इसी योगदान को रेखांकित करते हुए पद्मश्री से भी सम्मानित किया है। कामलोवा जी के इस साक्षात्कार के माध्यम से पूर्वोत्तर में हिंदी की विकास यात्रा तथा मिजोरम में हिंदी की स्थिति का पता चलता है। इस अंक का पहला लेख माधूर्ज्य कमल हजारिका कृत 'माजुली के हिंदी प्रचारक' है। इस लेख में माधूर्ज्य जी ने असम स्थित विश्व के सबसे बड़े नदी द्वीप माजुली में हिंदी के विकास के चरणों को स्पष्ट किया है। इस अंक का अगला लेख प्रो. संजय कुमार का है। प्रो. संजय कुमार ने अपने लेख 'मिजोरम में हिंदी के बढ़ते चरण' में मिजोरम में हिंदी के विकास का शोधपरक अध्ययन प्रस्तुत किया है। प्रो. लालचंद राम द्वारा लिखित 'पूर्वोत्तर भारत और हिंदी' में पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में हिंदी के विभिन्न पक्षों को विस्तार से बताया गया है। मुनीन्द्र मिश्र का लेख 'त्रिपुरा में हिंदी के प्रति बढ़ती आत्मीयता' इस तथ्य की व्याख्या करता है कि हिंदी किस प्रकार त्रिपुरा में संवाद के साथ-साथ रोजगार की भी भाषा है। प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र द्वारा रचित लेख 'पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिंदी' में पूर्वोत्तर भारत की भाषाई विविधता बताते हुए हिंदी भाषा के महत्व को बताया गया है। डॉ.ई. विजय लक्ष्मी का लेख 'मणिपुर में हिंदी की स्थिति', छुकी लेप्चा का लेख 'सिक्किम में हिंदी शिक्षण', डॉ. अमिता मिश्रा का लेख 'त्रिपुरा राज्य की कला और भाषा', सुवास दीपक का लेख 'सिक्किम में हिंदी' पूर्वोत्तर के विभिन्न राज्यों में हिंदी की स्थिति को व्याख्यायित कर रहें है। 'प्राग्ज्योतिका' के इस अंक में डॉ. कालीचरण झा, डॉ. जाहिदुल दीवान, मीनाक्षी, सूर्यप्रकाश, अनंत मिश्र, डॉ. आर. के. मोबी सिंह के लेख संकलित है। इन सभी लेखों के द्वारा पूर्वोत्तर भारत और हिंदी के विविध संदर्भों का मूल्यांकन किया गया है। 'प्राग्ज्योतिका' का यह अंक पूर्वोत्तर भारत और हिंदी के रचनात्मक संबंधों के मूल्यांकन का एक ईमानदार प्रयास भर है। ऐसे और प्रयासों की आवश्यकता है। सभी विद्वान लेखकों का आभार जिन्होंने अपने महत्वपूर्ण लेखों से इस अंक को समृद्ध किया है। 'प्राग्ज्योतिका' के संपादकीय समूह, प्रकाशक और प्रकाशन कार्य से जुड़े हुए लोगों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

जय हिंद, जय हिंदी।

संपादक

प्रो. चन्दन कुमार

कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय

दिल्ली-110007

भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए-सी.कामलोवा

(पद्मश्री सी.कामलोवा से आशुतोष तिवारी की बातचीत)

-आशुतोष

नाम: सी. कामलोवा

माता का नाम: किलल्यहआङी

पिता का नाम: सी. ल्हुआनचेमा

जन्मतिथि: 17 नवंबर 1948 ई.

जन्मस्थान: ग्राम- मामपुइ, जिला- लोंङट्लाइ,मिजोरम

शिक्षा: स्नातक, कला निष्णात(M.A.)हिंदी साहित्य, शिक्षा निष्णात (M.Ed.)

कार्य: हिंदी भाषा, साहित्य एवं शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु सक्रिय रूप से काम किया। हिंदी प्रवीण(बीए) की मान्यता हेतु महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

कृतियाँ : हिंदी मिजौ शब्दकोश (2000 ई.), मिजौ जनजातियों परिचयात्मक संक्षिप्त इतिहास (2016 ई.), सामान्य भाषा विज्ञान, सामान्य मनोविज्ञान, अनुभव का दुइ फॉट(नेपाली), मिजौ एकांकी का हिंदी में अनुवाद (क)- वीर खुवाङचेरा, लेखक- प्रो. ललटलाङलियाना खियाङते। (ख)- रानी रौपुइलियानी, लेखक- प्रो. ललटलाङलियाना खियाङते, एवं अन्य रचनाएं।

पुरस्कार एवं उपलब्धियां:

1- अनुभव का दुइ फॉट(नेपाली) पुस्तक के लिए भारत सरकार द्वारा "भाषा- भारती सम्मान" (2003-04 ई.) से सम्मानित किया गया।

2- हिंदी मिजौ शब्दकोश पुस्तक के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने "राष्ट्र सम्मान" (2005-06 ई.) से सम्मानित किया।

3- मिजोरम के राज्यपाल एम.एम.लखेरा जी द्वारा हिंदी प्रचार के लिए "लाइफ टाइम अचीवमेंट" (2009-10 ई.) पुरस्कार दिया गया।

4- भारत सरकार के द्वारा "पद्म श्री" (2020 ई.) से सम्मानित किया गया।

पद्मश्री से सम्मानित सी. कामलोवा जी द्वारा हिंदी प्रचार-प्रसार में किए गए कार्यों एवं उपलब्धियों पर शोधार्थी आशुतोष तिवारी की बातचीत।

आशुतोष तिवारी- सर सादर प्रणाम।

सी. कामलोवा जी- बहुत- बहुत आशीर्वाद, खूब आगे बढ़ो।

आशुतोष तिवारी- सर आपको हिंदी के प्रचार-प्रसार के महान कार्य हेतु पद्मश्री पुरस्कार से सम्मानित किए जाने पर हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएँ।

सी. कामलोवा जी- बहुत- बहुत धन्यवाद।

आशुतोष तिवारी- सर हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु आपकी जीवन- यात्रा कैसी रही और आपने कौन- कौन से कार्य किए?

सी. कामलोवा जी- सबसे पहले मिजोरम की जो भौगोलिक स्थिति है, उसको समझना बहुत जरूरी है क्योंकि इसका सीधा संबंध हिंदी से है पूर्वोत्तर भारत के जितने भी राज्य हैं वहाँ पर थोड़ी बहुत हिंदी चल जाती है। दूसरी बात

असम में भी लोग हिंदी चला लेते हैं। असम की भाषा असमिया, हिंदी से काफी मिलती-जुलती भाषा है इसलिए वहाँ पर लोग हिंदी समझ जाते हैं। तीसरी बात आ जाती है अरुणाचल को लेकर। अरुणाचल प्रदेश में पिछले 30 से 35 सालों में हिंदी ने बहुत तरक्की की है, वहाँ पर सैकड़ों छात्रों ने हिंदी में पीएचडी कर रखी है। वहाँ पर कोई समस्या नहीं है। इसके बाद आता है नागालैंड, नागालैंड के पास दो ऐसी जगह हैं जहाँ पर हिंदी भाषी बाहुल्य जनता रहती है। एक दीमापुर है वहाँ एक बड़ा रेलवे स्टेशन है वहाँ पर हिंदी चल जाती है दूसरा दीफू है। उनकी जो संपर्क भाषा है नागामीज और अंग्रेजी है। जो नागामीज भाषा है उसमें 50 से 60% हिंदी के शब्द मिल जाते हैं। इस प्रकार नागालैंड में भी लोग टूटी- फूटी हिंदी भाषा समझ लेते हैं। उसके बाद आता है मणिपुर, मणिपुर में वैष्णव हिंदुओं का एक बड़ा जत्था रहता है। उनके जितने पुजारी हैं मथुरा में आकर रहते हैं, इसलिए वहाँ भी लोग काफी हद तक हिंदी बोल व समझ लेते हैं। अब आता है त्रिपुरा, त्रिपुरा में बंगाली भाषा बोली जाती है और बंगाली एवं हिंदी में ज्यादा अंतर नहीं है। यह हम सब जानते हैं कि त्रिपुरा में आप घुस जाएंगे हिंदी लेकर तो आपको परेशानी नहीं होगी।

अब अंत में मिजोरम आता है, मिजोरम पूर्व की ओर म्यांमार से घिरा हुआ है और दक्षिण में बांग्लादेश है इसके अलावा कुछ मणिपुर से, कुछ असम से, कुछ त्रिपुरा से लगा हुआ है। यहाँ पर 0% लोग हिंदी बोलते हैं, क्योंकि यह ईसाई बाहुल्य क्षेत्र है। वैसे यहाँ पर सात भाषाएँ बोली जाती हैं। जिनमें बड़ी भाषा बनकर वर्तमान में उभरी है- मिजो भाषा। अन्य छः भाषा के शब्द मिजो भाषा में मिल जाएंगे। जब मिजो भाषा में यहाँ ऑफिस होता है, बाजार व चर्चों में भी यही है इसलिए यहाँ की संपर्क भाषा मिजो भाषा है। इसलिए यहाँ हिंदी नगण्य के बराबर है। मिजोरम का यह एक भौगोलिक परिचय हुआ। अब हम हिंदी लेकर चलेंगे।

17 नवंबर 1954ई. को 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के सौजन्य से 'मिजो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का गठन किया गया था। कुछ लोगों ने कोशिश की कि हिंदी को लेकर आगे बढ़ा जाए परंतु इन लोगों ने समिति तो खड़ी कर दी लेकिन काम नहीं हो पाया। शायद दो से तीन प्रतिशत उन्होंने काम किया ऐसा मुझे लगता है। 1960ई. से 1966 ई. , फिर 1971ई. और ऐसे ही काम चलता रहा, इसी दौरान अलगाववादी तत्व उभर कर सामने आया। जिसे हम मिजो नेशनल फ्रंट(MNF) कहते हैं। इन लोगों ने कहा कि हम भारत के नहीं हैं, हमें भारत से आजादी चाहिए। 20 वर्षों तक संघर्ष चलता रहा। इस दौरान सरकार ने 20 से 25 लोगों को हिंदी पढ़ाने के लिए रखा परंतु यह नाम मात्र के थे क्योंकि वे बच्चों को पढ़ाते नहीं थे। फिर अलगाववादियों ने कहा कि हम आजादी चाहते हैं, इसलिए आप हिंदी नहीं पढ़ाएँगें और न कोई सीखेगा। फिर 1972ई. में भारत सरकार ने मिजोरम को असम से अलग करके एक केंद्रशासित प्रदेश बना दिया। इसके बाद 'मिजो राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का नाम बदलकर 'मिजोरम हिंदी प्रचार सभा' कर दिया गया।

इस तरह सभा ने अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित किया। इससे पहले यह असम के अधीन थे, तो यह लोग वर्धा से जुड़े थे, वर्धा का ही प्रश्न पत्र चलाते थे। पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक भी वर्धा की चलाते थे। स्वतंत्र सभा बनने के बाद इन्होंने सोचा कि सबकुछ मिजोरम से किया जाए। इन दिनों मैं सरकारी स्कूलों में पढ़ाता था। तो वहाँ से मेरा कोई विशेष संबंध नहीं था। 1997ई. में मिजोरम सरकार ने यह कहा कि हम मिजोरम हिंदी प्रचार सभा के अधीन आपका ट्रांसफर करेंगे। वहाँ जाकर आप कॉलेज को जिंदा करो तो इस तरह से 1997ई. में सितंबर से लेकर दिसंबर तक के बीच हमने कोशिश की यह पता लगाने की कि कॉलेज में क्या- क्या कमी है। उसके बाद जो कमियाँ पता चली उनमें कुछ इस प्रकार हैं-

1. इनके पास अपनी कोई जमीन नहीं है, भवन भी नहीं है।
2. जो यहाँ हिंदी पढ़ाई जाती थी। जिसे यहाँ पर लोग बी.ए. मान कर चले थे, उसे केंद्र से मान्यता प्राप्त नहीं थी।
3. इनके पास एकेडमिक बोर्ड भी नहीं था।
4. 1954 से 1998 तक बच्चों ने व्यवहार में कभी हिंदी प्रयोग नहीं किया था। यहाँ पर जो चेयर पर्सन थे, सचिव थे उनको भी हिंदी नहीं आती थी। इनका सारा रिकॉर्ड मिजो भाषा में लिखा जाता था।
5. हिंदी सीखने वाले जो छात्र होते थे उनको मिजोरम सरकार से कोई छात्रवृत्ति नहीं मिलती थी।

इसके बाद छात्रवृत्ति के लिए मैंने बोर्ड से कई बार बैठक की और मैंने कहा कि मैं बच्चों को दिल्ली, आगरा भ्रमण कराना चाहता हूँ। बोर्ड ने कहा हमारे पास पैसे नहीं हैं और फिर कहा कि हम आपको 50000 देंगे आप 50 विद्यार्थियों को घुमा कर ले आइए। उस समय मिजोरम सरकार का एक प्रावधान था कि 10 या 15 से अधिक लोग यदि मिजोरम से बाहर जाते हैं तो उन्हें ढाई लाख रुपए की सहायता दी जाएगी। इसके बाद में 37 बच्चों को लेकर दिल्ली आ गया। सब हिंदी के बच्चे थे। इसमें मेरा अपना

खर्च डेढ़ लाख हुआ। इसके बाद हमारे बच्चों को छात्रवृत्ति मिलना शुरू हो गई।

इसके बाद मैंने कॉलेज को मान्यता दिलाने के लिए 1999-2000ई. में कई बार कोशिश की तो केंद्र से एक टीम मूल्यांकन करने आई, टीम की अध्यक्ष केंद्रीय हिंदी निदेशालय की अध्यक्ष डॉक्टर पुष्पलता तनेजा थी। तीन और सदस्य थे जिनमें एक दिल्ली विश्वविद्यालय के प्रोफेसर डॉक्टर वर्मा जी और सचिवालय से एक सदस्य नानक चंद्र और डॉक्टर थंगा रतन आए। इन्होंने अपनी रिपोर्ट कैबिनेट को सौंपी और 5 महीने 17 दिन बाद मुझे दिल्ली से एक टेलीफोन आया जो टीम की अध्यक्ष डॉक्टर पुष्पलता तनेजा का था। उन्होंने मुझे बधाई दी और कहा कि आपके कॉलेज को 'कला प्रवीण' अर्थात् बीए तक की मान्यता मिल गई है।

इसके बाद मुझे कहा गया कि हिंदी मिजो शब्दकोश की आवश्यकता है। 1997ई. से 2000ई. तक मैंने हिंदी-मिजो शब्दकोश(27000) शब्दों का तैयार किया जो दिल्ली में भी पब्लिश हुआ। इसके बाद मैंने क्लास- 4, 6, 8, 10, प्यू इन पांच कक्षाओं के लिए मैंने 'हिंदी वार्तालाप पुस्तक माला' तैयार की। इसको तैयार करने में मुझे 6 महीने का समय लगा। इसके प्रकाशन का खर्च सभा ने उठाया। मैंने इसके बाद हिंदी व्याकरण दो भाषाओं हिंदी और मिजोरम में समानांतर रूप से बनाया। हमें मिजोरम साहित्य का अनुवाद करने के लिए सभा ने कहा। इसके बाद मैंने ललटलाङलियाना खियाङते की मिजौ एकांकी का हिंदी में अनुवाद किया, जिसके नाम इस प्रकार हैं-

(क). वीर खुवाङचेरा,
लेखक- प्रो. ललटलाङलियाना खियाङते
(ख)- रानी रौपुइलियानी,
लेखक- प्रो. ललटलाङ लियाना खियाङते

इसके बाद मैंने बीए के लिए हिंदी में सरल भाषा विज्ञान, सरल शिक्षा मनोविज्ञान पुस्तक लिखी। इसके बाद मिजोरम सरकार ने मुझे कहा कि आप हिंदी में मिजो जनजातियों को लेकर काम करिए। एक साल की कड़ी मेहनत के बाद मैंने 'मिजो जनजातियों का परिचयात्मक संक्षिप्त इतिहास' पुस्तक लिखी। इस पुस्तक की 8000 प्रतियाँ प्रकाशित हुई जिसे मैंने प्रत्येक राज्यपाल, लोकसभा, राज्यसभा, विश्वविद्यालयों आदि को भेजा। मैंने कई गीतों के माध्यम से मिजो जनजातियों को समझाने का प्रयास किया। इस पर मैंने एक पुस्तक "मध्यकालीन मिजौ काव्य साहित्य के सात अमर गायक" लिखी।

इसके बाद मुझे देशभक्ति गीत लिखने के लिए कहा गया। 1987 के आसपास मैंने एक गीत लिखा-

हम एक थे, हम एक हैं,
जग को आज सुनाना है,
अब कोई ताकत कोई भुलावा,
हमें भटका न पाएंगे,
एकता के धागे में जुड़कर,
धुन ही धुन इठलाएंगे,
मानवता का दीप जलाकर,
गीत यही हम गाएंगे,
हम एक थे हम एक हैं।

इसके बाद हमें सभा ने एक राष्ट्रीय गीत लिखने के लिए कहा। तब मैंने गीत लिखा-

आओ मिलकर गाएँ हम,
गीत सबको सुनाएँ हम,
हैं सब इसके संतान हम,
नाम इसका भारत महान,
माता तुझे सलाम,
जग में हो तेरा नाम,
माता तुझे सलाम,
खून से सीच कर, आँसू से भीगा,
इस तरह हमने इसे सजाया,
आओ सुनाएँ इसकी कहानी,
कुर्बान कर दे अपनी जवानी,
वंदे मातरम,
देश है हम सबका।
हिंद शिखर से सिंधु लहर तक,
मरुभूमि से खिलते चमन तक,
लिखा मैंने है नया इतिहास,
अमर ज्योति है इसकी निशानी,
देश है वीरों का आन पर मरने वालों का,
उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम,
वीरों की गाथा से भरपूर।

इसके बाद मैं अपनी शिक्षा और शुरुआती जीवन को लेकर थोड़ा अपना परिचय बताता हूँ। मेरे पिताजी आर्मी में थे, वे छुट्टियों में आए मुझे और मेरी माँ को साथ लेकर नेफा (जयरामपुर) चले गए। मैंने शुरुआत की शिक्षा आर्मी स्कूल में की। इसके बाद पिताजी ने फौज छोड़ दी और वह चले आए। मैं दो साल तक वहाँ भटकता रहा और इसके बाद मैंने किशोरावस्था में ही फौज ज्वॉइन कर ली। 9 से 10 साल तक नौकरी करने के बाद पिताजी की गरीबी के कारण मैंने फौज छोड़ दी मेरे 6-7 भाई बहन भी थे। जुलाई 1973ई.

को मिजोरम सरकार ने मुझे मिडिल स्कूल के लिए शिक्षक पद पर नियुक्त किया। 1982ई. से 1984ई. तक मैंने B.Ed. किया। 1989ई. में मैंने नेहू विश्वविद्यालय से एम.ए. किया। आगरा में मैंने M.Ed. किया। मेरी शिक्षा सही तरीके से नहीं हो पाई।

एक बार मैं बचपन में 1961ई. के आसपास की बात है, मुझे अपने दादा-दादी से मिलने जाना था और मेरे पास पैसे नहीं थे। उस समय मैं बहुत छोटा था। मेरे पास पैसे न होने के कारण मैं लगातार 7 दिनों तक पैदल जंगलों से होता हुआ अपने गाँव पहुँचा। इसी प्रकार जब पिताजी आर्मी से वापस आ गए थे तब मैं स्कूल में ही था और मेरे पास स्कूल की ड्रेस के अलावा कोई ठंड के कपड़े नहीं होते थे तब मैं एक कोने में ठिठुर कर रात बिताया करता था और गर्मी में मच्छरों की बाढ़ आ जाती थी, तो मैं उनसे निपटने के लिए केरोसिन तेल को अपने शरीर पर लगाता था। जिसका असर दो-तीन घंटे तक होता था और मैं यह कार्य रात में दो तीन बार करता था। तब उजाला होता था।

आशुतोष मैं तुम्हें एक गीत सुनाता जो मेरे बहुत करीब है। ध्यान से सुनिएगा-

बहुत खोजा जिंदगी को मेरे अजीज,
हर बदलते मौसम में मेरे हबीब,
कैसे मिलता न था इसका रंग व रूप
हर जर्रे में फैला हुआ इसका वजूद।
बसंत के दहलीज में खोजा इसे,
चमन के हर गुल से पूछा इसे,
सब ने कहा अभी तो था यहीं कहीं,
आंखों में सपने लिए यहीं कहीं,
बहुत खोजा जिंदगी को मेरे अजीज।
बरसात के बादलों में खोजा इसे,
बूंदों और बौछारों से पूछा इसे,
सबने कहा अभी तो था यहीं कहीं,
आंखों में प्यास लिए यहीं कहीं।
पतझड़ के वीराने में खोजा इसे,
सूखे पत्ते टहनियों से पूछा इसे,
सब ने कहा अभी तो था यहीं कहीं,
मायूस आंखों में अश्क लिए यहीं कहीं,
बहुत खोजा जिंदगी को मेरे अजीज,
हर बदलते मौसम में मेरे हबीब,
कैसे मिलता न था इसका रंग व रूप,
हर जर्रे में फैला हुआ इसका वजूद।

अगर मेरी जिंदगी को समझना है तो इस गीत के माध्यम से समझ सकते हैं, यह गीत मेरी जिंदगी के बहुत नजदीक है।

आशुतोष तिवारी- मिजोरम के लोगों का आपके कार्यों और हिंदी के प्रचार-प्रसार को लेकर क्या प्रतिक्रिया रही?

सी. कामलोवा जी- यह आपने बहुत अच्छा सवाल किया है। मैं तीन भाषाओं को पढ़ व लिख लेता हूँ- नेपाली, मिजो और हिंदी। मैंने "अनुभव का दुइ फॉट(नेपाली)" पुस्तक की रचना की, तो इसके लिए भारत सरकार द्वारा "भाषा-भारती सम्मान"(2003-04 ई.) से सम्मानित किया गया। तब लोगों ने कहा यह होता क्या है। इसके बाद मैंने हिंदी- मिजो शब्दकोश तैयार किया, जिसके लिए मुझे मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने राष्ट्र सम्मान से 2005-06 ई. में सम्मानित किया। इसके बाद भी लोगों ने वही कहा कि यह होता क्या है। 2009-10ई. में मिजोरम के राज्यपाल एम. एम. लखेरा जी ने राजभवन बुलाकर मुझे हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए "लाइफ टाइम अचीवमेंट" पुरस्कार से सम्मानित किया। इसके बाद भी लोगों ने कहा कि यह होता क्या है। अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि मुझे पद्मश्री क्यों दिया गया। लेकिन अब धीरे-धीरे लोग जानने लगे हैं। 2002ई. में भारत सरकार ने एक योजना के तहत केंद्र सरकार ने मिजोरम को ढाई सौ (250) हिंदी शिक्षकों की पोस्ट दी। इस योजना के तहत आंध्र प्रदेश को 450 हिंदी शिक्षक की पोस्ट दी गई थी जिसमें से 120 पोस्ट ही वहाँ के मुख्यमंत्री ने स्वीकार किया। शेष बची सीटों के लिए कई पूर्वी राज्य ने दावा किया परंतु मिजोरम की तरफ से मैं गया था और मैंने 200 और सीटें लेकर अर्थात् कुल मिलाकर 450 सीटें लेकर मैं वापस लौटा। अब काफी लोग सीख रहे हैं।

आशुतोष तिवारी- भारत की राजधानी दिल्ली से काफी दूर और वित्तीय सहायता के अभाव में आपको हिंदी के प्रचार और प्रसार में किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा?

सी. कामलोवा जी- पहली सबसे बड़ी चुनौती तो यह है कि समाज साथ नहीं देता है। दूसरी यह है कि यहाँ ईसाई मिशनरी जब आए तो उनके साथ भारतीय कुली बन कर आए थे, जिससे यहाँ के लोगों में यह धारणा बनी है कि अंग्रेज आका हैं और उनकी भाषा इज्जतदार लोगों की भाषा है। जबकि उनके साथ जो काले लोग आए, वह सभी नौकर हैं और इनकी भाषा कोई मायने नहीं रखती है। यह धारणा 100 वर्षो तक चलती रही। इसलिए यहाँ कोई हिंदी नहीं सीखना चाहता था। लोगों ने हतोत्साहित करने का भी प्रयास किया। लोगों की बातें सुनकर कठिनाइयाँ पार करके मैं बाहर आया। प्रोफेसर शर्मा, प्रोफेसर संजय सिंह और प्रोफेसर अखिलेश ने हिंदी विभाग के माध्यम से काफी कार्य किया। इनके निर्देशन में 15- 20 लोगों ने पीएचडी की है। करीब

14 साल तक मैं हेड रहा और मैंने 400 से 500 विद्यार्थी तैयार किए जो हिंदी पढ़ा रहे हैं।

आशुतोष तिवारी- वर्तमान भारत सरकार पूर्वी राज्यों को लेकर अधिक सजग दिखाई पड़ती है, चाहे विकास का मुद्दा या देश के अन्य भागों से कनेक्टिविटी या शिक्षा की बात हो। सरकार द्वारा किए जा रहे इन प्रयासों का क्या प्रभाव पड़ रहा है?

सी. कामलोवा जी- बहुत अच्छा सवाल किया है आपने। मैं अपनी व्यक्तिगत राय बताना चाहता हूँ कि इस समय देश को बहुत अच्छी सरकार मिली है, काम करने वाली सरकार मिली है। मैं पूर्व की सरकारों पर कोई टिप्पणी नहीं करूंगा। लेकिन कभी- कभी मुझे दुख होता है कि इतना कुछ हमारी भारत सरकार हमारे समाज के लिए, मिजो समाज के लिए कर रही है, उसे मिजो समाज समझना नहीं चाहता है। क्योंकि इनकी मानसिकता कुछ राजनीतिक दलों के कारण भ्रामक बनी हुई है। इन्हें लगता है कि भाजपा सरकार हिंदुओं की सरकार है और जब यह शासन में आएगी तो लोगों को हिंदू धर्म अपनाना पड़ेगा। इस विषय पर मैं जा-जाकर के लोगों को बताता हूँ कि यह सब भ्रम है क्योंकि नागालैंड में बीजेपी के 15 विधायक हैं लेकिन ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। हमें विकास चाहिए। लेकिन दुख होता कि लोग विरोध करते हैं, परंतु मैं यह भी कहूँगा कि लोगों को समझाना पड़ेगा, कहना पड़ेगा कि हम विकास देंगें, रोजगार देंगें। लोगों को समझाने के लिए धर्मगुरुओं से बात करनी पड़ेगी और कहना पड़ेगा कि हमें धर्म से कोई मतलब नहीं है हम आपके लिए रास्ता बनाएंगे, अस्पताल बनाएंगे, रोजगार देंगे। जमीनी- स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता है।

आशुतोष तिवारी- हिंदी भारत की सबसे अधिक बोली और समझी जाने वाली भाषा है और इसे राजभाषा का दर्जा प्राप्त है। हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने पर आपका क्या सुझाव है?

सी. कामलोवा जी- भारत में बहुत भाषाएँ बोली जाती हैं पर हम सब भारतीय हैं। मैं फौज के समय से ही यह मानता हूँ भारत में हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाया जाना चाहिए और इसे आज से 20 से 30 वर्ष पूर्व राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल जाना चाहिए था परंतु सरकार की इच्छा शक्ति के अभाव में ऐसा नहीं हो पाया। सरकार को यह घोषणा करनी चाहिए कि अगले 5 वर्षों के बाद हम हिंदी को आगे बढ़ाएंगे और इसकी कठिनाइयों को दूर करना चाहिए। आज जहाँ पर भी अंग्रेजी भाषा में कार्य हो रहा है अर्थात् इतने कम लोगों के अंग्रेजी जानने के बावजूद अगर अंग्रेजी में कार्य हो सकता है तो इतने अधिक लोगों के हिंदी जानने के बावजूद उसमें कार्य क्यों नहीं हो सकता है। सरकार को इच्छाशक्ति के साथ कार्य करने की आवश्यकता है अन्यथा चाहे जितनी नीति बना लें बिना जमीनी स्तर पर पूर्ण रूप से लागू किए सफलता नहीं मिल सकती।

आशुतोष तिवारी- हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए जो लोग इस कार्य को आगे बढ़ाएंगे या जो सरकार इस कार्य को आगे बढ़ाएगी उनके लिए आपका क्या संदेश होगा?

सी. कामलोवा जी- सबको हमारा संदेश है कि पूरे तन और मन से हिंदी की सेवा करें। पूरी ईमानदारी के साथ सेवा करें। हिंदी के प्रचार प्रसार में जो भी वित्तीय सहायता मिले उसको ईमानदारी से खर्च करें। हिंदी सभा और समिति से हमारी गुजारिश है कि वह जो भी अनुदान मिले उसका सदुपयोग करें। ईमानदारी पहली शर्त है, संघर्ष की प्रवृत्ति दूसरी शर्त है, इच्छाशक्ति को झुकने न दें। सरकार से अनुरोध है कि बिना सत्यापित किए किसी सभा, समिति को अनुदान न दें, जितनी आवश्यकता हो उतना अनुदान दें। एक बात आपको और बतानी है, 2004ई. में हमने स्वर्ण जयंती सभा का आयोजन किया था तो मैंने केंद्रीय हिंदी निदेशालय की अध्यक्ष डॉक्टर पुष्पलता तनेजा को आमंत्रित किया था और वह उपस्थित भी हुई थी। तो उस समय हमने एक "स्वर्ण जयंती स्मारिका पत्रिका" निकाली थी, उसमें दो-तीन लेख हिंदी में थे और सभी मिजो भाषा में थे जिसका मैंने अनुवाद किया था। इस पत्रिका का मैं मुख्य संपादक था। "भूली बिसरी यादें, गीतों के झरोखे से" नामक लेख मैंने भी लिखा था।

आशुतोष तिवारी- आपसे बात करके बहुत अच्छा लगा सर। आगे के जीवन के लिए मेरी तरफ से आपको बहुत-बहुत शुभकामनाएँ और प्रणाम।

सी. कामलोवा जी- मैं चाहता हूँ, तुम बड़े आदमी बनो, पीएच.डी. कर लो, ढेर सारा आशीर्वाद। मुझे लेख का इंतजार रहेगा।

आशुतोष
पीएच.डी,
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-110007
ईमेल : tkr667@gmail.com

माजुली के हिंदी प्रचारक

- माधूर्ज्य कमल हजारिका

माजुली भारत के पूर्वोत्तर में स्थित असम प्रदेश में एक नदी द्वीप है। ब्रह्मपुत्र के हृदय में वर्तमान में यह द्वीप विश्व में सर्ववृहत नदी द्वीप के रूप में जाना जाता है। सर्वानन्द सोनोवाल सरकार द्वारा सन् 2016ई. में जिला घोषित इस माजुली को भारत का इकलौता नदी द्वीप जिला होने का गौरव प्राप्त है। 880 वर्ग कि.मी. में फैला यह द्वीप विविध संस्कृतियों का एकता स्थल है। मध्यकाल में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव और श्री श्री माधवदेव ने इसी माजुली द्वीप को वैष्णव धर्म प्रचार का प्रमुख केंद्र बनाया। यहाँ कई सत्रों का स्थापन कर पूरे प्रदेश की लोगों को वैष्णववाद की शिक्षा दी। सत्रिया नृत्य, गीत, शिल्प कला आदि शंकरी संस्कृति का ध्वजावाहक माजुली असम की सांस्कृतिक राजधानी है। दोनों गुरुओं का मिलन भूमि मणिकांचन क्षेत्र माजुली कई जाति-जनजातियों का निवास स्थल है। प्रकृति की गोद में यह नदी द्वीप शस्यश्यामला है। मिसिंग, देउरी, कछारी, कैवर्त, केओत, नाथ, मटक, ब्राह्मण, कलिता, सुतिया, आहोम, कोच आदि विविध सम्प्रदायों के लोगों का एक जगह मिलकर निवास करना संपूर्ण प्रदेश में अद्वितीय है, और इसी कारण यह समन्वय भूमि है। चारों और नद ब्रह्मपुत्र से घिरा हुआ यह नदी द्वीप आध्यात्मिक, सांस्कृतिक परिवेश का एक वाहक है। यहाँ की हवा में संगीत है, कीर्तन की ध्वनि परिवेश को नवनीत रूप प्रदान करती है। मिसिंग घरों से आती ऐनितम की ध्वनि, देउरी गावों से आती बीसों की ध्वनि माजुली द्वीप का एक सुन्दर वर्णन प्रस्तुत करता है।

शिक्षा के क्षेत्र में देखें तो माजुली ऐतिहासिक काल से ही शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र रहा है। पौराणिक समय में विविध जनजातियों ने इसे तंत्र-मंत्र की शिक्षा का केंद्र भी बनाया था। मठ मंदिर, सत्र एवं जनजातीय घरों से प्राप्त साँचीपात पोथी जैसे तंत्र सारांश, तांत्रिक विधि, तंत्र-मंत्र आदि इसका प्रमाण हैं। मध्यकाल में पूरे असम प्रदेश में जिस भक्ति आन्दोलन का चरम प्रभाव देखने को मिलता है, उसका केंद्र भी यही माजुली रहा। शंकरदेव और माधवदेव

1998 के प्रलयंकारी बाढ़ से ध्वंस होता माजूली राष्ट्रभाषा महाविद्यालय और कार्यरत नारायण हाजरिका एवं उनके साथी।

के संयुक्त प्रयास से माजुली के सत्रों को धर्मीय शिक्षा का एक मुख्य केंद्र बनाया गया और उन्नीसवीं सदी के अंत तक यही सत्र शिक्षा का केंद्र बना रहा। वर्तमान समय में भी विविध जाति-जनजाति अपनी परंपरागत शिक्षा चला ही रहे हैं और साथ में सत्रानुस्थान भी बना हुआ है मुक्त सांस्कृतिक विश्वविद्यालय। उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग में ईसाईयों द्वारा धर्म प्रचार के लिए प्रकाशित पत्रिका 'अरुणोदय' के विरोध में यहीं माजुली से असम का प्रथम साप्ताहिक अखबार 'असम विलासिनी' सनातन धर्म एवं असमिया संस्कृति के प्रचार हेतु निकला। यहाँ के लगभग 79 प्रतिशत लोग शिक्षित हैं।

भारत विविधता में एकता का देश है। पूरे देश में लगभग तीन हजार भाषाएँ एवं बोलियाँ प्रचलित हैं। स्वाधीन भारत में हिंदी ज्यादा राज्यों में बोली जाने वाली भाषा होने के कारण संविधान निर्माताओं ने इसे राजभाषा का दर्जा दिया पर अहिंदी भाषी क्षेत्रों में जैसे पूर्वोत्तर भारत में वास करते विविध लोगों के लिए हिंदी को अपनाना थोड़ा कठिन रहा।

इन्हें हिंदी सीखने के लिए उच्चारण एवं वर्तनी की भाषा में वैज्ञानिक तरीकों को अपनाना कठिन अनुभव होता है। उच्चारण के समय मुखमंडल के हर अंश से ध्वनित होती ध्वनियाँ निकलना यहाँ के भौगोलिक परिवेश में निवास करते लोगों के लिए थोड़ा कष्टकर है पर आधुनिक समय में एक भाषा से सम्पूर्ण भारत को जोड़ना अत्यंत जरूरी है। अंग्रेजी जैसी शक्तिशाली भाषा के विरुद्ध अगर कोई भाषा डटकर खड़ी हो सकती है, तो वह है हिंदी। इस कारण भारत के पूर्वोत्तर में स्थित असम प्रदेश में कुछ जन नायक हिंदी के प्रचार के लिए निरंतर जुड़े रहे। असम प्रदेश के पटल पर देखें तो लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै वह प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने हिंदी प्रचार को महत्त्व दिया। असम के प्रथम मुख्यमंत्री बनकर उन्होंने हिंदी को उच्च विद्यालयी शिक्षा में निश्चित किया। हिंदी प्रचार हेतु असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की स्थापना उन्होंने की और सालाना दस हजार रुपए संस्था को देने लगे। कालांतर में यह समिति हिंदी प्रचार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती रही। हिंदी के प्रचार की यह स्रोतस्विनी धारा बहते-बहते माजुली नदी द्वीप पहुँची। जहाँ कई महान व्यक्तियों के अपार परिश्रम से यह भाषा लोकोन्मुखी बनी।

सांस्कृतिक रूप से समृद्ध इस नदी द्वीप में बीसवीं सदी के अंतिम भाग तक कोई हिंदी पठन- पाठन की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में हिंदी भाषा को गैरजरूरी समझा जाता था। उस काल खंड में असम के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों में भी हिंदी पठन-पाठन की सुविधा नहीं थी। जब शहरों में ही हिंदी की यह स्थिति हो तो माजुली द्वीप तो सबसे अलग एक अकेला द्वीप है। अंग्रेजी के बढ़ते प्रभाव के साथ सांस्कृतिक रूप से भी पश्चिमी संस्कृति भारतीयता पर हावी होने लगी थी। असमिया लोगों ने भी इस संकट को बखूबी महसूस किया और फिर माजुली जैसे द्वीप में भी शुरू हुआ हिंदी प्रचार आन्दोलन। 1955ई. में राजस्थान से आए लक्ष्मीनारायण व्यास जी ने अपने कुछ अन्य साथियों के साथ माजुली नदी द्वीप में हिंदी शिक्षण प्रारंभ किया। माजुली द्वीप के पौराणिक शिक्षानुस्थानों में से एक 'माजुली आउनी आटी हेमचन्द्र उच्चतर माध्यमिक विद्यालय' में हिंदी शिक्षक के रूप में व्यास जी ने अपना कर्म जीवन शुरू किया। असमिया लोगों में हिंदी भाषा के प्रति अरुचि को उन्होंने बखूबी समझा था। उन्होंने पता लगाया कि इसका कारण शिक्षा का अभाव ही है। 1971ई. में उन्होंने सर्वेश्वर फुकन, नित्यानंद बरुआ, बुपाराम शइकिया जैसे हिंदी प्रेमियों की मदद से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के अधीन 'माजुली राष्ट्रभाषा विद्यालय' की स्थापना की और यह विद्यालय माजुली द्वीप में हिंदी भाषा प्रचार का प्रथम प्रयास है। व्यास जी घर-घर जाकर हिंदी की उपयोगिता के बारे में बताकर पठन-पाठन हेतु छात्र खोजने लगे। उन्होंने बताया कि माजुली महाविद्यालय के रिटायर्ड अध्यापक नारायण शर्मा, आनंद हजारिका, कमलाबाड़ी गर्ल्स अकादमी के रिटायर्ड अध्यापिका दलि बरुआ उक्त हिंदी विद्यालय से प्रथम विशारद उपाधि प्रापक बनें। आर्थिक रूप से काफी संपन्न माजुली के साधारण लोगों में हिंदी उतनी प्रचलित न होने के कारण कालांतर में वह विद्यालय बंद हो गया। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा आयोजित वार्षिक हिंदी परीक्षा में कई शाखाएँ हैं-परिचय, प्रथमा, प्रवेशिका, प्रबोध, विशारद एवं प्रवीण (दो खंड) इनके विविध स्तर हैं। प्रवीण को स्नातक उपाधि के समकक्ष माना जाता है और उस समय प्रवीण उपाधि प्राप्त लोगों को सरकारी विद्यालयों में हिंदी शिक्षण का मौका भी मिलता था। यही कारण था कि इस परीक्षा की लोकप्रियता असम में बढ़ने लगी। माजुली राष्ट्रभाषा विद्यालय बंद होने के कारण हिंदी प्रचार में फिर वह तत्परता नहीं दिखाई दी। उसी विद्यालय से प्रवेशिका उपाधि प्रापक उत्तर कमलाबाड़ी सत्र के वैष्णव नारायण हजारिका जी के हृदय में हिंदी के लिए अगाध भक्ति भाव जगा था। भारत के कई राज्यों में सत्रीया कला प्रदर्शित करने के दौरान उन्हें यह महसूस हुआ कि हिंदी भाषा सीखना भारतीयों के लिए कितना जरूरी है। कृष्ण जन्म भूमि में इस भाषा की व्याप्ति देखकर खुद को इसे समर्पित करने के लिए उन्होंने ही मन बना लिया था। 1966ई. में जब नारायण हजारिका तीन साल के थे, तभी उनको सोमेस्वर बायन बूढ़ाभगत अपने साथ ब्रह्मचारी बनाकर माजुली के उत्तर कमलाबाड़ी सत्र लेकर आए। सोमेस्वर गायन बूढ़ाभगत से सानिध्य प्राप्त कर अति कम उम्र में ही वरगीत, भटिमा, गीत, नृत्य के साथ-साथ महापुरुषों द्वारा लिखित शास्त्रों में उन्होंने पांडित्य हासिल किया। बाल अवस्था में ही वह सत्र के मुख्य पाठक बनें, और हर रोज अपने अनुपन कंठ से कीर्तन, दसम आदि पोथी पढ़कर सभी वैष्णवों को सुनाने लगे। अपने सुन्दर शरीर और नवनीत कंठ के कारण नाटकों (भाउना) में भी वह आकर्षक नाट्य अभिनेता बने। अपनी जीवनी में उन्होंने यह उल्लेख किया है कि उत्तर कमलाबाड़ी सत्र में ही उन्होंने गोपीराम बर गायन से उजापाली शिक्षा, परमानन्द बर बायन से सत्रीया नृत्य, गीत, नाटक आदि शिक्षा एवं बलोंराम बरगायन से पाठक शिक्षा प्राप्त की। प्राप्त जीवनी से हमें यह पता लगा कि सन् 1976ई. से ही वह भारत के विविध स्थानों पर सत्रीया संस्कृति के प्रदर्शन हेतु जाने लगे। दिल्ली, मद्रास, कोलकाता, हैदराबाद, पंजाब,

केरल, भोपाल आदि स्थानों के अलावा असम प्रदेश में विविध ज़िलों पर भी उन्होंने सत्रीया कला प्रदर्शित की। सन् 1986ई. के गणतंत्र दिवस आयोजन के दिल्ली में भाग लेने वाले असमिया कलाकारों में नारायण हजारिका जी भी एक थे, पूरे दल के सुन्दर प्रदर्शन से उन्हें सर्वश्रेष्ठ दल के रूप में सम्मानित किया। संपूर्ण देश में भ्रमण कर उन्होंने हिंदी भाषा की प्रयोजनीयता का बखूबी अनुभव किया था और माजुली द्वीप में हिंदी प्रचार व्यापक रूप से करने के लिए वह संकल्पबद्ध हुए। माजुली राष्ट्रभाषा विद्यालय से ही प्रवेशिका परीक्षा उत्तीर्ण कर जोरहाट, तेजपुर, लखीमपुर आदि स्थानों से प्रवीण प्रथम खंड तक की पढ़ाई संपूर्ण की और कई हिंदी प्रेमियों की मदद से उन्होंने पुनः 1985ई. में माजुली राष्ट्रभाषा विद्यालय के स्थान पर इकलौता हिंदी महाविद्यालय 'माजुली राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' की स्थापना की। हिंदी के लिए उनके अन्दर जो अनंत प्रेम था उसका निदर्शन हमें तब मिला जब महाविद्यालय स्थापित कर प्रथम वर्ष वह प्रवीण अंतिम खंड के परीक्षा हेतु खुद परीक्षार्थी बने। कालांतर में नारायण हजारिका जी द्वारा हिंदी सेतु निर्माण का यह क्रम कभी रुका नहीं। केवल छात्र-छात्रा ही नहीं विवाहित पुरुष- महिला, बुजुर्ग सभी को हजारिका जी ने हिंदी का विद्यार्थी बनाया। देखते-देखते कुछ ही सालों में महाविद्यालय में 300 से भी ज्यादा परीक्षार्थी परीक्षा देने लगे। नद ब्रह्मपुत्र के कारण इस द्वीप के लोगों को हर साल प्रलयंकारी बाढ़ का सामना करना पड़ता है। 1998ई. के भयावह बाढ़ से महाविद्यालय का अस्थायी भवन टूट गया। पानी के बहाव तेज के कारण कुछ भी सामग्री नहीं बचाई जा सकी। बाढ़ के बाद सरकार से आर्थिक मदद न मिलने के कारण एक छोटा सा भवन निर्माण किया गया, जहाँ सभी छात्रों के लिए पाठदान असंभव सा लगने लगा था। हिंदी को जीवन का लक्ष्य बनाने वाले नारायण हजारिका जी रुके नहीं। इस प्राकृतिक आपदा ने जैसे उन्हें और व्यापक सोच प्रदान की। उन्होंने माजुली नदी द्वीप के कई स्थानों पर राष्ट्रभाषा विद्यालय खोलकर दूर-दूर के छात्रों के लिए हिंदी शिक्षा को आसान बनाया। वर्तमान समय में उनके द्वारा स्थापित लगभग 15 विद्यालय पूरे माजुली में हैं। उनसे पहले माजुली के कई व्यक्ति असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति से जुड़े हुए थे, जैसे उमेश मुदै, कणपाइ मुदै, धीरेन शइकिया, जयंत बरा आदि। परंतु उन्होंने माजुली द्वीप में हिंदी शिक्षा का जो आन्दोलन शुरू किया वह सबके लिए आदर्श बना। लोग उनके साथ जुड़ने लगे। अखिल ठाकुर, रूमी शइकिया, रितामनी बोरा, बबिता शइकिया आदि कमलाबाड़ी राष्ट्रभाषा महाविद्यालय के तत्कालीन शिक्षक बने। नारायण हजारिका जी ने यह बखूबी अनुभव किया कि इस प्रकार केवल पठन-पाठन से ही हिंदी को व्यापक रूप नहीं प्रदान किया जा सकता। इसी कारण लोगों को हिंदी भाषा के प्रति आकर्षित करने हेतु उन्होंने नाटक लिखकर कई स्थानों पर प्रदर्शन किया। उनके द्वारा लिखित हिंदी नाटक हैं- 'श्रीमंत शंकरदेव' और 'धनुष भंग' जिनको उन्होंने छात्रों की मदद से पूरे द्वीप के विविध स्थानों पर खेला। केवल माजुली में ही नहीं, प्रदेश के विविध स्थानों पर उनके द्वारा रचित नाटक लोगों द्वारा खेला गया। श्री मंत शंकरदेव एक एकांकी नाटक है जहाँ नामघर में शंकरदेव एवं भक्तगण बैठकर विविध विषयों पर चर्चा करता दिखाई देते हैं। दूसरे नाटक धनुष भंग में राम द्वारा सीता स्वयंवर में शिव धनुष भंग की कथा वर्णित है। ब्रजावली भाषा में लिखित उनका नाटक 'राम वन गमन- सीता हरण, बाली वध' आज भी कई सत्रों में खेला जाता है। जहाँ राम की वन यात्रा, रावण द्वारा सीता हरण एवं वानर राज बाली का श्री राम द्वारा वध की कथा ब्रजावली भाषा में वर्णित है। उनके द्वारा लिखित असमिया नाटक- 'मोमाई कटा गड़' और 'ज्ञानी दारा' है। मोमाई कटा गड़ नाटक में आहोम वीर लाचित वरफूकन की कथा और ज्ञानी दारा में एक ज्ञानी चरवाहा के जीवन में घटित एक नैतिक कहानी वर्णित है। उनके द्वारा रचित दो असम्पूर्ण नाटक हैं- 'हमारा माजुली' और 'महापुरुष माधवदेव'। नारायण हजारिका और खितेंद्र नाथ सरकार दोनों असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के व्यवस्थिता सभा में सदस्य हुए। हिंदी प्रचार को जीवन का उद्देश्य बनाने वाले नारायण जी को सन् 2012ई. में 50 वर्ष की आयु में इहलोक से परलोक प्राप्ति हुई। उनके वियोग से माजुली के लोग काफी मर्माहित हुए पर हिंदी प्रचार का जो सपना उन्होंने देखा था वह रुका नहीं। उन्होंने जो सेतु निर्माण किया था वह आज तक मज़बूत है। वर्तमान समय में माजुली के कोने-कोने में राष्ट्रभाषा विद्यालय है। कमलाबाड़ी में रूमी शइकिया, अखिल ठाकुर, मुहिकांत बोरा बरबायन, गरमुर में खितेन्द्र नाथ सरकार, टटया गाँव में शिवानी बरुआ, बनगाँव में महेंद्र भुयाँ, जेंगराइ में अश्विनी दले, माजर देउरी में रेहिता देउरी, रतनपुर में माल पेगु, छमयाती में रमेश सेनापति वर्तमान समय में हिंदी प्रचार हेतु कार्यरत हैं। उनके निरंतर प्रयास से माजुली धीरे-धीरे हिंदी भाषा के क्षेत्र में आगे बढ़ रहा है। उत्तर कमलाबाड़ी सत्र पहले से ही वैष्णव संस्कृति के साथ-साथ अन्य सामाजिक कारणों का भी मार्गदर्शक रहा है। वर्तमान सत्राधिकार श्री श्री जनार्दन देव गोस्वामी जी की वजह से हिंदी प्रचार की यह धारा और विस्तृत रूप से आगे बढ़ी। उन्होंने कई विश्वविद्यालयों में हिंदी भाषा प्रचार सम्बन्धी भाषण रखे। हिंदी भाषा के वृहत

प्रचार के लिए उन्होंने राजधानी दिल्ली के कोई लोगों से संवाद किया। परंतु यायावरी तेज़ी हर किसी के अन्दर नहीं होती। लाखों में एक निकलता है जो अपने सुखी जीवन से दूर संकट को अपना पाए। ऐसा ही एक महान व्यक्तित्व हैं दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में प्रोफेसर चन्दन कुमार जी। प्रभु ईश्वर के आह्वान से बिना कुछ सोचे चौबे जी माजुली नदी द्वीप पहुँचे। यहाँ आकर सब जाति-जनजातियो से संवाद कर इस द्वीप की विविधता को समझने लगे। अब हिंदी प्रचार को मिला था एक बौद्धिक रूप। कई कठिनाईयों के बावजूद चौबे जी रुके नहीं, कई बार मंच पर हिंदी भाषा की उपयोगिता के बारे में समझाते समय उन्हें लोगों से कटु वाक्य भी सुनने पड़े थे। उनका लक्ष्य महापुरुषों द्वारा प्रवर्तित संस्कृति को भारतमुखी बनाना है। उन्होंने यह अनुभव किया कि हिंदी प्रचार के लिए हिंदी भाषी क्षेत्र के लोगों का ध्यान इस भूमि की ओर खींचना जरूरी है। इसीलिए उन्होंने कई विश्वविद्यालयों, सभा- समितियों में इस क्षेत्र एवं यहाँ की संस्कृतियों के बारे में बताने लगे। देश के विविध विद्वान लोगों को हर साल अपने साथ माजुली लाकर चन्दन जी इस नदी द्वीप को दे रहे थे एक व्यापक भारतीय परिचय। उनके आश्रय में आज माजुली ज़िले के कई छात्र हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ब्रजावली भाषा हिंदी से मिलती-जुलती एक भाषा है जिसे श्रीमंत शंकरदेव ने काव्य रचना के लिए तैयार किया था। वैष्णव धर्म को भारतमुखी बनाने के लिए शंकरदेव ने इस कृत्रिम भाषा का प्रयोग किया था। परंतु यह हमारी ही अकर्मण्यता है कि उस विचारधारा को हम भारतमुखी बनाने में आज तक विफल है। सत्राधिकार श्री श्री जनार्दन देव गोस्वामी के नेतृत्व में हर साल रास पूर्णिमा के दिन ब्रजावली भाषा में रास खेला जाता है। जिससे यह भाषा लुप्त होने से बचे और इसे मिले एक सर्वभारतीय परिचय।

विश्व का सर्व वृहत नदी द्वीप माजुली आज भी वैष्णव संस्कृति का ध्वजावाहक है। यहाँ की जाति-जनजातियों में हिंदी प्रचार करना एक चुनौती है जिसे समय-समय पर कई लोगों ने स्वीकारा है। परंतु आज भी यहाँ के गाँवों के लोगों ने हिंदी को उतना नहीं स्वीकारा है। हिंदी सीखने के लिए लोगों में वह उत्साह नहीं होने के कारण माजुली के सरकारी विद्यालयों में हिंदी शिक्षक का प्राय: अभाव देखा जाता है। सभी छात्र अष्टम कक्षा के बाद हिंदी छोड़ देते हैं। कोई इसे निर्वाचित विषय के रूप में ग्रहण करता है, तो उन्हें भी उच्च माध्यमिक स्तर पर जाकर उसे छोड़ना पड़ता है, क्योंकि पूरे ज़िले में उच्च माध्यमिक स्तर से ही हिंदी विषय नहीं पढ़ाया जाता। असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा आयोजित परीक्षा में प्रवीण उपाधि प्राप्त करने के बाद भी विद्यालयों में हिंदी शिक्षण का मौका नहीं मिलता, इसी कारण इन राष्ट्रभाषा विद्यालयों में भी छात्रों का आना कम हो गया है। व्यावहारिक जीवन को ज्यादा महत्त्व देने वाले इन लोगों में हिंदी की प्रयोजनीयता बोध कम है, एवं हिंदी उच्चारण में असुविधा होने के कारण लोग अंग्रेजी को ज्यादा महत्त्व देने लगे हैं। प्रो. दिनेश कुमार चौबे जी कहते हैं कि "भाषाई समन्वय की दृष्टि से हिंदी को लोकप्रिय बनाने और भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व करने के लिए भारतीय सामाजिक संस्कृति की अभिव्यक्ति के माध्यम बनने की योग्यता अर्पित करनी होगी।" उनका अभिप्राय यह है कि हिंदी को नियमों से बाहर निकालकर लोकोन्मुखी बनाना होगा। हिंदी भाषा और साहित्य को संपूर्ण भारत की छवि को प्रतिबिंबित करना होगा। ऐसा तभी होगा जब लोगों को उसी प्रकार भाषा व्यवहार की छूट देंगे जिस प्रकार उन्हें सुविधा हो। माजुली द्वीप में हिंदी प्रचार के लिए व्यक्तिगत एवं सामूहिक स्तर पर सर्वप्रथम मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता है, ताकि लोग अपने व्यक्तिगत स्तर एवं संस्थागत स्तर पर हिंदी को अधिक लोकप्रिय बना सकें। भारत की सभी भाषाओं को हिंदी में शामिल कर उसे विस्तृत रूप प्रदान कर जनतामुखी बनाना अत्यंत जरूरी है। सरकार को भी हिंदी भाषा के लिए कार्य करना जरूरी है, ताकि अधिक से अधिक लोग इस भाषा से जुड़े। संस्थाओं को पठन-पाठन के अलावा सांस्कृतिक कार्यो द्वारा हिंदी भाषा को जनगण तक लेकर जाना होगा। माजुली नदी द्वीप पर हिंदी प्रचार आन्दोलन और अधिक व्यापक बने यही लोगों से अपेक्षा है, ताकि एक विदेशी भाषा के ऊपर अपने भाषा का उपयोग लोग गर्व से कर सकें।

सन्दर्भ :

1. दक्षिणपात सत्र में प्राप्त हस्तलिखित पौराणिक पोथी,
2. द्विभाषी राष्ट्र सेवक : मई 2010ई. : पूर्वोत्तर भारत में हिंदी प्रचार की समस्याएँ एवं समाधान : डॉ. दिनेश कुमार चौबे,
3. स्वर्गीय नारायण हजारिका द्वारा लिखित अप्रकाशित जीवनी,
4. साक्षात्कार :

लक्ष्मीनारायण व्यास : रिटायर्ड हिंदी शिक्षक,
अखिल ठाकुर : हिंदी शिक्षक,
कमलाबाड़ी राष्ट्रभाषा महाविद्यालय,
खितेंद्र नाथ सरकार : हिंदी शिक्षक,
गरमुर श्री लोहित राष्ट्रभाषा विद्यालय,
मुहिकांत बरबायन : हिंदी विशारद,
सत्रीया शिल्पी एवं शिक्षक,
माला हजारिका : स्वर्गीय नारायण हजारिका जी की धर्मपत्नी,
करिना हजारिका : इतिहास अध्येता, माजुली कॉलेज

पूर्वोत्तर भारत और हिंदी

- प्रो. लालचंद राम

पूर्वोत्तर भारत का अर्थ भारत के सर्वाधिक पूर्वी दिशा में स्थित राज्यों से है। जिसमें अरुणाचल प्रदेश, असम, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, सिक्किम और त्रिपुरा कुल आठ प्रदेश हैं। 'अरुणाचल प्रदेश' को पूर्ण राज्य का दर्जा 1987ई. में मिला, किन्तु उससे पूर्व 15 वर्षों तक (1972-87 ई.) यह राज्य केन्द्र शासित प्रदेश रहा। भाषा की दृष्टि से अरुणाचल में 42 बोलियाँ बोली जाती है और यहाँ की अधिकांश भाषाएँ तिब्बती- बर्मी परिवार से सम्बन्ध रखती हैं। यह भाषा सांस्कृतिक बहुल राज्य है और मुगलों के शासन से मुक्त रहा है। अरुणाचल सघन वनों से अच्छादित हिमालय पर्वत शृंखला के अंतर्गत आता है। इसे उगते सूर्य का प्रदेश भी कहते हैं। यहाँ प्रयुक्त होने वाली भाषाओं की कोई अपनी लिपि नहीं है सिर्फ खामटी समूह की एकमात्र ऐसी भाषा है जिसकी अपनी लिपि है। शेष भाषाएँ देवनागरी लिपि में ही प्रयुक्त की जाती हैं। हर प्रदेश का कोई न कोई मिथक होता है। अरुणाचल का भी प्राचीन एवं मध्यकालीन इतिहास मिथकों से भरा हुआ है।

जहाँ तक भाषा का सवाल है, अरुणाचल भाषा एवं संस्कृति बहुल होने के साथ ही उसकी संपर्क भाषा हिंदी है। हालाँकि सरकारी कामकाज, पत्र- व्यवहार अंग्रेजी में होता है किन्तु बाज़ार, यातायात, रोज़गार आदि क्षेत्रों में हिंदी का प्रयोग प्रचलित है। हालाँकि केन्द्र सरकार के आदेश द्वारा 1956ई. से हिंदी विषय को अरुणाचल प्रदेश के विद्यालयों में पठन-पाठन हेतु अनिवार्य कर दिया गया था।

देखा जाए तो अरुणाचल प्रदेश में हिंदी का प्रयोग व्यवहार राजभाषा की दृष्टि से 'क' क्षेत्र की तरह होता है। लेकिन उसकी गिनती 'ग' क्षेत्र में की जाती है। भाषा के क्षेत्र में काम करते हुए, भारतीय भाषा संस्थान, मैसूर तथा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् ने अरुणाचल प्रदेश की क्षेत्रीय भाषाओं पर बहुत काम किया है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्रकाशित हिंदी की पाठ्यपुस्तक 'अरुण भारती' वहाँ के 'विद्यालयों' में वर्षों तक पढ़ाई जाती रही है जिससे हिंदी के प्रति वहाँ के लोगों में रुचि पैदा हुई और वह आमजन तक सुलभ हो सकी।

अरुणाचल प्रदेश भारत का अभिन्न हिस्सा है। इसे सामरिक दृष्टि से भारत का हिस्सा ही नहीं, बल्कि बहुत जागरुक बनाया गया। वहाँ की जनता देश प्रेम तथा राष्ट्रभक्ति से भरी हुई है। चीनी सैनिकों के अवांछित घुसपैठ की सूचना सबसे पहले वहाँ की जनता को होती है और वे तुरंत भारतीय सैनिकों को देते हैं। सीमावर्ती होने के कारण सेना के जवानों की आवाजाही बढ़ने तथा जनता से जुड़ने में संपर्क भाषा का काम हिंदी बखूबी करती है। प्राकृतिक सुख की दृष्टि से भी यह पर्यटन का प्रमुख केन्द्र रहता है, उससे भी हिंदी का विकास हो रहा है। अरुणाचल प्रदेश की जनता भी प्रदेश से बाहर दिल्ली, मुंबई, कोलकाता तथा अन्य प्रमुख शहरों में आती- जाती है। आवागमन, पर्यटन, बाज़ार, विज्ञापन, हिंदी फिल्म तथा गानों ने भी वहाँ हिंदी का वृहत संसार सृजित किया है। प्राकृतिक सौंदर्य और सांस्कृतिक सम्पन्नता की दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश का कोई शानी नहीं है। यह देश का पूर्वी राज्य है। अरुणाचल के पूर्वी छोर पर एक छोटा-सा गाँव 'काहो' है जो भारत- चीन सीमा का आखिरी गाँव है।

अरुणाचल प्रदेश की सीमा चार देशों के साथ लगती है। पश्चिम में भूटान, पूर्व में म्यांमार (बर्मा) तथा उत्तर में तिब्बत और चीन। यहाँ से शेष भारत में प्रवेश के केवल दो ही रास्ते हैं। एक असम के रास्ते और दूसरा नागालैण्ड के रास्ते। भारत और चीन में तनातनी के कारण यह प्रदेश हमेशा चर्चा का विषय रहता है। यहाँ के निवासी ईश्वर में आस्था रखते हैं तथा प्रकृति पूजक हैं। साथ ही न्यायप्रिय और दयालु भी हैं। भूटान, तिब्बत तथा म्यांमार की सीमाओं के साथ लगने वाले क्षेत्रों के लोग बौद्ध धर्म के अनुयायी हैं। किन्तु वहाँ का मुख्य धर्म ईसाई और हिन्दू है। हालाँकि कुछ दशक पहले जैन, सिक्ख तथा इस्लाम के अनुयायियों ने अपनी उपस्थिति दर्ज की है। ये प्राय: प्रवासी लोग हैं जो व्यापार,

निर्माण तथा सरकारी कार्यालयों में काम करते हैं। उन्हीं लोगों के साथ उनकी आस्था, धर्म तथा संस्कृति भी राज्य में आ गई है। हालाँकि साम्प्रदायिक झगड़े या उन्माद यहाँ नहीं पाए जाते हैं। विविध भाषा- भाषी धर्म तथा संस्कृति के आपसी मेलजोल से वहाँ सामाजिक सौहार्द बढ़ा है और हिंदी संपर्क भाषा होने के नाते संवाद तथा व्यवहार का माध्यम भी बनी। हालाँकि आसपास के जो पूर्वोत्तर राज्य हैं, वे भी पड़ोसियों की तरह अपनी भाषाओं का प्रयोग करते हैं। यह कहा जा सकता है कि प्रशासनिक कार्य तथा विद्यालयों में पठन-पाठन की माध्यम भाषा अंग्रेजी है, परन्तु द्वितीय या तृतीय भाषा के रूप में हिंदी प्रयोग की जाती है।

यह कहा जा सकता है कि अरुणाचल प्रदेश बहुभाषा-भाषी राज्य है, किन्तु हिंदी के प्रति वहाँ के लोगों में प्रेम और सद्‌भाव देखने को मिलता है। हिंदी प्रचार-प्रसार की संस्थाओं ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कदम उठाए हैं। बाकी राज्यों की तुलना में अरुणाचल प्रदेश हिंदी के काफी निकट दिखाई पड़ता है। वैसे भी भाषा और संस्कृति कोई प्रादेशिक सीमा नहीं होती। उसके बोलने वाले जहाँ-जहाँ जाएँगे, वहाँ-वहाँ तक भाषा और संस्कृति भी यात्रा करती जाएगी। पूर्वोत्तर के प्रदेशों में हिंदी भाषी जनता, व्यापार तथा रोजी-रोटी की तलाश में वहाँ पहुँचकर अपनी भाषा और संस्कृति को भी बाज़ार की भाषा में बदला है। इस दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा पठन-पाठन के लिए स्थितियाँ बहुत अनुकूल हैं। थोड़े प्रयास से हिंदी का बेहतर विकास वहाँ के जनमानस द्वारा हो सकता है। जिस तरह से भारत सरकार ने पूर्वोत्तर के राज्यों के लिए विशेष पैकेज आवंटित किया है या इससे हिंदी का विस्तार भी हुआ है। आने वाले वर्षों में हिंदी के प्रगामी प्रयोग को ध्यान में रखकर अगर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, केन्द्रीय हिंदी संस्थान, राजकीय हिंदी शिक्षक- प्रशिक्षण संस्थान, राज्य व केन्द्र सरकार के कार्यालय, सिनेमा, मीडिया और विभिन्न टेलीविजन चैनल के कार्यालय या इनकी शाखाएँ अरुणाचल प्रदेश में खोली जाएँ तो वह निश्चित ही अरुणाचल प्रदेश के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। अरुणाचल से प्रकाशित हिंदी पत्र 'अरुण- भूमि' की हिंदी के प्रचार-प्रसार में अहम भूमिका है। किन्तु इसके अतिरिक्त भी पत्र-पत्रिकाओं व समाचार पत्रों का प्रकाशन राज्य के लिए महत्त्वपूर्ण हो सकता है। अरुणाचल प्रदेश की जनसंख्या बेशक कम है, किन्तु लोग बहुत जागरूक हैं। उनकी जागरुकता को राष्ट्रभक्ति का जामा पहनाकर देश की मुख्य धारा में शामिल किया जा सकता है। पहले हम उनके बनें फिर उन्हें अपना बनाएँ, पहले उनकी भाषा संस्कृति से अपने को जोड़ें फिर उनको अपनी भाषा संस्कृति से।

पूर्वोत्तर प्रदेश 'असम' भारत के उत्तर- पूर्व का प्रवेश द्वार है। इसकी भी प्राकृतिक सुषमा अनुपम है। असम चाय बागानों के लिए भी जाना जाता है। हरे- भरे वन, ब्रह्मपुत्र की नदियाँ और उनकी शाखाएँ चाय के विशाल बागान और तेल- क्षेत्र के लिए उल्लेखनीय हैं। भौगोलिक रूप से असम पश्चिम बंगाल में एक- दो किलोमीटर लम्बी भूपट्टी से सिली गुड़ी के पास शेष भारत से जुड़ा हुआ है। इसकी अन्तर्राष्ट्रीय सीमा भूटान और बांग्लादेश हैं। असम कृषि प्रधान देश है। जहाँ धान की दो प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यहाँ पेट्रोलियम तथा प्राकृतिक गैस, कोयला, चूना, पत्थर, ग्रेनाइट, चाय और पर्यटन राज्य के प्रमुख उद्योग हैं। किन्तु अन्य उद्योगों में खाद, चीनी, कागज, चावल की मिलें, खाद्य प्रसंस्करण तथा रेशम की खेती आदि शामिल है। असम अरुणाचल प्रदेश, मेघालय, नागालैण्ड, मणिपुर, त्रिपुरा और मिजोरम आदि राज्यों से जुड़ा हुआ है। सन् 1885ई. के बाद जब स्वतंत्रता आंदोलन ने जोर पकड़ा तब राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्रभाषा हिंदी की आवश्यकता लोगों को महसूस होने लगी थी, किन्तु असम में हिंदी को लेकर कोई संस्थागत प्रयास नहीं हुए। 1926ई. में पहली बार विद्यालयों में हिंदी- शिक्षण को एक विषय के रूप में जगह मिली जबकि अब वहाँ तीसरी कक्षा से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है और दसवीं तक ऐच्छिक विषय के रूप में। 1934ई. में जब गांधीजी 'अखिल भारतीय हरिजन सेवा संघ' की स्थापना के लिए असम आए थे तो उन्होंने अपने संबोधन में हिंदी सीखने की बात कही थी। गांधीजी से प्रभावित होकर कुछ नागरिकों ने कहा कि हम हिंदी- शिक्षण- प्रशिक्षण का कार्यक्रम तो शुरू कर सकते हैं, किन्तु ऐसा करने के लिए हमें कोई हिंदी का व्यक्ति चाहिए, क्योंकि हमारे पास हिंदी सिखाने वालों की कमी है। इस बात से संतुष्ट होकर गांधीजी ने बाबा राघवदास को हिंदी प्रचारक के रूप में नियुक्त करके असम भेज दिया। असम पहुँचकर बाबा राघवदास ने हिंदी भाषी लोगों को हिंदी- शिक्षण के लिए नियुक्त किया। ये सभी प्रशिक्षित अध्यापक तो नहीं थे, किन्तु असमिया भाषा जानते थे जो हिंदी के प्रचारक के रूप में प्रचार-प्रसार का कार्य करने लगे। कुछ लोग इसी बीच काशी विद्यापीठ जैसे राष्ट्रीय संस्थान में अध्ययन के लिए गए। बाद में उन्हें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित हिंदी अध्यापन मंदिर में प्रशिक्षण के लिए भेज दिया गया। इन्हीं के अथक प्रयास से

असम में हिंदी का प्रचार-प्रसार बढ़ा और आगे चलकर 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का गठन हुआ।

असम का हिंदी भाषी राज्यों से गहरा सम्बन्ध रहा है। आज़ादी के पूर्व से ही बिहार, राजस्थान, उत्तर प्रदेश से लोग यहाँ आते- जाते रहे। असम के लोगों का अन्य राज्यों के लोगों के साथ सम्पर्क हुआ और कई प्रकार के सम्बन्ध बने। क्योंकि जो भी व्यक्ति कहीं किसी अन्य प्रदेश में जाता है, अपने साथ अपनी भाषा और संस्कृति को भी ले जाता है। वह बेशक काम- काज के लिए, बिजनेस- व्यापार के लिए वहाँ की क्षेत्रीय भाषा को अपनाता है, किन्तु घर- परिवार में अपनी भाषा का ही प्रयोग करता है। हालाँकि मुगलकाल और अंग्रेजों के जमाने में भी देश के अनेक भागों से हिंदी भाषी लोगों का असम में आना- जाना लगा रहता था। किन्तु अंग्रेजों ने जब चाय बागान का विस्तार किया उस समय बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश आदि अनेक हिंदी भाषी राज्यों से लोगों को लाकर बसाया। अब तो 'चाय' उद्योग में काम करने वाले अधिकांश लोग हिंदी का प्रयोग करते हैं। उनकी जातीय पहचान और संस्कृति आज भी हिंदी है।

असम में सबसे बड़ा नदी द्वीप माजुली में इसे सौर ऊर्जा का उत्पादन और ब्रह्मपुत्र नदी के ऊपर सबसे आकर्षक सूर्यास्त के लिए जाना जाता है। असम से गुवाहाटी में सबसे छोटे बसे हुए ब्रह्मपुत्र नदी के द्वीप हैं। देश का पहला तेल का कुआँ और तेल की शोधशाला असम के डिगबोई में है। असम भारत का एकमात्र ऐसा राज्य है जो तीन प्रकार के रेशम का उत्पादन करता है। चाय के उत्पादन में असम का कोई शानी ही नहीं है। हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कई सारी संस्थाएँ अनवरत काम कर रही हैं। उदाहरण के लिए, असम राष्ट्रभाषा समिति गुवाहाटी, केन्द्रीय हिंदी संस्थान गुवाहाटी, असम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जोरहाट, राजकीय हिंदी शिक्षक- प्रशिक्षण महाविद्यालय, गुवाहाटी, राजकीय हिंदी शिक्षक- प्रशिक्षण संस्थान नार्थ गुवाहाटी तथा राजभाषा विभाग, गृहमंत्रालय, असम सरकार आदि हिंदी के प्रचार-प्रसार में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहे हैं।

असम में बड़ी संख्या में प्रवासी मजदूर काम करते हैं- कामकाज, बिजनेस व्यापार, बाज़ार तथा सांस्कृतिक उत्सवों के अवसर पर असमी के साथ-साथ हिंदी का व्यापक प्रयोग हो रहा है। असमी भाषा और साहित्य बहुत समृद्ध है, किंतु हिंदी के साथ उसके घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। असमी भाषा का लेखक, कवयित्री तुरन्त हिंदी में आना चाहता है इसलिए हिंदी में अनूदित होकर शीघ्र ही व्यापक समाज से जुड़ जाता है। शुरू से ही असम के लोग अकादमिक, राजनीतिक, शिल्प, नृत्य, संगीत, कला- साहित्य संगीत, थिएटर, फिल्म आदि क्षेत्रों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेते रहे हैं। जिस तरह से हिंदी प्रदेशों में गंगा नदी का स्थान है उसी तरह से असम में ब्रह्मपुत्र नदी का। असम में आरक्षित वनों, राष्ट्रीय उद्यानों, अभ्यारणों तथा आर्द्र भूमि की प्रचुरता के कारण यहाँ दुर्लभ प्रजाति के पशु पक्षी पाए जाते हैं। काजीरंगा अभ्यारण्य असम पूरे देश- दुनिया में विख्यात है। वर्षों तक असम में चेरापूँजी सबसे अधिक वर्षा के लिए जाना जाता रहा है। पर्यावरण तथा प्राकृतिक सुन्दरता के लिए असम बहुविध है। अलग-अलग फल, फूल, पौधे, पशु- पक्षी की अलग- अलग जातियाँ- प्रजातियाँ यहाँ पाई जाती हैं। आज भी वह अपनी संस्कृति, सभ्यता, भाषा, कला, थियेटर गीत- संगीत के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं। कला, गीत संगीत थियेटर और फिल्म की दुनिया, भाषा की सीमा में बँधे नहीं रह सकते। इसीलिए उन्हें व्यापक बाज़ार की जरूरत होती है। हिंदी भाषा और हिंदी दुनिया एक बहुत बड़ा बाज़ार है। उससे जुड़कर असम की भाषा, संस्कृति, कला, संगीत, फिल्म आदि का तो विकास हो ही रहा है साथ में हिंदी भी फल- फूल रही है। असम के शैक्षिक संस्थान- विद्यालयों विश्वविद्यालयों, आदि में हिंदी में अध्ययन- अध्यापन बढ़ा है। इससे स्पष्ट होता है कि असम की जनता हिंदी में रुचि ले रही है। हिंदी संपर्क भाषा, कला जगत की भाषा, अध्ययन-अध्यापन की भाषा बिजनेस- व्यापार की भाषा तथा सार्वदेशिक भाषा के रूप में काम कर रही है। चूँकि हिंदी का बाज़ार के साथ एक गहरा रिश्ता है। इसलिए हिंदी और असमी दोनों के बीच भाषाई आदान- प्रदान की बहुत ही गुंजाइश है। ऐसे अवसरों की तलाश की जानी चाहिए जिससे इन दोनों के बीच निकटता बढ़े और असमी के साथ हिंदी लोगों के दिलों की भाषा बने। जिस प्रदेश में हिंदी के प्रचार-प्रसार के इतने संगठन और संस्थान हैं वहाँ हिंदी का भविष्य तो उज्जवल होगा ही, इसमें कोई संदेह नहीं है।

पूर्वोत्तर के राज्यों में मणिपुर को भारत का रत्न कहा जाता है। पहाड़ियों से घिरा मणिपुर बहुत ही खूबसूरत राज्य है जिसे लोग 'सुनहरी धरती' कहते हैं। मणिपुर की सीमाएँ मिजोरम, असम और नागालैण्ड राज्यों से जुड़ती हैं। मणिपुर की घाटी एक पठार है। उसकी पहाड़ियाँ एवं पर्वतमालाएँ भारत की उत्तरी सीमाओं का निर्धारण करती हैं। मणिपुर पर बंगाल के कृष्ण भक्त चैतन्य महाप्रभु का प्रभाव रहा हैं, हालाँकि पर्वतीय ज़िलों में अधिकांश जनसंख्या ईसाई धर्म के उपासकों की है। मणिपुर में 19वीं शताब्दी में ईसाई धर्म का प्रचार शुरू कर दिया था। घाटी में मुस्लिमों का भी एक

वर्ग है जिनका सम्बन्ध सुन्नी सम्प्रदाय से है। खेल के इतिहास में मणिपुर पारम्परिक खेलों के लिए जाना जाता है। माना जाता है कि 'पोलो' का प्रारम्भ मणिपुर से ही हुआ। दूसरा लोकप्रिय खेल नौका दौड़ भी है। आजकल तो मणिपुर राज्य राष्ट्रीय खेलों, राष्ट्रमण्डल खेलों, एशियाई खेलों तथा ओलम्पिक खेलों में बड़ी संख्या में देश का प्रतिनिधित्व करता है। मणिपुर की अर्थव्यवस्था कृषि, वन, उपज, उद्योग, खनन, व्यापार तथा पर्यटन पर आधारित है। राज्य के घरेलू उत्पादन में कृषि का महत्त्वपूर्ण योगदान है। यह रोज़गार देने वाला सबसे बड़ा क्षेत्र है। क्योंकि मणिपुर की अधिकांश जनसंख्या गाँव में रहती है। दो तिहाई लोग अपनी जीविका के लिए कृषि पर निर्भर रहते हैं। हस्तशिल्प भी राज्य का महत्त्वपूर्ण उद्योग है। कपड़े पर कढ़ाई बेंत और बाँस नगीने तथा लकड़ी का काम, बर्तन और धातु शिल्प गुड़िया और खिलौने आदि पर मणिपुर हस्तशिल्प का व्यापक प्रभाव है। खासकर कुटीर उद्योग, हथकरघा उद्योगों में महिलाएँ पारंगत है। एक तरह से कह सकते हैं मणिपुर की महिलाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन में देखी जा सकती है। राज्य के तमाम उत्पादनों का व्यापार और लेन- देन महिलाओं द्वारा ही किया जाता। कह सकते हैं कि मणिपुर में महिलाओं का स्थान काफी ऊँचा और स्वतंत्र है। यहाँ की महिलाओं ने अंग्रेजों को भी मात दी थी।

चूँकि इम्फाल में बाज़ार व्यवस्था महिलाओं के हाथ में है। यह उनकी अपनी आत्मनिर्भरता, अस्मिता और सशक्तिकरण का प्रतीक है। वे अपनी आत्मनिर्भरता और अस्मिता के लिए लड़ती हैं और उसकी रक्षा के लिए जानी जाती हैं। वे नागरिक आंदोलन, मादक द्रव्यों के दुरुपयोग, शराबखोरी तथा महिलाओं के विरूद्ध होने वाले अपराधों और राजनीतिक मुद्दों पर लड़ाई भी लड़ती हैं। मणिपुर की जनता उत्सव धर्मी है और उनके उत्सव कृषि संस्कृति से जुड़े हुए हैं। नृत्य और संगीत उनके जीवन का अभिन्न अंग हैं। प्राचीन काल से मणिपुर भारत और बर्मा के बीच भूमिगत व्यापार का मार्ग रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय भी यहाँ जापानियों और मित्र राष्ट्रों की फौजों के बीच कई युद्ध लड़े गए। सुभाष चन्द्र बोस के नेतृत्व में इण्डियन नेशनल आर्मी मणिपुर में प्रवेश कर मोईरंग पहुँच गई थी। हालाँकि द्वितीय विश्वयुद्ध में जापानियों के पीछे हटने के कारण 14 अप्रैल 1944ई. को मोईरंग में सुभाष चन्द्र बोस ने राष्ट्रीय ध्वज फहराया। अंग्रेजों से मुक्ति के बाद मणिपुर संविधान अधिनियम, 1947ई. के अंतर्गत 1949ई. में मणिपुर का भारत में विलय हुआ। 1972ई. तक लगभग 25 वर्षों तक मणिपुर केन्द्र शासित प्रदेश था उसके बाद यह पूर्ण राज्य बना। कांस्य पदक विजेता और लगातार 5 बार की विश्व बॉक्सिंग विजेता मैरी कॉम ने देश और अपने राज्य मणिपुर को वैश्विक गौरव प्रदान किया। उन्हें कई सारे राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हैं। हाल ही में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया गया था। मणिपुर आधुनिक भारत का एक अलग रूप है, जहाँ विभिन्न समुदायों ने एक सामासिक संस्कृति में अपना- अपना स्थान बनाया है। मणिपुर की सामासिक संस्कृति और राष्ट्रीय देश के लिए गौरव की बात है। इनका उल्लेख भारतीय साहित्य में अवश्य किया जाना चाहिए। भाषा और साहित्य की दुनिया सामसिकता के बिना फल- फूल नहीं सकती। हिंदी को फलने- फूलने- विस्तार के लिए यह सामासिकता ही उसकी ताकत है, शक्ति है। देश का प्रत्येक राज्य व्यवस्था और केन्द्र से जुड़कर अखिल भारतीय होना चाहता है हिंदी उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है। इसलिए मणिपुर में हिंदी का विस्तार और भविष्य उज्ज्वल है।

मेघालय तो मेघों (बादलों) का घर है। यहाँ ऊँची- ऊँची पहाडियाँ हैं। दरअसल मेघालय अपनी खूबसूरती के लिए जाना जाता है। औपनिवेशिक काल में शिलॉन्ग को 'पूर्व का स्कॉटलैण्ड' कहा जाता था भारत के उत्तर- पूर्वी राज्यों में मेघालय ही एकमात्र राज्य है जहाँ मातृवंशीय समाज का प्रचलन है, इसमें वंश परंपरा माँ के नाम से चलती है। यहाँ महिलाओं को विशेष अधिकार प्राप्त हैं। यहाँ सबसे छोटी लड़की ही पूर्वजों की सम्पत्ति की स्वामी होती है, जबकि मामा इस समाज में एक परामर्शदाता होता है जो सभी मामलों में अंतिम निर्णय लेता है।

यहाँ तीन प्रमुख जनजातियाँ- खासी, गारो, और जयंतिया निवास करती हैं। इन्हीं जनजातियों के आधार पर मेघालय को तीन क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है, जैसे- खासी हिल्स में खासी जनजाति, गारो हिल्स में गारो जनजाति और जयंतिया हिल्स में जयंतिया जनजाति। मेघालय के इतिहास को देखें तो वहाँ ईसाई मिशनरियों का पहुँचना एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। धर्म प्रचार के साथ ही ईसाई मिशनरियों ने शिक्षा के लिए और स्वास्थ्य का प्रबँध भी किया। इसी सेवा भावना के माध्यम से वे अपने धर्म, भाषा और संस्कृति का प्रचार-प्रसार करते थे। प्रारंभ में जो खासियों के लिए स्कूल खोले गए वहाँ बंगाली लिपि लागू की गई बाद में स्कूलों में रोमन लिपि का प्रयोग होने लगा। खासी, गारो और जयंतिया लोगों ने जब रोमन लिपि अपनाई तो बहुत ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने बाईबल तथा ईसाई साहित्य का स्थानीय भाषाओं के

अनुवाद किया जिसे मिशनरी स्कूल में लागू किया गया।

पूर्व में मेघालय असम राज्य के अंतर्गत आता था। 1972ई. में मेघालय अलग राज्य बना। पहले यह असम का एक प्रशासनिक केन्द्र था। इसलिए यहाँ ब्रह्म समाज आंदोलन, बंगाल पुनर्जागरण तथा रामकृष्ण मिशन से आने वाले नए विचारों का हमेशा सम्मान किया जाता था। इन आंदोलनों ने न सिर्फ विचार दिए, बल्कि समाज में चेतना लाने के लिए वहाँ के लोगों में शिक्षा का प्रचार-प्रसार भी किया। ब्रह्म समाज तथा रामकृष्ण मिशन ने न केवल खासी हिल्स में अनेक स्कूल खोले, बल्कि उन्होंने परोपकार हेतु तो दवाखाने भी खोले। सन् 1924ई. में रामकृष्ण मिशन द्वारा खोला गया विद्यालय आज भी सिर्फ मेघालय का प्रतिष्ठित विद्यालय है। मेघालय में सोहरा (चेरापूँजी) सिर्फ भारत में नहीं बल्कि पूरे विश्व में सबसे अधिक वर्षा के लिए जाना जाता था, जो अब मासिनराम (मेघालय) है। मेघालय का बड़ा ही गौरवशाली अतीत, समृद्ध सांस्कृतिक विरासत तथा अद्‌भुत भू- परिदृश्य रहा है। अंग्रेजी शासन काल से ही राज्य देश भर में ख्याति प्राप्त स्कूलों के लिए प्रसिद्ध रहा है। भारत के खूबसूरत राज्यों में शामिल मेघालय पर्यटकों का पंसदीदा पर्यटन स्थल है। जो प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन समय से विख्यात हो, पर्यटन स्थल के लिए जाना जाता रहा हो, बिजनेस- व्यापार तथा सरकारी कार्यलायों का केन्द्र हो वहाँ निश्चित रूप से हिंदी के लिए विकास करने, फलने- फूलने का भरपूर अवसर है। बेशक हिंदी यहाँ द्वितीय- तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती हैं, किंतु संपर्क भाषा के रूप में सर्वाधिक बोली जाती है। केन्द्र सरकार के जो कार्यालय या शैक्षिक संस्थान वहाँ भाषा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं उन्हें मेघालय की बोली और भाषा को हिंदी के साथ तुलनात्मक रूप से जोड़ने तथा अनुवाद के माध्यम से एक- दूसरे के करीब लाने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि बाज़ार और मीडिया हिंदी भाषा के विस्तार और विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं। जाहिर है मेघालय इससे वंचित या उपेक्षित नहीं है। पहले यह कहावत प्रचलित थी कि कश्मीर धरती का स्वर्ग है, किंतु अब मेघालय को 'पूर्व का स्कॉटलैण्ड' कहा जाता है। कांजीरगा नेशनल पार्क जो एक सींग वाले गैडे के लिए जाना जाता है, मेघालय में स्थित है। इस राज्य का ऐतिहासिक महत्त्व भी है क्योंकि स्वामी विवेकानंद और सुभाष चंद्र बोस जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों ने औपनिवेशिक काल में शिलॉन्ग आए थे और कुईनटोन स्मारक हॉल में एक प्रेरणादायी व्याख्यान दिया था। इस हॉल का नामकरण बाद में रामकृष्ण मिशन विवेकानंद सांस्कृतिक केन्द्र कर दिया गया हालाँकि सुभाष चंद्र बोस सन् 1927 के बाद लगातार शिलॉन्ग आते रहे। अपनी प्रथम यात्रा में बोस ने एक पर्वतीय रिसॉर्ट को बर्मी जेलों में सश्रम कैद के दौरान अपनी सेहत में आई गिरावट से उबरने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त स्थान के रूप में चयनित किया। मेघालय बहुत ही समृद्ध राज्य है। मेघालय की राजधानी शिलॉन्ग में कई शैक्षिक संस्थान खोले गए हैं। जैसे उत्तर- पूर्व पर्वतीय/विश्वविद्यालय तथा उत्तर- पूर्व क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, NCERT तथा NTPC और IFLU है। साथ ही अन्य सरकारी संस्थान हैं, जहाँ पूरे देश के लोग काम करते हैं। ये लोग अपनी भाषा और संस्कृति के साथ मेघालय आए हैं। ज्यादा से ज्यादा संवाद, उत्सव, सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाएँ और उनकी भाषा और संस्कृति का सम्मान किया जाना चाहिए। उन्हें भी देश के सत्ता शीर्ष शासन में जगह दी जाए तो निश्चित ही सकारात्मक माहौल तैयार होगा हिंदी उनमें बड़ी भूमिका निभा सकती है।

पूर्वोत्तर प्रदेशों में मिजोरम नीले पर्वतों का प्रदेश माना जाता है। यह उत्तर पूर्वी भारत के दक्षिणी छोर पर स्थित है। इसकी अतर्राष्ट्रीय सीमाएँ दक्षिण और पूर्व में म्यांमार तथा पश्चिम में बांग्लादेश से लगती हैं। इसके पश्चिम में त्रिपुरा तथा उत्तर में असम और मणिपुर राज्य है। इसका भौगलिक क्षेत्र सामरिक महत्त्व का है। मिजोरम में बसने वाले लोग मिजो कहलाते हैं। कई समूह हैं जो मिजों के रूप में जाने जाते हैं। मिजों के सगोतीय लोग पूरे उत्तर- पूर्वी भारत बर्मा तथा बांग्लादेश में रहते हैं ब्रूं और चक्मा मिजोरम के दूसरे जनजाति समूह हैं। नेपालियों की एक बड़ी संख्या मिजोरम के अलग- अलग हिस्सों में फैली हुई है।

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ईसाई मिशनरियाँ धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए मिजोरम आई थी। मिजोरम के लोगों का प्रमुख धर्म ईसाई है, क्योंकि ईसाई मिशनरियाँ जहाँ भी गई वहाँ धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ शिक्षा और स्वास्थ सम्बन्धी मूल प्रश्नों को संबोधित करती हुई अपनी भाषा और संस्कृति की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया। ईसाई मिशनरियों के धर्म प्रचार का मिजोरम की महिलाओं पर दूरगामी असर हुआ। ईसाई मिशनरियों ने महिलाओं के लिए पश्चिमी शिक्षा शुरू की। शुरू में तो लड़को की शिक्षा को ही प्राथमिकता दी गई किंतु बाद में लड़कियों की शिक्षा को भी प्राथमिकता दी गई। शिक्षित लड़कियों को मिशनरियों ने नौकरियाँ प्रदानकर उन्हें आत्मनिर्भर बनाया। मिजो लोगों में वधू मूल्य चुकाने की प्रथा है शादी के बाद वधू मूल्य निर्धारित होता है जिसका भुगतान दूल्हे के परिवार द्वारा वधू

परिवार के मुखिया को किया जाता है। कुछ अंश शादी के दौरान किया जाता है और शेष भुगतान वर्षों तक किया जाता है। मिजो के लोगों द्वारा मुख्य भाषा मिजो का ही प्रयोग होता है जिसे लुशाई भी कहा जाता है। इस भाषा का सम्बन्ध कुकी चीन भाषा समूहों से है जो तिब्बत बर्मी परिवार की एक प्रमुख भाषा है। मिजो अंग्रेजी के साथ यहाँ की राजकीय भाषा भी है। हालाँकि राज्य में बगांली, हमार, लखेर, मारा, नेपाली, पावी, पाइथे तथा थाडरु आदि भाषाएँ और बोलियाँ हैं। मिजो की अपनी कोई लिपि नहीं है।

मिजो की लिपि रोमन है जिसमें 34 अक्षर शामिल है। मिजो का अपना भाषा साहित्य है, किंतु ईसाई मिशनरियों के योगदान से अंग्रेजी का बोलबाला भी है। मिजोरम भारत का अभिन्न अंग है इसीलिए वहाँ की जनता, भाषा- संस्कृति अकेली न पड़ जाए इसलिए हिंदी भाषा, समाज और संस्कृति से जोड़कर उन्हें विकास की मुख्य धारा में लाया जा सकता है। यह तभी संभव है जब मिजो और हिंदी के बीच अनुवाद के माध्यम से एक- दूसरे को जोड़ा जाए। चूँकि बिजनेस, व्यापार, रोटी, रोज़गार तथा सरकारी और राजकीय कार्यालयों में राजभाषा हिंदी के साथ उनकी भाषाओं को प्राथमिकता देनी होगी। जब हम किसी की मातृभाषा को प्राथमिकता देते हैं या उसकी मातृभाषा का सम्मान करते हैं तो उसकी सभ्यता और संस्कृति, पर्व- त्यौहार, रीति-रिवाज के साथ खुद को जोड़ते हैं। उनके लिए हिंदी विदेशी या अपरिचित भाषा नहीं है। परिवेश में, मीडिया में, शिक्षण संस्थानो में हिंदी प्रयुक्त हो रही है। जरूरत है उसे सांस्थानिक रूप देकर हिंदी में अनुवाद कर ज्यादा से ज्यादा प्रचारित- प्रसारित करने की। हिंदी के माध्यम से सत्ता प्रतिष्ठानों तक आसानी से पहुँचा जा सकता है। इसलिए हिंदी और मिजो के बीच सांस्कृतिक मेल- मिलाप करने से भाषाई दूरियाँ कम की जा सकती हैं। पूर्वोत्तर भारत के अन्य राज्यों की तरह यहाँ भी हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है जरूरत है पहल की।

पूर्वोत्तर भारत में नागालैण्ड उत्सवों का प्रदेश है। यहाँ साल भर उत्सव मनाए जाते हैं। नागालैण्ड के पूर्व में म्यांमार तथा अरुणाचल प्रदेश पश्चिम, और उत्तर में असम तथा दक्षिण में मणिपुर राज्य है। नागालैण्ड में 16 प्रमुख जनजातियाँ तथा अनेक उपजातियाँ निवास करती हैं। रीति- रिवाजों, भाषा तथा वेशभूषा की दृष्टि से प्रत्येक जनजाति विशिष्ट और अनूठी है। हालाँकि वे अलग- अलग भाषाओं का प्रयोग करते हैं जोकि तिब्बती बर्मी परिवार के अंतर्गत आती है। राज्य में समृद्ध भाषिक परम्परा है और जितने जनजातीय समूह हैं उतनी ही उनकी अपनी- अपनी भाषाएँ हैं। राज्य में ऐसी बहुत सारी उपभाषाएँ है जो अबोधगम्य हैं। इससे समूहों के अंदर संवाद मुश्किल हो जाता है। ऐसी स्थिति में अग्रेंजी को राज्यभाषा के रूप में प्रयुक्त किया जाता है जबकि असमी की एक खिचड़ी बोली नागामी अब एक आम भाषा बन गई है। नागा का इतिहास बहुत विस्तृत है यहाँ के लोगों ने ब्रिटिश इण्डिया सरकार के साथ मिलकर दोनों विश्व युद्धों में भाग लिया। प्रथम विश्व युद्ध में दो हजार नागा श्रमिक सैनिक फ्रांस भेजे गए। फ्रांस से लौटने के बाद 1918 में उन लोगों ने नागा क्लब की स्थापना की जिससे औपनिवेशिक प्रशासन की सहायता भी हुई और बाद में इसी क्लब ने नागा अस्मिता की तलाश में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जुलाई 1960ई. में तत्कालीन प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू तथा नागा पीपुल्स कन्वेंशन के नेताओं के मध्य आपसी सलाह मशवरे के बाद 16 सूत्रीय समझौते पर सहमति बनी। जिसके परिणाम स्वरूप भारत सरकार ने भारतीय संघ के अंतर्गत नागालैण्ड को एक पूर्ण राज्य के रूप में मान्यता दी। 1 दिसंबर 1963ई. को नागालैण्ड भारतीय संघ का 16वाँ राज्य बन गया। जिसके अंतर्गत 11 ज़िले हैं और कोहिमा उस राज्य की राजधानी बनी।

पूर्वोत्तर भारत में सिक्किम हिमालय का स्वर्ग कहा जाता है। बड़े- बड़े पर्वतों से घिरा यह एक छोटा-सा राज्य है। इसकी सीमा उत्तर में चीन- तिब्बत से मिलती है तथा पूर्व में भूटान, दक्षिण में पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग तथा पश्चिम में नेपाल। सिक्किम का मूल नाम स्वर्ग है। पड़ोसी देश के नेपाली लोग इसे चावलों की घाटी कहा करते थे। नेपाल और यहाँ के स्थानीय लोगों के बीच आपसी सम्बन्ध भी बने हुए हैं बल्कि लेपचा डेन्जॉग और लिम्बस जाति समूहों में शादी विवाह भी होते हैं। शादी कर के जब लड़की अपने घर आती है तो उसे सुहिम कहकर पुकारती है। सुहिम जिसे नया घर कहा गया। नया शब्द सुखिम यही बाद में सिक्किम हो गया। सिक्किम में तीन मुख्य जाति समुदायों में लेपचा, भूटिया तथा नेपाली हैं जो प्रकृति के उपासक हैं, साथ ही वह बौद्ध तथा हिन्दू धर्म के उपासक भी हैं। पर्वत की पूजा सिक्किम में एक बड़ा त्यौहार है जिसे सभी समुदाय मनाते हैं। सिक्किम में जाति, वंश, धर्म तथा जेडंर आदि का कोई भेदभाव नहीं है। राज्य सरकान ने महिलाओं के लिए पंचायतों तथा सरकारी नौकरियों में 33 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया है। यहाँ की महिलाएँ आर्थिक भूमिका निभाने और निर्णय लेने में स्वतंत्र हैं।

नागालैण्ड स्वत: बहुभाषा- भाषी राज्य है किन्तु

सामासिकता उसकी ताकत है। यही सामासिकता और लोकतंत्र भारत की ताकत है। जिस तरह दुकानों के बीच दुकानें फलती- फूलती हैं। ठीक उसी तरह भाषाएँ भी एक-दूसरे से जुड़कर समृद्ध होती हैं। हिंदी की सामासिकता नागालैण्ड की भाषा और संस्कृति को अपने में समाहित कर सकती है। जरूरत है उनके करीब जाने की है। उनकी भाषाओं के सम्मान के साथ उनकी संस्कृति का सम्मान करके हम हिंदी का विकास कर सकते हैं। वहाँ हिंदी का बेहतर विकास और विस्तार की अपूर संभावनाएँ हैं। नेपाल से सटे होने के कारण नेपाली ही वहाँ की संपर्क भाषा है फिर भी अधिकतर हिस्सों में अग्रेजी और हिंदी बोली और समझी जाती है। मुख्य जातियों और उपजतियों की अपनी-अपनी भाषाएँ भी व्यवहार में हैं।

सन् 1947ई. में स्वाधीनता के उपरांत सिक्किम को विशेष राज्य का दर्जा दिया गया जिसके अंतर्गत रक्षा, विदेशी सम्बन्ध, संचार आदि का नियंत्रण भारत सरकार के पास था जबकि सिक्किम में राजशाही को जारी रख दिया गया। बाद में राजशाही के विरूद्ध लोगों का आक्रोश बढने लगा। लोकतंत्र स्थापित करने के लिए सिक्किम 16 मई, 1975ई. को भारतीय संघ का पूर्ण राज्य बन गया। अपनी प्राकृतिक खूबसूरती तथा स्थायित्व के कारण सिक्किम पर्यटकों का प्रिय पर्यटन स्थल है। यहाँ देश विदेश से अनेक पर्यटक आते हैं। नाथुला, चीन और भारत का सिक्किम स्थित मुख्य सीमा स्थल है जो गंगटोक से 50 किलोमीटर दूर है। सिक्किम भाषा, साहित्य, संस्कृति, पर्व, त्यौहार रीति- रिवाज धर्म आदि की मान्यताओं के आधार पर बहुत ही स्थिर प्रदेश है। यहाँ किसी तरह का विवाद प्राय: नहीं मिलता। लोकतंत्र के विकास की दृष्टि से यह राज्य बहुत महत्त्वपूर्ण है।

पर्यटन यहाँ का मुख्य व्यवसाय है। पर्यटन ही एक ऐसा क्षेत्र है जो अलग-अलग भाषा और संस्कृतियों को स्थान उपलब्ध कराता है। यहाँ हिंदी को अन्य भाषाओं के साथ मिलजुल कर विकास करने का अच्छा अवसर हो सकता है। किंतु बिजनेस-व्यापार तथा लोगों के आवागमन को सुनिश्चित करने के लिए सांस्कृतिक स्तर पर काम करने की जरूरत है। ऐसा नहीं है कि सिक्किम में हिंदी जानने वालों का अभाव है या हिंदी के लोग वहाँ नहीं पहुँचे हैं। बाज़ार और मीडिया की उपलब्धता से भाषाओं के बीच आपसी सम्बन्धों को धार देने के लिए अनके अंतर्भाषायी कार्यशालाएँ की जा सकती हैं। पर्व त्यौहारों में वहाँ के लोगों की संस्कृति के साथ हिंदी संस्कृति का मिलाजुला कार्यक्रम किया जा सकता है। शैक्षिक संस्थानों की उपलब्धता तथा हिंदी के प्रति उनकी रुचि को आकर्षित करने के लिए सिक्किम की भाषाओं का हिंदी भाषा और संस्कृति में स्थान देना होगा। उनकी अस्मिता और पहचान को हिंदी भाषा साहित्य में स्थान और महत्त्व देना होगा। फिर हम सभी तरह की दूरियाँ मिटा सकते हैं और उन्हें अपनी भाषा और संस्कृति में शरीक कर सकते हैं। भारतीय भाषाओं के बीच अंत:क्रिया से भारतीय भाषाओं के साथ हिंदी भी मज़बूत होगी। हिंदी तभी अंग्रेजी की जगह लेगी।

पूर्वोत्तर भारत में त्रिपुरा अपनी भौगोलिक और पारिस्थिति की विविधता के लिए जाना जाता है या यह कह सकते हैं कि वह विविधताओं का प्रदेश है। इस विविधता में ही उसकी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत भी जुड़ी हुई है। त्रिपुरा में अलग-अलग जातीय समूहों, धर्मो के लोग रहते हैं जो अपने संगीत, नृत्य, ललित कलाओं, लोक साहित्य, वास्तुशिल्प तथा हस्त- शिल्प के माध्यम से जीवन का उत्सव मनाते हैं। त्रिपुरा की सीमा उत्तर- पूर्व में असम तथा मिजोरम के साथ उत्तर पश्चिम और दक्षिण में बांग्लादेश के साथ लगती है। त्रिपुरा में 19 जनजाति समूह हैं। जिनकी कुल जनसंख्या 31. 05 जबकि 70% गैर जनजातीय समूह हैं जनजातीय लोगों में त्रिपुरी अथवा देवबर्मन समुदाय बहुसंख्यक है जबकि गैर जनजाति समुदाय अधिकतर बंगाली तथा मणिपुरी लोग हैं। अन्य जनजाति समूहों में भील मुण्डा, संथाल, लेप्चा, मैतेई तथा खासिय अप्रवासी हैं जो मध्यप्रदेश, बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, भूटान, मेघालय, सिक्किम आदि प्रदेशों से यहाँ आकर बस गए हैं। चक्मा और मोघ अराकान जातियाँ हैं जो पहाड़ी रास्तों से यहाँ प्रवेश कर गई। माना यह जाता है कि माणिक्य शासकों ने बंगालियों को त्रिपुरा में बसने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने धीरे-धीरे बांग्ला भाषा और साहित्य को अपनी संस्कृति में शामिल कर लिया। प्रशिक्षित लोगों की कमी के कारण माणिक्य शासकों को बंगाल से अध्यापक, डॉक्टरों, वकीलों को यहाँ आने के लिए निमंत्रित किया गया। धान की खेती को प्रोत्साहित करने के लिए भूमिहीन खेतिहरों को यहाँ बुलाने की आवश्यकता पड़ी। बंगाली लोगों के साम्प्रदायिक दंगों के भय से भागकर बंगाल के कुछ लोग भी त्रिपुरा में आ बसे। वीर विक्रम माणिक्य ने उन्हें स्थापित करने में सहायता की। देश विभाजन के उपरांत पूर्वी पाकिस्तान से बड़ी संख्या में बंगाली यहाँ आए।

1971ई. के विभाजन तथा पूर्वी पाकिस्तान की मुक्ति और बांग्लादेश निर्माण के साथ बड़ी संख्या में शरणार्थी यहाँ आकर बस गए। लगभग 60% जनसंख्या इन्हीं बंगालियों की है। रबड़ की खेती, मत्स्य पालन, धान, मछली का उत्पादन

हाथों से बुने कपड़े, लकड़ी की नक्कासी, बाँस की वस्तुओं आदि के लिए भी त्रिपुरा जाना जाता है। बाँस की 250 प्रजातियाँ यहाँ पाई जाती है। त्रिपुरा में बोली जाने वाली मुख्य भाषाओं में बांग्ला भाषा और साहित्य, को कॉकबरॉक तथा इसकी उपबोलियाँ और मणिपुरी शामिल हैं। कॉकबरॉक भाषा का प्रादुर्भाव तिब्बती बर्मी परिवार की भाषा से हुआ जिसकी लिपि बांग्ला है। बांग्ला भाषा और साहित्य को माणिक्य शासकों का संरक्षण प्राप्त रहा है रवीन्द्रनाथ टैगोर का भी त्रिपुरा में आना-जाना लगा रहा है जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने बड़ी उत्कृष्ट रचनाएँ त्रिपुरा प्रवास के दौरान लिखी। विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान के अस्तित्व में आ जाने से त्रिपुरा के उत्तरी, दक्षिणी तथा पूर्वी सीमा शेष भारत से अलग हो गई। इसके अलावा पहाड़ियों और छोटी- छोटी टेकरियों के कारण असम का सड़क मार्ग भी बाधित हो गया। भारत के साथ अपने सम्बन्धों को कायम रखने के लिए उसके पास भारतीय गणराज्य में विलय ही एकमात्र विकल्प था। क्योंकि त्रिपुरा में शाही शासन समाप्त हो गया था। अंतिम शासक राजा वीर विक्रम किशोर माणिक्य के देहांत के साथ ही त्रिपुरा 1949ई. में रानी कंचन प्रवा देवी द्वारा हस्ताक्षरित एक विलय समझाने के तहत भारतीय गणराज्य में मिल गया। वीरविक्रम किशोर माणिक्य कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा उनकी रचनाओं के अनन्य भक्त थे। उन्हीं के कहने पर रवीन्द्रनाथ टैगोर के निधन पर एक दिन का राजकीय शोक घोषित किया गया। टैगोर ने कुछ अपनी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ त्रिपुरा प्रवास के दौरान लिखी थी। वीर चन्द्र से लेकर वीर विक्रम किशोर माणिक्य तक सभी माणिक्य शासकों ने रवीन्द्रनाथ टैगोर की महत्त्वाकांक्षी परियोजना पश्चिम बंगाल के बोलपुर में 'विश्व भारती' की स्थापना के लिए खुलकर आर्थिक मदद की। टैगोर ने ही त्रिपुरा के कुछ सुप्रसिद्ध कलाकारों को विश्व भारती में जाने का निर्देश दिया और यह त्रिपुरा का ही योगदान है कि विश्व भारती की पाठ्यचर्या में मणिपुरी नृत्य शैली को भी सम्मिलित किया गया।

त्रिपुरा क्षेत्रफल की दृष्टि से बहुत छोटा राज्य है किन्तु पड़ोसी राज्य बंगाल के साथ मिलती- जुलती संस्कृति तथा बांग्लादेश की सीमा के आर-पार व्यापारिक मार्ग तथा कृषि और औद्योगिक विकास की बड़ी सम्भावनाओं के कारण विशेष महत्त्व है। बांग्ला यहाँ की मुख्य भाषा है। जिसका गहरा सम्बन्ध हिंदी से है। नवजागरण काल से बांग्ला और हिंदी में उत्तरोत्तर विकास हुआ। चूँकि त्रिपुरा में बांग्ला भाषा का प्रयोग किया जाता है इसलिए हिंदी को फलने- फूलने का अवसर है। हिंदी और त्रिपुरा की जनता के बीच भाईचारा, भाषा साहित्य तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में आदान-प्रदान तभी संभव है जब हम हिंदी भाषा साहित्य में अनुवाद के माध्यम से उन्हें स्थान दें और हम अनूदित होकर उन तक पहुँचे। हिंदी इस क्षेत्र में सेतु का काम कर सकती है। पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्य भाषाई विविधता सांस्कृतिक विपुलता के लिए जाने जाते हैं। भाषा के स्तर पर उनकी अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ तो हैं ही, साथ ही बिजनेस- व्यापार, श्रम रोज़गार, सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी प्रयोग की जाती है। हिंदी के लिए यह क्षेत्र बहुत उर्वर है। अध्ययन- अध्यापन के रूप में हिंदी विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। जो बांग्ला जानते हैं वे हिंदी भी जानते हैं और ऐसे लोगों की जनसंख्या- 60 से 70 प्रतिशत है।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी प्रयोग के लिए गांधी जी की भूमिका को याद करना ज्यादा प्रासंगिक लगता है। पूरे भारत में हिंदी के विस्तार और प्रयोग की चिंता गांधी को क्यों हुई? - गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका से लौटने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि हिंदी के विरोध में अंग्रेजी सरकार, कांग्रेस के अधिकांश नेता तथा अंग्रेजी राज चलाने वाली नौकरशाही पड़ी थी। वह किसी भी तरह से हिंदी का विस्तार, विकास और उसके राष्ट्रभाषा या संपर्क भाषा तथा राजभाषा के रूप में स्वीकृति नहीं चाह रही थी। गांधी जी को लगा कि यह तो एक खास तरह की साजिश है। दक्षिण अफ्रीका से लौटने के उपरांत उन्होंने सारे विरोधियों के खिलाफ मोर्चा खोल दिया। हिंदी के समर्थन में गांधी जी ने जोरदार समर्थन जुटाना शुरू किया, हिंदी की बहुत सी पत्र- पत्रिकाएँ निकालनी शुरू कर दीं, स्वयं उसमें लिखने लगे और देश की जनता से हिंदी के प्रति समर्थन जुटाने में लग गए। देश की जनता से हिंदी में पत्राचार प्रारंभ किया।

गांधी ने दक्षिण के चार प्रांतों आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक से हिंदी के प्रति समर्थन जुटाया तथा हिंदी के प्रति अनुकूल माहौल बनाया। उन्होंने अनेक प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के पक्ष में किया जो आसान काम नहीं था। गांधी की दृढ़ इच्छा शक्ति थी कि संपूर्ण देश में हिंदी संपर्क की भाषा के रूप में फले- फूले, क्योंकि हिंदी ही वह भाषा है जो पूरे देश को एक सूत्र में बाँधे रह सकती है, इसी में वह समाहार शक्ति है जो सभी को समाहित कर सकती है।

सन् 1924ई. में बेलगाँव में हुए कांग्रेस अधिवेशन में अध्यक्षीय वक्तव्य में उन्होंने कहा कि "निश्चित अवधि के अंतर्गत प्रांतीय कार्यालयों, विधान मंडलों एवं अदालतों की भाषा उस प्रांत की भाषा होनी चाहिए, किंतु हिंदी सारे

हिंदुस्तानियों के अंतर्प्रांतीय व्यवहार के लिए सबसे अच्छी भाषा होगी।" (संपूर्ण गांधी वाङ्मय खंड 17, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद, 1960 ई., पृ. 1009)

उन्होंने जोर देकर कहा कि "यह बात सभी को स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि हिंदी को प्रादेशिक भाषाओं का स्थान कतई नहीं लेना है। उसे अंतर्प्रांतीय विचार का माध्यम बनना है और सभी अखिल भारतीय संगठनों की अधिकृत भाषा का स्थान लेना है।" (यंग इंडिया, 31 जनवरी, 1929)

गांधी की चिंता हिंदी को अंतर्प्रांतीय विचार की भाषा और अखिल भारतीय संगठनों की अधिकृत भाषा बनाने का उद्देश्य पूरे देश को एक सूत्र में जोड़ना था। क्योंकि अंग्रेजी शासन अंग्रेजी थोपकर प्रांतों को उनकी भाषा के माध्यम से लड़ाना और फूट डालना चाहता था। गांधी इस सच को जान ही नहीं समझ भी रहे थे। उनका कहना था कि "अंग्रेजों ने यदि अंग्रेजी के स्थान पर प्रांतीय भाषाओं या हिंदी को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया होता तो आज प्रांतीय भाषाएँ आश्चर्यजनक रूप से समृद्ध होती, मैं भाषा पर इतना जोर इसलिए देना चाहता हूँ कि राष्ट्रीय एकता प्राप्ति का यह सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। इसका आधार जितना दृढ़ होगा उतना ही प्रशस्त हमारी एकता होगी।" (The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi, Page No. 223)

गांधी जी ने कहा राष्ट्रीय एकता और अखंडता बनाए रखने के लिए हिंदी का प्रचार-प्रसार और उसका अधिकाधिक प्रयोग पूर्वोत्तर के राज्यों में किया जाना चाहिए। यह दृढ़ प्रतिज्ञा और संकल्प समस्त भारतवासी का होना चाहिए।

पूर्वोत्तर के बहुत सारे राज्यों में जो ईसाई मिशनरियाँ गई उन्होंने अंग्रेजी का ऐसा बिरवा रोपा कि वह अब वृक्ष बन रहा है। वह वृक्ष नहीं बनना चाहिए इसलिए प्रांतीय भाषाओं के साथ हिंदी का विकास जरूरी है। जरूरत है गांधी की ही तरह दृढ़ प्रतिज्ञ होकर पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रचार-प्रसार को बढ़ाने की। गांधी के विचारों को अब सौ बरस हो रहे हैं तब से हिंदी की स्थिति में उत्तरोत्तर विकास हुआ है। पूर्वोत्तर देश की मुख्य धारा से जुड़ा हुआ है। यह सही समय है जब उनकी प्रांतीय भाषाओं के साथ भारतीय भाषाओं तथा हिंदी की अंत:क्रिया की जाए। मसलन अरुणाचली (नेपाली, असमी तथा यहाँ की स्थानीय भाषाओं, मणिपुरी अथवा मेतेई, बांग्ला, खासी, गारो तथा अन्य स्थानीय भाषाओं, मिजो (लुशामई), बंगाली, मारा, नेपाली, पाओ, पाईते, नागामी, भूटिया, गुरूंग, लेपचा, लिंबु, मगार, मांझी नेवारी, राई, शेरपा, तमांग, तिब्बती, कॉकबरॉक, होजागिरी, वेरजु, लेबांग, बोआनि, झूम, संगराई- लोग हाई हाक आदि प्रमुख प्रांतीय भाषाएँ तथा पूर्वोत्तर के राज्यों की स्थानीय भाषाओं और हिंदी के साथ मिलकर ज्यादा से ज्यादा काम किया जाना चाहिए।

हिंदी का इन सभी भाषाओं के साथ अंत:क्रिया से पूर्वोत्तर की प्रांतीय भाषाओं और स्थानीय भाषाओं का विकास होगा। साथ ही हिंदी का विकास होगा और अंग्रेजी की जड़ें कमजोर होंगी। हिंदी को राजभाषा बनाने के पीछे जो चिंता थी वह यही कि प्रांतीय भाषाएँ अंत:क्रिया करें और राजभाषा, संपर्क भाषा के रूप में हिंदी अंत भाषाई का काम करें। अखिल भारतीय संगठनों की भाषा बने। यह समय बहुत उपयुक्त है। सरकारें भी हिंदी का विकास प्रांतीय भाषाओं के साथ-साथ चाहती हैं। पूर्वोत्तर का विकास हिंदी के साथ मिलकर होगा तो वे हिंदी का अभिन्न अंग बनी रहेगीं और देश की राष्ट्रीय एकता और अखंडता अक्षुण्ण रहेगी। इस दृष्टि से पूर्वोत्तर के राज्यों में उनकी भाषाओं का विकास अत्यंत आवश्यक है। जैसे- जैसे उनकी अपनी भाषाओं का विकास होगा वैसे- वैसे संपर्क भाषा हिंदी स्थान लेगी और पराधीनता की प्रतीक भाषा अंग्रेजी का स्थान घटता जाएगा।

इस सम्बन्ध में अंबेडकर भी याद आते हैं। उन्होंने प्रांतीय भाषाओं को प्राँत के गठन के साथ मान्यता दी किंतु उन प्रांतों में संपर्क भाषा तथा राजभाषा के रूप में हिंदी को अपनाने के लिए कहा था और भारतीय संविधान में प्रावधान किया था। उन्हें मालूम था कि प्रांतीय भाषाएँ अगर राज्यों में राजभाषा का स्थान लेगीं तो वहीं उनकी पहचान शीघ्र ही राष्ट्रीयता में बदल जाएगी जो राष्ट्रीय एकता और अखंडता के लिए खतरा बनेगी। इसलिए राजभाषा हिंदी की दृष्टि से पूरे भारत को 'क' 'ब' 'ग' गीतों में विभाजित किया था। पूर्वोत्तर भारत में राजभाषा के साथ हिंदी संपर्क भाषा के रूप में स्थापित है। अगर इनकी जड़े कमजोर हुईं तो राष्ट्रीयता के खतरे पैदा होंगे। इसलिए भारत सरकार स्पेशल पैकेज देकर पूर्वोत्तर के राज्यों को 'राष्ट्र' की मुख्यधारा में लाना चाहती है और अब पूर्वोत्तर भारत अपनी भाषा और संस्कृति तथा अपनी अस्मिता के साथ न सिर्फ भारत बल्कि दुनिया के मानचित्र पर छाया हुआ है।

हाँ यह कहना असंगत न होगा कि 1947ई. के बाद ये क्षेत्र अपनी भाषा और संस्कृति के साथ कुछ अलग- अलग पड़े हुए थे। बड़ी सूझबूझ के साथ उन्हें भारतीय एकता और अखंडता में मिलाया गया था। भाषाई अस्मिता, संस्कृति ही पहचान का आधार होती है। अगर वह अलग- अलग पड़ गई तो हमारी एकता, अखंडता भी दरकेगी। यह चिंता प्रत्येक भारतवासी की होनी चाहिए। इसलिए पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा को उनकी स्थानीय भाषाओं के साथ मिलकर कार्य

करना होगा। बहुत सारी भाषाएँ और संस्कृतियाँ मिट रही हैं क्योंकि उनके बोलने- समझने वाले मिट रहे हैं। भारत की चिंता उनको बचाने और संरक्षित करने को ही भाषा के स्तर पर जो शासन-सत्ता वह शोषण न करे इसलिए उनकी भाषाई संस्कृति को राष्ट्रीय मानचित्र पर लाना होगा उसमें हिंदी की प्रमुख भूमिका होगी।

कहना गलत नहीं होगा कि पूर्वोत्तर के राज्य भारतीय भाषा और संस्कृति का वह खजाना है जो उसे पाएगा वह बौरा जाएगा। जरूरत है उस अपार भाषा और संस्कृति की हिंदी भाषा और संस्कृति के साथ मणिकांचन मिलन। यह मिलन जितना भावपूर्ण होगा, एक- दूसरे का प्रतिपूरक होगा उतना ही भारत राष्ट्र अपनी भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता के क्षेत्र में ताकतवर होगा। विश्वगुरू बनना है तो किसी को न छोड़ते हुए सबको अपनाना होगा। हम यह दावे के साथ कह सकते हैं कि पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

मिजोरम में हिंदी के बढ़ते चरण

-प्रो. संजय कुमार

"हमें तो अपनों ने लूटा है, गैरों में कहाँ दम था।
मेरी कश्ती वहाँ डूबी, जहाँ पानी कम था।।"

आज़ादी के बाद भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी के विकास की कहानी कुछ ऐसी ही रही है। मिजोरम जैसे पूर्वोत्तर भारत के कुछ राज्यों एवं दक्षिण भारत के कुछ राज्यों में हिंदी की दुर्गति कुछ ऐसी ही हुई। 1857ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की असफलता के बाद संपूर्ण राष्ट्र में हिंदी को भरपूर प्यार मिला। वह संपूर्ण राष्ट्र को एकता एवं अखंडता के एक सूत्र में पिरोने वाली भाषा के रूप में उभरी, जिसमें गुलाम भारत अपने सुख- दुख, हास्य- रुदन, हार- जीत, स्वप्न और यथार्थ, गौरव और स्वाभिमान की सफल अभिव्यक्ति कर रहा था। इसलिए आधुनिक हिंदी साहित्य के प्रणेता बाबू भारतेंदु हरिश्चंद्र ने लिखा-

"निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय के शूल।"[1]

1947ई. तक लगातार चलने वाले राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी ने जनजागृति फैलाने में अपनी महती भूमिका अदा की, जिसके कारण उस दौर के सभी महत्त्वपूर्ण भारतीय राजनेताओं ने एक स्वर में हिंदी के महत्त्व को स्वीकार किया। इसलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा- "हिंदी के बिना राष्ट्र गूंगा है।" आज़ादी के पूर्व राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान हिंदी ने अपने इस राष्ट्रीय दायित्व का निर्वहन सफलतापूर्वक किया और भारतीय जनता ने भी भरपूर प्यार, स्नेह, श्रद्धा, विश्वास और मान- सम्मान देते हुए उसे अपने हृदय के सर्वोच्च आसन पर राष्ट्रभाषा के रूप में विराजमान किया।

परंतु आज़ादी मिलते ही स्थितियाँ बदलने लगीं और राष्ट्रभाषा हिंदी क्षुद्र क्षेत्रीय राजनीति की शिकार हो गई। जब भारत का संविधान बना तो 14 सितंबर, 1949ई. को अनुच्छेद 343 के तहत हिंदी को राजभाषा का गौरव मुश्किल से मिल पाया और उसके पैरों में अंग्रेजी की बेड़ियाँ हमेशा के लिए डाल दी गई, जिस स्थान की वह एकछत्र अधिकारिणी थी। मिजोरम में हिंदी के विकास की कहानी कुछ इससे भिन्न नहीं है। मिजोरम में हिंदी को कई प्रकार की स्थानीय परिस्थितियों और चुनौतियों से दो चार होते रहना पड़ा है।

मिजोरम पूर्वोत्तर भारत के 8 राज्यों (7 बहनों और एक भाई) में से एक है। पूर्वोत्तर भारत के सबसे दक्षिण में अवस्थित यह भारत का अंतिम राज्य है। भौगोलिक दृष्टि से मिजोरम दो दिशाओं से दो भिन्न देशों- पूर्व एवं दक्षिण में वर्मा (म्यांमार) एवं पश्चिम में बांग्लादेश की अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं से घिरा हुआ है। तीन अन्य भारतीय राज्य- मणिपुर, असम और त्रिपुरा इसके उत्तर और पश्चिमोत्तर में अवस्थित हैं। मिजोरम की भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और भाषाई विशिष्टता वहाँ हिंदी के प्रचार-प्रसार और विकास को प्रभावित करती रही है। मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं ऐतिहासिक विकास को पाँच चरणों में बाँट कर देखा और समझा जा सकता है।

1. अपरिचय का दौर (1890ई. तक)
2. प्रारंभिक परिचय का दौर (1890 से 1947ई. तक)
3. परिचय की प्रगाढ़ता का दौर (1947 से 1959ई. तक)
4. अविश्वास एवं दुराव का दौर (1959 से 1987ई. तक)
5. सहज विकास का दौर(1987ई. से अब तक)

अपरिचय का दौर (1890ई. तक):

भारत में एक कहावत अति प्रचलित है कि 'तीन कोस (लगभग 9 किलोमीटर) पर पानी बदले और नौ कोस (लगभग 27 किलोमीटर) पर वाणी (भाषा)'। यह कहावत केवल भारत पर ही नहीं बल्कि विश्व के अन्य भागों पर भी लागू होती है। विश्व में लगभग 195 देश हैं, जिनमें आज लगभग 6, 909 भाषाएँ बोली जाती हैं। विश्व भर में बोली जाने वाली कुल भाषाओं की लगभग एक चौथाई भाषाएँ

भारत में बोली जाती हैं। इसलिए उपर्युक्त कहावत भारत पर ज्यादा सटीक साबित होती है। इस अर्थ में भारत बहु भाषी संस्कृतियों वाला देश है। मिजोरम की मिजो जनजातियाँ मिजो भाषा का प्रयोग करती हैं।

1750ई. के पूर्व मिजो जनजातियों के पूर्वज म्यांमार की लेनट्लाङ नदी और भारत म्यांमार की सीमा पर बहने वाली टियाउ नदी के बीच वाले चिन हिल्स वाले क्षेत्र में रहते थे। भयंकर आकाल और अन्य स्थानीय परिस्थितियों के दुष्परिणामों से बचने के लिए 1750ई. से लेकर 1850ई. के बीच विभिन्न मिजो जनजातियों द्वारा भारत और म्यांमार की सीमा पर बहने वाली टियाउ नदी को पार कर मिजोरम (भारत) के वर्तमान क्षेत्र में प्रवेश किया गया। इनके आगमन के पूर्व भी कुछ दूसरी जनजातियाँ यहाँ निवास करती थी, जिनके साथ इनका संघर्ष हुआ। मिजो जनजातियों के पूर्वजों ने उन्हें पराजित कर यहाँ से भागने पर मज़बूर किया। तब ये जनजातियाँ मिजोरम छोड़कर उत्तर एवं पश्चिम की ओर बढ़ गई और तब से मिजो जनजातियाँ स्थाई रूप से यहीं बस गई। हिंदी भाषा की मिजो विदुषी डॉ. सी.इ. जीनी अपनी पुस्तक 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य' में लिखती हैं कि "वहाँ से 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भयंकर अकाल के कारण अपने मूल स्थान से चल पड़े और तत्कालीन श्रङखुल, बियते और थदो नाम की कमजोर जातियों को खदेड़ कर आज के मिजो क्षेत्र में स्थापित हो गए।"[1]

विद्वानों की राय है कि 10 वीं से 13 वीं शताब्दी के बीच बर्मा में इरावती नदी की घाटी के छिन्लुङ (आदि नाम आऊपाताऊङ- Upataung) के प्रवास काल में ही वर्तमान मिजो भाषा का जन्म हुआ, जिसे पहले लुशेई बोली कहा जाता था। वर्तमान में यह मिजो भाषा के नाम से जानी जाती है। 18 वीं शताब्दी और 19वीं शताब्दी में जब चिन हिल्स के छिन्लुङ नामक स्थान को छोड़ कर मिजो जनजातियों के पूर्वज वर्तमान मिजोरम में आए तो स्थानीय भाषा में इस अभियान को 'थ्लङ त्लाक' (Thlang Tlak) कहा गया। उस समय जातिगत आधार पर ये पाँच मुख्य दलों में बँटकर मिजोरम में आए थे। इन पाँच अलग-अलग जातियों के आधार पर ही मिजोरम की पाँच उपबोलियों का जन्म और विकास हुआ।[2] ये जातियाँ और बोलियाँ निम्नलिखित हैं-

जाति बोली / भाषा (टोङ)

1. लुशेई / दुहलियान भाषा(स्नेमप / स्नौंप)- लुशेई टोङ
2. राल्ते(त्संजम)- राल्ते टोङ
3. म्हार(भ्उंत)- म्हार टोङ
4. पइह्ते(च्पंीजम)- पइह्ते टोङ
5. पोइ(च्ूंप)- पोइ टोङ

मिजोरम में रहने वाली मिजो जनजातियाँ आज मिजो भाषा का इस्तेमाल करती हैं। विद्वानों ने मिजो भाषा को तिब्बती- बर्मन भाषा परिवार से सम्बन्ध माना है। परंतु इसकी भाषाई प्रकृति का गहन अध्ययन करने से इसकी उत्पत्ति की पृष्ठभूमि में उपर्युक्त पाँच स्थानीय बोलियों का महत्त्वपूर्ण योगदान परिलक्षित होता है- दक्षिणी मिजोरम में रहने वाली लाइ जाति की भाषा 'लाइ टोङ', म्हार जाति द्वारा बोली जाने वाली 'म्हार टोङ', उत्तर पूर्वी मिजोरम के पाइह्ते जातियों द्वारा बोली जाने वाली 'पाइह्ते टोङ', राल्ते उपजतियों की भाषा 'राल्ते टोङ' और 'लुशेई टोङ' या 'दुहलियान टोङ', जो मिजोरम की सर्वप्रमुख संपर्क भाषा तथा राजभाषा 'मिजो टोङ' का प्रमुख आधार मानी जाती है। जहाँ उपयुक्त प्रथम चार बोलियों का पहले से अपना अलग-अलग प्रसार क्षेत्र था, वहीं 'दुहलियान टोङ', जिसे लुशेई भाषा भी कहा जाता है, का अपना कोई विशेष प्रसार क्षेत्र नहीं था। कमोबेश यह संपूर्ण मिजोरम में थोड़ी बहुत बोली और समझी जाती थी। आरंभ में लुशेई भाषा केवल मौखिक रूप अर्थात् बोली तक ही सीमित थी। परंतु नित्य बढ़ते अपने शब्द भंडार और प्रयोगकर्ताओं की बढ़ती जनसंख्या के अनुपात में ही लुशेई बोली परिपक्व होती गई। अत: अपने प्रारंभिक काल से ही यह बोली अन्य जातियों और उपजातियों के मध्य संपर्क भाषा बन गई। परंतु लिपि के अभाव के कारण मिजो जातियों और उपजातियों के मध्य प्रचलित संपर्क भाषा होते हुए भी यह तीव्र गति से उन्नति नहीं कर पाई।

कालांतर में बदलती हुई राजनीतिक- सामाजिक परिस्थितियों में सभी मिजो जनजातियों ने एक सामान्य संपर्क भाषा की आवश्यकता महसूस की। इसलिए उन्होंने अपनी- अपनी भाषाओं की विशेषताओं एवं शब्दावलियों को मिलाकर एक नई संपर्क भाषा की आधारशिला रखी, जिसे मिजो भाषा कहा गया। वर्तमान में प्रयुक्त मिजो भाषा में उपर्युक्त सभी 5 भाषाओं के शब्द पाए जाते हैं। मिजो भाषा की एक विशेषता यह भी है कि एक ही शब्द उच्चारण की भिन्नता, गेयता और बलाघात के आधार पर अलग- अलग अर्थ प्रदान करते हैं। मिजो भाषा प्रारंभ से ही मौखिक रही है क्योंकि इसकी कोई अपनी लिपि नहीं थी। इसलिए इसमें 19वीं शताब्दी तक लिखित साहित्य का एकदम से अभाव रहा है। यद्यपि मिजो भाषा में लोक साहित्य (लोककथाओं एवं लोकगीतों आदि) रचना की पुरानी परंपरा रही है, जिसे अब विद्वान संगृहीत एवं संपादित कर प्रकाशित करा रहे हैं। इनका अब कुछ अनुवाद भी अंग्रेजी एवं हिंदी में प्रकाशित हुआ है।

परंतु उस दौर में मिजोरम में रहने वाली मिजो जनजातियों का कोई विशेष संपर्क विश्व या भारत के शेष हिस्सों से नहीं था। आवागमन के साधनों के अभाव, सड़कों एवं मार्गों की अनुपस्थिति, सदाबहार वर्षा वनों की सघनता, वनों में हिंसक जीवों की उपस्थिति, मिजो जनजातियों का सभ्यता के विकास के प्रारंभिक अवस्था में होना, शेष विश्व से संपर्क की उनकी अनिच्छा और उनका हिंसक व्यवहार और 'हेड हंटर' (सिर काटने वाली) जनजाति का होना, प्रकृति पर उनकी अत्यधिक निर्भरता, अपने प्राकृतिक आवास में संतुष्ट होना आदि प्राकृतिक, भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक कारणों से मिजोरम संपूर्ण भारत के लिए एक दुरूह स्थान था, जिसके दरवाज़े सभी के लिए बंद थे। ऐसे में मिजोरम के दरवाज़े किसी भी हिंदी भाषा भाषी के लिए भी बंद थे और मिजो जनजाति किसी दूसरे से मिलने को इच्छुक ही नहीं थी। इन परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम था अपरिचय और दूरी। इन परिस्थितियों में मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार का तो सवाल ही नहीं उठता है क्योंकि बिना संपर्क के संपर्क भाषा या माध्यम भाषा की आवश्यकता ही नहीं होती है और मिजो जनजातियाँ आपसी संपर्क में मिजो भाषा का प्रयोग करती हुई शेष विश्व से कटकर मिजोरम में एकांतवास कर रही थी। संपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य इसी बात की ओर इशारा करते हैं।

प्रारंभिक परिचय का दौर (1890 से 1947ई. तक):

1890ई. के बाद मिजो जनजातियों की हिंसक गतिविधियों एवं बदलती हुई राजनीतिक परिस्थितियों में जब अंग्रेजों ने मिजोरम में प्रवेश किया और यहाँ के सभी ग्राम प्रमुखों या मुखियाओं (लल) को पराजित कर संपूर्ण मिजोरम को ब्रिटिश साम्राज्य का हिस्सा बना लिया। डॉ. सी.इ. जीनी अपनी पुस्तक 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य' में लिखती हैं कि "मिजो लोगों ने अपनी सामरिक गतिविधियों को समीप के सिलल्त, कछार और चटगाँव के पहाड़ी क्षेत्रों तक विस्तार प्रदान किया। सन् 1871-72ई. में मिजो जाति ने कछार के चाय बागानों तक अपना धावा बोला, जिसमें उन्होंने अनेक लोगों को मारने के साथ-साथ एक अंग्रेज कन्या का अपहरण भी कर लिया। परिणामस्वरूप अंग्रेजी सेना ने आपराधिक गतिविधियों को दबाने के लिए मिजो पहाड़ियों में प्रवेश किया, जिसके कारण कुछ समय के लिए मिजो जनों ने अपनी गतिविधियों को रोक दिया। 1890ई. में मिजो जनों ने अंग्रेजों की किलाबंदी आइजेल (आइजोल) और चाङसिल पर धावा बोल दिया। प्रत्युत्तर में अंग्रेजों ने करारा जवाब दिया और 1891ई. में मिजो क्षेत्र को दो ज़िलों में विभाजित कर उत्तरी लुशाइ हिल्स को असम और दक्षिणी लुशाइ हिल्स को बंगाल में मिला दिया। 1892 में पुनः मिजो विद्रोह उभरा, जिसे अंग्रेजों ने बुरी तरह कुचल दिया। यह ब्रिटिश शासन काल का अंतिम मिजो विद्रोह था।"[3]

बाद में साम्राज्यवाद की छतरी तले ईसाई मिशनरियों का आगमन मिजोरम में हुआ। 1894ई. में ईसाई धर्म प्रचार के लिए दो अंग्रेज ईसाई मिशनरी रेवरेंड जे.एच. लॉरैन और रेवरेंड एफ. डब्ल्यू. सेविज मिजोरम आए। उन्होंने मिजोरम के मिजो जनजातियों में ईसाई धर्म का प्रचार प्रारंभ किया। इस प्रकार साम्राज्यवादी शक्ति अंग्रेजों के मिजोरम में प्रवेश से मिजोरम का द्वार शेष विश्व के लिए खुला और मिजो जनजातियाँ विश्व की दूसरी जातियों के संपर्क में आयीं और तब उनमें बदलाव का एक नवीन दौर प्रारंभ हुआ।

आगे चलकर अन्य अंग्रेज ईसाई मिशनरी भी मिजोरम (भारत) आए और उन सब लोगों ने मिलकर ईसाई धर्म प्रचार में अपना- अपना योगदान दिया। डॉ. सी.इ. जीनी लिखती हैं कि "बाद में वहाँ ईसाई धर्म प्रचार के वास्ते दो मिशन स्थापित हुए- बैपटिस्ट मिशन (11.01.1894) और वेल्श प्रेसबेटेरियन मिशन (31.08.1897)।"[4] इन ईसाई मिशनरियों के सहयोग और ब्रिटिश साम्राज्यवादी छल- कल- बल के जोर से बड़े पैमाने पर मिजोरम के मिजो जनजातियों का ईसाई धर्म में धर्मांतरण कराया गया। परिणाम यह हुआ कि 1890ई. तक संपूर्ण विश्व से कट कर मिजोरम के जंगलों में एकाकी जीवनयापन करने वाली अधिकांश मिजो जनजातियों का 1947ई. तक आज़ादी के आते- आते ईसाई धर्म में धर्मांतरण हो चुका था। केवल ब्रू एवं चकमा जैसी कुछ जनजातियाँ ही इससे आंशिक रूप से अछूती बचीं। ईसाई धर्म में धर्मांतरण के बाद मिजो जनजातियों ने अपनी परंपरागत संस्कृति, धार्मिक विश्वासों एवं रीति रिवाजों को जाने या अनजाने में त्यागना प्रारंभ कर दिया, जिसमें कहीं- न- कहीं उनके नए धर्म और उनके संगठनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, जिसे आज कोई स्वीकार नहीं करना चाहता है।

प्रारंभिक दौर में धर्म प्रचार के दौरान ईसाई मिशनरियों को भाषाई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। धर्म प्रचार हेतु ईसाई धर्म के एकमात्र पवित्र ग्रंथ 'बाइबिल' का मिजो भाषा में अनुवाद और उसका प्रकाशन जरूरी था। इसलिए उपर्युक्त दोनों ईसाई मिशनरियों ने 1894 से 1896ई. के बीच रोमन लिपि में आवश्यकतानुसार कुछ हेरफेर कर मिजो भाषा (लुशेई) को लिपिबद्ध किया। इन्होंने मिजो भाषा को लिखने के लिए रोमन लिपि पर आधारित एक लिपि विकसित की।

मिजो भाषा को लिखने में निम्न स्वरों और व्यंजनों का उपयोग किया जाता है:

A (अ/आ),AW(ओ), B(बी), CH(चो), D(दी), E(ए), F(एफ), G(जी/एक), NG(एङ), H(एच), I(इ/ई), J(जे), K(के), L(एल), M(एम), N(एन), O(ओउ), P(पी), R(आर),S(एस), T(ती), T(टी), U(उ/ऊ), V(वी) और Z(जे)। (कुल- 25)5

पुन: अप्रैल 1898ई. में ईसाई मिशनरियों के द्वारा मिजोरम के सबसे पहले स्कूल(मिशन) की स्थापना आईजोल में की गई और एक विषय के रूप में मिजो भाषा के अध्ययन-अध्यापन का दौर प्रारंभ हुआ। परिणाम स्वरुप सैकड़ों वर्षों तक लिपि विहीन रहने वाली मिजो भाषा का विकास कार्य तीव्र गति से होने लगा। रोमन लिपि की वर्णमाला के अनुसार ही इस भाषा की लिपि को भी निर्मित किया गया। अंग्रेजी मिशनरियों द्वारा मिजो भाषा और रोमन लिपि के माध्यम से शिक्षा और धर्म का प्रचार-प्रसार किया जाने लगा। ईसाई धर्म के प्रचार हेतु 'बाइबिल' एवं अन्य धार्मिक ग्रंथों का मिजो भाषा में सर्वप्रथम अनुवाद किया गया। डॉ. सी. इ. जीनी अपनी पुस्तक 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य' में लिखती हैं कि "स्थानीय लोगों को उनकी अपनी मातृभाषाओं में धर्मप्रचार करने अपने मूल सिद्धांत के अंतर्गत इन मिशनरियों ने तब तक लिपि रहित और मौखिक रूप में ही प्रचलित मिजो भाषा को 1894ई. में रोमन लिपि प्रदान की और बाइबिल को मिजो भाषा में अनुदित किया। मिजो भाषा में प्रस्तुत बाइबिल को मिजो भाषी पढ़ सकें तथा ईसाइयत को अपना सकें, इस उद्देश्य से मिजो लोगों को साक्षर बनाने की आवश्यकता (मिशनरियों को) महसूस हुई और तब उन्होंने मिजोरम में सन् 1903ई. में प्राइमरी स्कूल खोल दिए। तब तक निरक्षर मिजो जाति भी क्रमश: अधिक संख्या में खुलते गए। स्वाधीनता के पहले तक इन सारे स्कूलों को प्राइमरी और मिडिल परीक्षाएँ मिशन ही संचालित कर प्रमाणपत्र वितरित करता रहा। मैट्रिक की परीक्षा विश्वविद्यालय द्वारा ही ली जाती थी।"[7]

लिपिबद्ध होने के कुछ वर्षों के भीतर ही मिजो भाषा प्रारंभिक शिक्षा का माध्यम भी बन गई। उससे इस भाषा के विकास क्रम को अपेक्षाकृत तेज़ गति प्राप्त हुई। तब से ही मिजो भाषा में अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन का दौर प्रारंभ हुआ और तब से ही मिजो भाषा का लिखित साहित्य प्राप्त होता है। 22 अक्टूबर 1896ई. को मिजो भाषा में लिखित प्रथम पुस्तक 'मिजो जिर तिर बु' (Mizo Zir Tir Bu) का प्रकाशन हुआ। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मिजो भाषा के लिखित साहित्य का इतिहास कुल जमा सवा सौ सालों का है और वह भी अंग्रेजों के मिजोरम आगमन और मिजो जनजतियों के ईसाई धर्म को अपनाने के बाद का है। ईसाई धर्म, मिजो भाषा हेतु रोमन लिपि का इस्तेमाल और आधुनिक जीवन शैली एवं सभ्यता से परिचित करवाने हेतु मिजो समाज ब्रिटिश साम्राज्य एवं ईसाई मिशनरियों का आभारी है, जिसकी अभिव्यक्ति प्राय: सभी मिजो विद्वान खुलेआम करते हैं। डॉ. सी.इ. जीनी अपनी पुस्तक 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य' में लिखती हैं कि "सन् 1910ई. ई. में जाकर पृथक मिजो मैट्रिक पास कर पाया। सन् 1924ई. में पृथक मिजो बना तो 1945ई. में दूसरा मिजो पहली बार एम.ए. पास कर सका। इसे एक सुखद विस्मयकारी घटना ही मानेंगे कि जो जाति सदैव से निरक्षर रही, वह इतने अल्पकाल में अधिक साक्षर बनी तथा अपनी शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ और वैज्ञानिक बनाने में एक नया कीर्तिमान स्थापित करने में सफल हुई। इस आश्चर्यजनक सफलता का श्रेय जहाँ एक ओर मिजो जाति की लगनशीलता को मिलना चाहिए वहीं दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों के अनवरत प्रयास को भी।"[8]

1890ई. में अंग्रेजों के मिजोरम में प्रवेश के बाद यहाँ काल की गति काफी तेज़ हो गई और मिजो जनजातीय समाज तेजी से परिवर्तित होने लगा। मानव सभ्यताओं के इतिहास में जो चीजें हजारों सालों में घटित हुई, मिजोरम में वह सभी कुछ एक सौ सालों में घटित हो गया। अंग्रेजों और ईसाई मिशनरियों की प्रेरणा से मिजो जनजातियों ने पश्चिम की आधुनिक जीवन शैली को एक झटके में पूरी तरह से अपना लिया।

अंग्रेजों ने जब मिजोरम में प्रवेश किया तब वे अकेले नहीं थे। अंग्रेज अधिकारियों के साथ बड़ी संख्या में हिंदी बोलने वाले हिंदुस्तानी सैनिक और कर्मचारी भी थे। इस प्रकार मिजो जनजातियों का अंग्रेजी बोलने वाले अंग्रेजों के साथ-साथ हिंदी बोलने वाले सैनिकों और कर्मचारियों से भी संपर्क हुआ। यद्यपि अंग्रेज अधिकारी अंग्रेजी भाषा को प्रश्रय देते थे। परंतु व्यावहारिक स्तर पर हिंदी बोलने वाले सैनिकों एवं अन्य कर्मचारियों से मिजो जनजातियों का ज्यादा संपर्क हो रहा था, इस प्रकार हिंदी भाषा का प्रथम संपर्क मिजो जनजातियों से हुआ और सांस्कृतिक एवं भाषाई आदान-प्रदान की प्रक्रिया प्रारंभ हुई, जिससे मिजो जनजातियाँ हिंदी भाषा से परिचित हुई। आगे चलकर मिजो जनजातियों ने यह महसूस किया कि अंग्रेज मालिक हैं और हिंदुस्तानी सैनिक उनके नौकर या गुलाम। इस सामाजिक और राजनीतिक बोध

ने इन दोनों जातियों की भाषाओं के प्रति उनके नजरिए को बदल दिया। उनकी दृष्टि में अब अंग्रेजी मालिकों की भाषा थी तो हिंदी गुलामों और नौकरों की। इसलिए मिजो जनजातियों ने विजेताओं की भाषा अंग्रेजी को बढ़ावा देने की साम्राज्यवादी शक्ति की चाल को सहर्ष स्वीकार कर लिया और उसे अपने हृदय से लगा लिया। हिंदी अपने देश की भाषा होकर भी गुलामों की तरह परित्यक्त रही। अंग्रेजों की इस चाल को चुनौती देने वाला उस समय मिजोरम में कोई नहीं था। क्योंकि मिजोरम उस समय तक राजनीतिक, सामाजिक या सांस्कृतिक किसी भी रूप में भारत से अपने को जुड़ा हुआ महसूस नहीं करता था। हिंदी भाषा के मिजो विद्वान श्री सी. कामलोवा अपने आलेख 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता' में इस मानसिकता को उजागर करते हुए लिखते हैं- "1880-90ई. के दशक में अंग्रेज इस प्रदेश में आए। इससे पहले किसी बाहरी व्यक्तियों से मिजो जनजातियों का व्यापक सम्बन्ध नहीं के बराबर था। अंग्रेजों के साथ कुछ भारतीय मूल के लोग भी थे, परंतु उनमें अंतर था। अंग्रेज आका थे, अन्य उनके गुलाम। मिजो जनजातियों में दो बातें घर कर गई: (क) गोरे आका हैं, मालिक हैं। सम्मानित जीवन जीते हैं। (ख) उनके साथ आए अन्य लोग उनके मातहत काम करने वाले नौकर चाकर। आगे चलकर उन्हें इस सच्चाई का भी पता चला कि हिंदुस्तानी अंग्रेजों के नौकर ही नहीं, गुलाम भी हैं। परिणाम में दो नए शब्द स्थानीय लोगों की भाषा में स्वत: जुड़ गए- 'साप' और 'वाई'। 'साप' (साहब का नेपाली उच्चारण) अर्थात् 'साहब' 'मालिक', 'वाई' अर्थात् 'हिंदुस्तानी' जो साहब लोगों के अधीन हैं। दोनों कौमों की भाषा के प्रति मान-सम्मान की सीमा- रेखा का निर्धारण भी इसी के अनुपात में किया गया। आगे चलकर ईसाई मिशनरियों के कार्य ने इस सीमा रेखा को और भी पुष्ट किया।"

"जातीय बँधन से मुक्त मिजो जनजातियों में किसी दो कौमों को लेकर इस प्रकार की सोच की असमानता पहले कभी नहीं उपजी थी। अत: अपनी रीतियों के साथ स्वच्छंद जीवन बिताने वाले जनजातियों में अंग्रेजी भाषा के प्रति रुझान और हिंदी भाषा के प्रति उदासीनता का बीजारोपण भी इन्हीं परिस्थितियों के कारण हुआ।"[7] स्पष्ट है कि इस मानसिकता ने उस दौर में और उसके बाद भी मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को संकुचित किया। फिर भी इन ऐतिहासिक परिस्थितियों ने हिंदी की पहुँच मिजो जनजातियों तक बनाई और हिंदी के कुछ शब्दों का प्रयोग मिजो जनजातियों के लोगों द्वारा आपसी दैनिक व्यवहार में किया जाने लगा।

परिचय की प्रगाढ़ता का दौर (1947 से 1959ई. तक):

1947 में भारत को आज़ादी मिलने के बाद अंग्रेजों के समय से चली आ रही राजनीतिक व्यवस्था की तरह ही मिजोरम को असम राज्य के अंतर्गत एक ज़िला के रूप में रखा गया और तब उसका नाम 'लुशाई हिल्स डिस्ट्रिक' था। तब मिजोरम में हिंदी का प्रचार-प्रसार परिचय की प्रारंभिक अवस्था से आगे बढ़ा। असम राज्य की राजधानी गौहाटी थी। सभी अधिकारियों एवं कर्मचारियों की नियुक्ति वहीं से होती थी। नियुक्तियों में ज्यादातर असम, बंगाल, पूर्वी भारत और नेपाल के लोगों की नियुक्तियाँ होती थीं। ये सभी अधिकारी और कर्मचारी हिंदी जानते और बोलते थे। प्रतिदिन के प्रशासनिक कार्यों में मिजोरम की जनता का सामना इन अधिकारियों और कर्मचारियों से होता था, जिससे उनका परिचय हिंदी से भी होता था। बदली हुई राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों में मिजोरम की जनता को अब बाहर खासकर सिलचर और गौहाटी भी जाना पड़ता था, ऐसे में संप्रेषण हेतु उन्हें हिंदी की आवश्यकता महसूस होती थी क्योंकि मिजोरम से बाहर उनकी मातृभाषा- लुशाई / मिजो कोई नहीं जानता था। मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में इन सरकारी कर्मचारियों के अलावा भारतीय सैनिकों, व्यापारियों एवं मजदूरों की भी महती भूमिका रही है। भारतीय सेना के ज्यादातर सैनिक हिंदी भाषा भाषी थी। इसलिए जहाँ- जहाँ उनके मुख्यालय और कैंप थे, वहाँ- वहाँ उनका संपर्क आसपास के स्थानीय मिजो लोगों से होता था। इस प्रकार आपसी बातचीत से धीरे-धीरे मिजो लोग हिंदी जानने और समझने लगे।

मिजोरम में पहले कोई उद्योग- धंधा नहीं था। मिजो समाज अपनी जरूरतों के लिए प्रकृति पर निर्भर था। परंतु मिजोरम में अंग्रेजों के प्रवेश से सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगी। अंग्रेजों के जाने और आज़ादी के बाद इन परिस्थितियों में और भी तेजी से बदलाव आया। भारत के चतुर और साहसिक व्यापारी मिजोरम के दुर्गम स्थानों पर भी व्यापार के लिए पहुँचने लगे। व्यापारियों की मदद के लिए मजदूर और कुली भी यहाँ पहुँचे। यह प्रक्रिया आज़ादी के पूर्व से ही प्रारंभ हो गई थी। आज़ादी के बाद इस प्रक्रिया में और ज्यादा गति आई। हिंदी भाषा- भाषी इन व्यापारियों, मजदूरों और कुलियों ने भी मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनके संपर्क में आकर मिजोरम के सुदूर क्षेत्रों के मिजो लोग भी हिंदी भाषा से थोड़ा बहुत परिचित होने लगे।

दिन- प्रतिदिन के मेलजोल के लिए दोनों तरफ के लोगों के लिए एक- दूसरे की भाषा को जानने और सीखने की मज़बूरी थी। बाहरी लोग धीरे-धीरे स्थानीय भाषा- मिजो सीखने लगे और मिजो लोग हिंदी सीखने लगे। इस अंत:निर्भरता ने मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की। उस समय तक मिजो जनजातीय समाज के साथ-साथ मिजो भाषा बहुत विकसित नहीं थी। मिजो भाषा में बहुत कम शब्द थे। जिससे अभी तक उनका काम चल जा रहा था। पर बदलती हुई परिस्थितियों में मिजो समाज में बहुत तेजी से परिवर्तन हो रहा था। इसलिए जिन वस्तुओं और भावों के लिए मिजो भाषा में शब्द नहीं थे, उसे मिजो समाज ने अंग्रेजी या हिंदी से सीधे- सीधे अपना लिया। इस प्रकार सैकड़ों हिंदी शब्दों का मिजो भाषा में प्रवेश हुआ। उदाहरणार्थ निम्न शब्दों को देखा जा सकता है:

हिंदी मिजो डप्रव

चौका / रसोईघर चौका Choka
बादाम / मूँगफली बादाम Badam
मटर / चना चाना Chana
आलू / आलू A lu
दाल / दाल Dal
चीनी / चीनी Chini
मिच / मरचा Hmarcha
मूली / मूला Mula
पाव/ पावापावा Pava
सरकार / सोरकार Sawrkar
बड़ा साहब / बोड़ साप Bawrh Sap
किताब / कॉपी लेखा cq Lehkhabu
रंग / रौंग Rawng
बोरा / बोरा Buara

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि आज़ादी के पहले अंग्रेजों के साथ और आज़ादी के बाद स्वतंत्र रूप से असम, बंगाल और नेपाल के गोर्खाली लोग ही अधिकतर मिजोरम आए थे। इसलिए मिजो जनजातियों का हिंदी से पहला परिचय इन्हीं लोगों के माध्यम से हुआ। असम, बंगाल और नेपाल के गोर्खाली लोग जिस प्रकार हिंदी का उच्चारण करते थे मिजो जनजाति के लोगों ने उसी प्रकार मिजो भाषा में उसे अपना लिया और उसका उच्चारण भी कमोबेश उसी प्रकार करने लगे। तो कुछ शब्दों में परिवर्तन भी देखने को मिलता है।

आज़ादी के बाद 14 सितंबर, 1949ई. में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिया गया। 26 जनवरी, 1950ई. को भारतीय संविधान लागू हुआ, जिसमें हिंदीतर प्रांतों में राजभाषा हिंदी के प्रचार-प्रसार का भी संकल्प लिया गया था। अपने संवैधानिक प्रावधानों के तहत केंद्र और राज्य सरकारों ने भी मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए कार्य किए। आज़ादी के बाद मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान करने के लिए 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', गौहाटी, असम, 'राष्ट्र भाषा हिंदी समिति', वर्धा, महाराष्ट्र और केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा सक्रिय थीं। 'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', गौहाटी के अंतर्गत 17 नवंबर, 1954ई. को 'जौरम हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना कोलासिब शहर में की गई। आज़ादी के बाद प्रारंभिक दौर में 'लुशाई हिल्स डिस्ट्रिक' में हिंदी के प्रचार-प्रसार का गुरुतर दायित्व ये ही संस्थाएँ उठा रही थीं। 'लुशाई हिल्स डिस्ट्रिक' में 1952ई. में स्कूली पाठ्यक्रम के अंतर्गत एक विषय के रूप में हिंदी को स्थान दिया गया। मिजोरम में हिंदी के प्रारंभिक प्रचारकर्ताओं में श्री सेलेतथङा और श्री देङछुङा का नाम अमर है। मिजोरम में हिंदी के प्रचार में इनके ऐतिहासिक योगदान का उद्घाटन करती हुई डॉ. सी. इ. जीनी लिखती हैं- "हिंदी प्रचार के अग्रदूत माने जाने वाले सर्वश्री सेलेतथङा और देङछुङा उस समय असम सरकार द्वारा तीताबारी में संचालित एकवर्षीय हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में दीक्षित होकर मिजोरम लौट आए और तदुपरांत स्कूलों में पढ़ने वाले मिजो लड़के- लड़कियों को हिंदी सिखाने का कार्य करने लगे।"

"इन दोनों अग्रणी हिंदी शिक्षक प्रचारकों के निरंतर प्रयास स्वरूप उस समय के स्कूली छात्र-छात्राओं के अतिरिक्त वयस्क लोग भी हिंदी पढ़ने लगे। उन वयस्कों में से कुछ असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहटी द्वारा संकलित (संचालित) हिंदी की प्रारंभिक परीक्षाओं में बैठते और उनमें उत्तीर्ण होते रहे। उन्हीं दिनों उनमें से कुछ अधिक उत्साही मिजो युवा असम सरकार द्वारा संचालित मिसामारी केंद्र में हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पास करने में सफल रहे। इस तरह सीमित (संख्या में) और केंद्र की परीक्षाओं में सफल व्यक्ति असम सरकार द्वारा मिजो ज़िले के स्कूलों में हिंदी अध्यापक नियुक्त होते रहे और अपने-अपने विद्यालयों में असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति द्वारा प्रकाशित पाठ्य पुस्तकों की सहायता से हिंदी पढ़ाते रहे।" [10] हिंदी के प्रारंभिक प्रचारकर्ताओं में एक अन्य महत्त्वपूर्ण नाम श्री वी. एल. ङाहका का भी है। 1954ई. से आप हिंदी प्रचारक का कार्य कर रहे थे। 1956-1957ई. में आप बेसिक टीचर ट्रेनिंग संस्थान में हिंदी शिक्षक नियुक्त हुए[11]

और मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य को आगे बढ़ाया।

यहाँ यह भी ध्यान देने वाली बात है कि मिजोरम में हिंदी के ज्यादातर प्रचारक और शिक्षक स्थानीय मिजो भाषा भाषी थे। मिजोरम में हिंदी के प्रचार में स्थानीय मिजो भाषा भाषी लोगों के ऐतिहासिक योगदान को रेखांकित करती हुई डॉ. सी.इ. जीनी उल्लास से लिखती हैं- "यह जानकर भी आनंद की अनुभूति होती है कि एकाध अपवाद को छोड़कर सभी विषयों के शिक्षक मूलत: मिजो वासी हैं।"[12] इसी बात को श्री सी. कामलोवा बहुत जोर देकर दावे के साथ कहते हैं कि- "मिजो जनजातियों में कई लोग ऐसे थे जो टूटी-फूटी ही सही, हिंदी बोलते- समझते थे और इसे व्यवहार में लाते थे। इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय कोई हिंदी प्रेमी इस प्रदेश में आया होगा, नहीं। मिजोरम ही क्यों, समूचे राष्ट्र के पास ऐसा कोई सबूत नहीं है जिसके सहारे यह कहा जा सके कि अतीत में किसी हिंदी प्रेमी के पाँव इसके प्रचार-प्रसार के लिए इस प्रदेश पर पड़े थे।"

"समूचे राष्ट्र की आत्मवाहिनी हिंदी बेचारी तो अपनों की अवहेलना के दर्द की मारी यों ही रोती भटकती इस प्रदेश के चौखट पर आ पहुँची थी जिसे कुछ पुराने सैनिकों और पढ़े लिखे लोगों ने पनाह दी थी।"[13]

सच चाहे जो भी हो पर ये वे परिस्थितियाँ थीं जिन्होंने आज़ादी के बाद मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को गति प्रदान की और मिजो समाज का हिंदी से परिचय को प्रगाढ़ बनाया।

अविश्वास एवं दुराव का दौर (1959ई. से 1987ई. तक):

पूर्ण राज्य बनाने के पूर्व मिजोरम आज़ादी के बाद से ही असम राज्य का एक ज़िला मात्र था। मिजो विद्वानों का आरोप है कि उस समय असम के सरकारी तंत्र के द्वारा सभी मामलों में मिजोरम की जनता की आशाओं एवं आकांक्षाओं की उपेक्षा की जाती थी। इन्हीं परिस्थितियों में 1959- 60ई. में मिजोरम में भयानक अकाल पड़ा। सामान्यत: मिजोरम में प्रति 50 वर्षों के बाद बाँस फूलते हैं और उसमें फल लगते हैं। बाँसों के बीजों को खाकर चूहों की प्रजनन क्षमता बहुत बढ़ जाती है, जिससे उनकी आबादी में तेजी से वृद्धि होती है। बढ़ी हुई संख्या के साथ चूहों की फौज अपनी भूख मिटाने के लिए गाँवों एवं घरों में रखे हुए अनाजों के भंडारों पर धावा बोलती है और उन्हें चट कर जाती है। अनाजों की कमी के कारण भुखमरी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है और अकाल पड़ता है। 1959- 60ई. में मिजोरम में पड़े भयानक अकाल में हुए अपार जान- माल की क्षति एवं असम सरकार की संवेदनहीनता और मिजोरम के लोगों की उपेक्षा ने मिजोरम के लोगों के मन में आक्रोश एवं विद्रोह का भाव भर दिया। परिणामस्वरूप 'मिजोरम नेशनल फेमाइन फ्रंट' (1959ई.) नामक मोर्चा बनाकर मिजोरम की जनता ने सरकारी नीतियों की कटु आलोचना प्रारंभ की। आगे चलकर यह आक्रोश विरोध एवं विद्रोह में बदल गया।

उन्हीं दिनों असम राज्य की नई भाषा नीति सामने आई। असमिया भाषा को असम राज्य की राजभाषा घोषित किया गया, जिसका असम राज्य के गैर असमिया भाषी सीमांत क्षेत्रों ने विरोध किया। डॉ. सी.इ. जीनी अपनी पुस्तक में इस घटना और उसके प्रभाव का उल्लेख करती हुई स्पष्ट लिखती हैं कि "सन 1960ई. में असम सरकार असमिया भाषा को राज्य की सरकारी भाषा बनाने के लिए विधान सभा में विधयेक ले आई। यद्यपि इस विधयेक का मंतव्य राज्य में बसे बंगालियों को असमिया की अस्मिता स्वीकार कराना था, परंतु पर्वतीय जातियों ने आशा के विपरीत यह अनुभव किया कि असमिया को उन पर लादने का यह एक षड्यन्त्र है। गारो नेता श्री विलियमसन संगमा ने असम मंत्रिमंडल की सदस्यता से अपना त्यागपत्र दे दिया। पर्वतीय नेताओं की शिलॉन्ग में एक बैठक आयोजित की गई, जिसमें सभी राजनीतिक दलों के नेता सम्मिलित हो गए। परिणामस्वरूप सर्वदलीय पर्वतीय सम्मेलन (आल पार्टी हिल्स लीडर्स) का शुभारंभ हुआ, जिसने आगे आने वाले समय में पृथक पर्वतीय राज्य आंदोलन को अपना नेतृत्व दिया।"[14] स्पष्ट है कि असमिया भाषा को असम राज्य की राजभाषा बनाने की राज्य सरकार की कोशिश ने गैर असमिया भाषा भाषी को आंदोलित किया और उनमें राजनीतिक चेतना का संचार किया। परिणामस्वरूप उन्होंने भाषाई और सांस्कृतिक आधार पर अपने को संगठित किया और इस बिल का विरोध किया। आगे चलकर यह आंदोलन भाषाई और सांस्कृतिक समरूपता के आधार पर असम से पृथक स्वतंत्र राज्य निर्माण की माँग के आंदोलन में बदल गया। यहाँ यह ध्यान रखने की जरूरत है कि डॉ. सी.इ. जीनी इस घटना का उल्लेख मेघालय के संदर्भ में करती हैं। परंतु इस विधेयक का प्रभाव मेघालय के अतिरिक्त असम राज्य के अन्य गैर- असमिया भाषी सीमांत क्षेत्रों यथा- मिजोरम, नागालैण्ड और अरुणाचल प्रदेश पर भी समान रूप से पड़ रहा था। इसलिए इस घटना ने मिजोरम के लोगों को भी राजनीतिक रूप से संगठित किया और मिजो भाषाई और सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान की मांग और आंदोलन को गति मिली जिसने हिंदी

के प्रचार-प्रसार के राह को अगले तीन दशकों तक कंटकाकीर्ण किया।

बदलती हुई जटिल परिस्थितियों में अकाल की विभीषिका का सामना करने के लिए गठित 'मिजो नेशनल फेमाइन फ्रंट' (1959 ई.) 'मिजो नेशनल फ्रंट' (एम.एन.एफ.-1961 ई.) में बदल गया और पू लालडेंगा के नेतृत्व में मिजोरम की जनता ने असम और भारत से अलग होने का सशस्त्र स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ किया। डॉ. सी.इ. जीनी लिखती हैं कि "मिजो जनों के लिए सन् 1959ई. का 'माउताम' (माउताम = दुर्भिक्ष) राजनीतिक चेतना का कारण सिद्ध हुआ, साथ ही वे आगे नागा जाति के बलिदानों और तदजनित वरदानों (उपलब्धियों) से भी अवगत थे ही। नागा विद्रोहियों की भी इन उपलब्धियों ने मिजो युवा वर्ग को आकर्षित किया। फलतः वे अपने भू- भाइयों के भाग्योद्धार के लिए कुछ कर मर- मिटने के लिए तैयार हो गए। ... फलतः 'मिजो दुर्भिक्ष सहायता फ्रंट' को 'मिजो नेशनल फ्रंट' में सन् 1961ई. में परिवर्तित कर दिया गया। उस फ्रंट का उद्देश्य मिजो हिल्स के लिए स्वतंत्रता और प्रभुसंपन्नता प्राप्त करना था।"[15] दिग्भ्रमित मिजो युवकों का मूल उद्देश्य स्वतंत्र राष्ट्र की स्थापना करना था, जिसमें चीन मूल के मिजो निवासियों के रहने वाले मिजोरम, मणिपुर, वर्मा और पूर्वी पाकिस्तान के ज़िलों को शामिल करने की मंशा थी और इस सबके पीछे 'मिजो नेशनल फ्रंट' के नेता पू लालडेंगा का दिमाग कार्य कर रहा था। 28 फरवरी, 1966 को 'मिजो नेशनल फ्रंट' के सशस्त्र लड़ाकों ने पूरे मिजोरम के सरकारी संस्थानों पर आक्रमण कर उन्हें अपने कब्जे में ले लिया। इस आंदोलन को तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) और चीन की सरकार तथा वर्मा की मिजो जनजातियों का अघोषित समर्थन प्राप्त था। आपात स्थिति को देखते हुए भारत की तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी को कठोर निर्णय लेना पड़ा और भारतीय सेना को स्थिति को संभालने के लिए तुरंत भेजा गया। डॉ. सी.इ. जीनी लिखती हैं "वस्तुतः इन समस्त विद्रोही मिजो गतिविधियों के पीछे 'मिजो नेशनल फ्रंट' के अध्यक्ष लालडेंगा की सूझबूझ ही कार्यरत थी। 1966ई. की फरवरी के अंतिम दिन 'मिजो नेशनल फ्रंट' ने सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और आइजोल तथा लुङलेई के सरकारी कोषागार तथा अन्य कार्यालयों के साथ-साथ क्षेत्र के भीतरी भागों में भी आक्रमण किया। इन विद्रोही गतिविधियों से निबटने के लिए सरकार ने सुरक्षा दलों को भेजा जो छह मार्च को आइजोल और तेरह मार्च को लुङलेई पहुँचे। निस्संदेह विद्रोहियों को सुरक्षा सेना ने दबा दिया था, फिर भी नेशनल फ्रंट के कुछ स्वयंसेवियों ने सरकारी आदेशों का उल्लंघन और विद्रोही गतिविधियों को जारी रखा। इस प्रकार की विद्रोही गतिविधियाँ पाक और बर्मी मिजो के सहयोग से 1968ई. तक जारी रही। फलतः पूरे क्षेत्र को अशांत घोषित कर दिया गया और सुरक्षा सेनाओं को प्रशासनिक अधिकारियों की सहायता करने और शांति स्थापित करने के आदेश दे दिए गए थे। इन्हीं परिस्थितियों में मिजो क्षेत्र को असम राज्य से पृथक कर राज्य का दर्जा प्रदान कर दिया गया।"[16]

एक दशक से ज्यादा लंबे चले इस सशस्त्र आंदोलन और संघर्ष के उपरांत 21 जनवरी, 1972ई. को मिजोरम को केंद्र शासित प्रदेश का दर्जा प्राप्त हुआ। इसी दिन मिजो जनजातियों के निवास स्थान होने के कारण भारत सरकार के द्वारा इस प्रदेश का आधिकारिक नामकरण मिजोरम किया गया। डॉ. सी.इ. जीनी लिखती हैं कि "सन् 1953ई. में कजल अली की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय राज्य पुनर्गठन आयोग नियुक्त हुआ जिसके अन्य दो सदस्य सर्वश्री हृदयनाथ कुंजरू और के.एम. पनिकर थे। अक्तूबर 1955ई. में राज्य पुनर्गठन सम्बन्धी अपनी आख्या प्रस्तुत की। ... उक्त संस्तुतियों से प्रेरित होकर मिजो विद्रोहियों की बढ़ती माँग के परिप्रेक्ष्य में सन 1972ई. में भारत सरकार ने मिजोरम राज्य की स्थापना को स्वीकार कर उसके पृथक अस्तित्व की घोषणा कर दी।"[17] और उसके डेढ़ दशक के बाद 1986ई. में भारत सरकार एवं 'मिजो नेशनल फ्रंट' के बीच हुए शांति समझौते के उपरांत 1987ई. में मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया। इस प्रकार आज़ादी के लगभग चार दशकों के उपरांत मिजोरम पूर्ण राज्य बन पाया और यहाँ के लोग असम एवं केंद्र की असंवेदनशील व दमनकारी नीतियों से मुक्त होकर स्वराज की राह पर अग्रसर हो पाए, ऐसा मिजो विद्वानों की आम धारणा है। परंतु चार दशकों तक मिले उपेक्षा, अमानवीयता, असंवेदनशीलता, हिंसा, भ्रष्टाचार, लूट और कठोर दमन के दंश ने मिजो लोगों के दिलो दिमाग में असम एवं भारत के लोगों (वाई =विदेशी) के प्रति अविश्वास, नफरत एवं आक्रोश भरने का काम किया। श्री सी. कामलोवा बहुत सावधानी से लिखते हैं कि "यह वह समय था जब मिजो जनजातियों को राजनीतिक अवहेलना का शिकार होना पड़ा। राजनीति के अखाड़े में सौतेलेपन के दर्द को झेलना पड़ा। अंग्रेजों की दासता से निकल कर अपने ही बल बूते पर देश की मुख्य धारा से जुड़ने की इच्छा, देश के लिए कुछ कर गुजरने की लालसा, तेल- विहीन बाती की तरह धीरे-धीरे बुझने लगी, मुरझाने लगी। अंत में जाकर देश की मुख्य धारा

से न जुड़ पाने के कारण इनका अंतस्तल आहत हुआ, इनके मर्म पर चोट लगी।"[18] जिसकी परिणति असम एवं केंद्र की सरकार और वहाँ के लोगों के प्रति हिंसक प्रतिरोध में हुआ, जिसका एक रूप हिंदी का भी विरोध था। हिंदी भाषा की मिजो विदुषी और मिजो लोकसाहित्य की मर्मज्ञ सुश्री आर. ललथ्लामुआनी अपने आलेख 'राष्ट्रीय एकता का माध्यम- हिंदी' में अपने व्यक्तिगत जीवनानुभव को साझा करती हुई लिखती हैं कि "मेरा जन्म मिजोउ परिवार में हुआ है। ऐसे परिवार और समाज में हिंदी- वातावरण बिलकुल ही नहीं था।"[19] हिंदी भाषा की मिजो विदुषी और मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय, आईजोल की पूर्व प्राचार्या डॉ. एच. देङकिमी का पूरा बचपन भी इन्हीं परिस्थितियों में बीता था। इसलिए हिंदी भाषा में लिखित अपनी पुस्तक 'हिंदी और मिजोउ भाषा की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन' के प्राक्कथन की शुरुआत वे बचपन की उन्हीं कटु भावनाओं और परिस्थितियों की अभिव्यक्ति से करती हैं। वे भी स्पष्ट रूप से स्वीकार करती हैं कि "राजनीतिक उथल-पुथल के प्रभाव से बचपन में मैं हिंदी से बहुत घृणा करती थी। क्योंकि मिजोउरम अपनी स्वतंत्रता के लिए भारत सरकार के खिलाफ संघर्ष कर रहा था। जिसके कारण नफरत भाव भी मन में उत्पन्न होने लगा था।"[20]

मिजोरम में हिंदी भाषा के प्रति लोगों के इस नजरिए ने इसके प्रचार-प्रसार एवं विकास को बहुत प्रभावित किया। हिंदी को केंद्र की भाषा माना गया और हिंदी के विरोध को केंद्र का विरोध समझा गया। हिंदी का विरोध एक भाषा के रूप में कम और केंद्र के प्रतीक के रूप में ज्यादा किया गया, जैसा कि पूर्वोत्तर एवं दक्षिण भारत के कुछ अन्य राज्यों में भी देखने को मिलता है। कोई भी भाषा संप्रेषण का माध्यम होती है। भारत की लगभग 80 प्रतिशत जनता हिंदी बोलती, समझती, पढ़ती और लिखती है। इसलिए भारत की मुख्य भूमि के लोगों से संवाद के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य है। परंतु हिंदी को केंद्र (की भाषा) का प्रतीक मान लिया गया और केंद्र के प्रतीक हिंदी का विरोध केंद्र का विरोध समझा गया, जिसकी वजह से मिजोरम में हिंदी का प्रचार-प्रसार एवं विकास बाधित हुआ। क्षेत्रीय राजनीतिक शक्तियों एवं हस्तियों ने अपनी क्षुद्र राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए हिंदी (भाषा) की बलि चढ़ा दी। परंतु आगे चलकर स्थितियाँ कुछ परिवर्तित होने लगी। मिजोरम के कुछ समझदार लोग यह समझ रहे थे कि संपूर्ण देश से जुड़ने के लिए हिंदी का ज्ञान अनिवार्य है और इसके ज्ञान से हर प्रकार का लाभ ही होगा। डॉ. एच. देङकिमी अपनी पुस्तक 'हिंदी और मिजो भाषा की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन' के प्राक्कथन में आगे लिखती हैं कि "उसी स्वतंत्रता संघर्ष के समय मिजोरम में शिक्षा- दीक्षा के क्षेत्र में भी समस्याएँ उत्पन्न होने लगी थीं। इसलिए मैं भी दूसरों के साथ शिलॉन्ग में पढ़ने गई। शिलॉन्ग में कुछ दिनों तक रहने के बाद परिस्थितियों ने मुझे हिंदी पढ़ने के लिए 'राष्ट्र भाषा हिंदी समिति', वर्धा, महाराष्ट्र में ढकेल दिया। ...वर्धा पहुँचने के बाद भी मैं हिंदी पढ़ने के लिए तैयार नहीं थी। एक महीने तक मैं हिंदी की वर्णमाला को भी याद नहीं कर पाई थी। मैं अचानक जाग गई, यह समझकर कि हिंदी हमारी राष्ट्र भाषा है, इसको जानकर मुझे लाभ मिलेगा। ... दो साल के बाद मैं मिजोरम लौट कर हिंदी अध्यापिका बन गई।"[21] यद्यपि हिंदी ज्ञान से डॉ. एच. देङकिमी को तत्काल लाभ हुआ। 1973ई. में मिजोरम वापिस आते ही वे हिंदी शिक्षिका नियुक्त हो गई और नौ वर्षों के अनुभव के बाद 1982ई. में उनका पदस्थापन मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय, आईजोल में कर दिया गया, जहाँ आगे चलकर उन्होंने प्राचार्या के पद को भी सुशोभित किया। इसी प्रकार से 'श्री आर. जहलेइया मिजो जनजातीय लोगों में सबसे पहले हिंदी में स्नातकोत्तर(एम.ए.) की उपाधि प्राप्त करने वाले व्यक्ति थे। जो 1978 ई में गुवाहाटी विश्वविद्यालय से एम. ए.(हिंदी) की परीक्षा उत्तीर्ण करते हैं और जो आगे चलकर 1985ई. में मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय, आईजोल के प्राध्यापक और प्राचार्य बनते हैं।'[22] फिर भी मिजोरम के बहुसंख्यक जनता का भाव अब भी हिंदी के प्रति दोस्ताना नहीं हो पाया था। श्री जेट बी. छुङा 'मेरी अविस्मरणीय यात्रा' नामक संस्मरण में अपने हिंदी शिक्षक बनने की खुशी और मिजोरम में हिंदी के प्रति लोगों की भावनाओं का संकेत करते हुए लिखते हैं कि "1997 मई का महीना था। मुझे हिंदी अध्यापक की नौकरी मिल गई थी। उस गाँव (पद स्थापना) का नाम था लॅकी। मेरे परिवार वाले सभी खुश थे। पास पड़ोस के लोग मुबारकबाद देने आए। ... दो दिन की तैयारी के पश्चात् मैं लॅकी के लिए आईजोल से रवाना हुआ। करीब 280 किलोमीटर की लंबी यात्रा में मैं अकेला पहली बार जा रहा था। ... (बस में) इतने में एक सज्जन ने मुझसे पूछा- जवान लड़के, तुम कहाँ जा रहे हो? मैंने इतना कहा कि लॅकी जा रहा हूँ। मेरा इस प्रकार उत्तर देने का तात्पर्य था कि वस्तुत: हमारे मिजोरम में हिंदी को नहीं चाहते हैं। परिणामस्वरूप बात लंबी- चौड़ी हो जाएगी। अत: मैं यह चाहता था कि ज्यादा सवाल न करें। वह चुप रह गया।"[23] उस समय हालात हिंदी के बहुत अनुकूल नहीं थे। फिर भी

वक्त एवं बदलते हालात के तकाजे ने मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को कुछ हवा दी।

'असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति', गुवाहाटी के अंतर्गत 17 नवंबर, 1954ई. को जिस 'जौरम हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना कोलासिब शहर में की गई थी। 1972ई. में असम राज्य से अलग होकर मिजोरम के केंद्र शासित प्रदेश बन जाने के बाद उसका नाम बदल कर 'मिजोरम हिंदी प्रचार सभा' कर दिया गया और इसका मुख्यालय भी आईजोल स्थानांतरित कर दिया गया। बदलती हुई परिस्थितियों में नए नाम के साथ सोसाइटी एक्ट के तहत इस संस्था का पंजीकरण कराया गया और 'श्री आर. जहलेइया को इसका प्रथम अध्यक्ष बनाया गया।'[24] उसके बाद यह संस्था आज तक इसी नाम से कार्य कर रही है। वर्तमान में श्री आर बी ललमलसोम अध्यक्ष और श्री ललरेमजुआल सचिव का पद भार संभाल रहे हैं। मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में इस संस्था की बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इस संस्था के योगदान को रेखांकित करते हुए श्री सी. कामलोवा लिखते हैं- "मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय में अध्ययनरत और मिजोरम सरकार के अधीन माध्यमिक और उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत हिंदी अध्यापकों में से 85 प्रतिशत को हिंदी सिखाने और उन्हें वर्तमान पद के लिए तैयार करने में मिजोरम हिंदी प्रचार सभा का ही हाथ है, जो वास्तव में बहुत बड़ी उपलब्धि है।"[25] आज भी यह संस्था अपने गुरुतर कर्तव्यों का निर्वहन पूरी ज़िम्मेदारी से कर रही है। आज भी यह संस्था मिजोरम के सभी ज़िलों में 'अपने 50 हिंदी प्रचार केंद्र, 8 हिंदी विद्यालयों और एक राष्ट्रभाषा महाविद्यालय के साथ मिजोरम के सुदूर गाँवों में हिंदी के प्रचार-प्रसार का सफल कार्य कर रही है।' 26 और अपने प्रबोध, पारंगत और प्रवीण पाठ्यक्रमों के माध्यम से मिजोरम में हिंदी पठन- पाठन को प्रोत्साहित कर रही है।

सहज विकास का दौर (1987ई. से अब तक):

मिजोरम में दो दशकों से ज्यादा चले हिंसक अलगाववादी आंदोलन ने मिजोरम में हिंदी के विकास को अवरुद्ध किया। लेकिन इस अलगाववादी आंदोलन के परिणाम स्वरूप जब 1972ई. में असम से अलग कर मिजोरम को केंद्र शासित प्रदेश बनाया गया और 1987ई. में मिजोरम को पूर्ण राज्य का दर्जा दिया गया, तब से यहाँ की परिस्थितियाँ तेजी से बदलने लगीं। तब से मिजोरम के प्रशासन, व्यापार और समाज में मिजो एकाधिकार की राजनीति प्रारंभ हुई। जो भावना अलगाववादी आंदोलन के दौरान उत्पन्न हुई थी उसके परिणाम स्वरूप स्वतंत्र राज्य बनते ही मिजोरम के प्रशासनिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन में मिजो एकाधिकार की प्रक्रिया अपनी पूर्णता की ओर तेजी से आगे बढ़ी और जैसे-जैसे मिजोरम में मिजो एकाधिकार की प्रक्रिया अपनी पूर्णता की तरफ आगे बढ़ती गई वैसे-वैसे मिजोरम में केंद्र के विरोध की भावना शांत होती चली गई और जैसे- जैसे मिजोरम में केंद्र के विरोध की भावना शांत होती गई, वैसे-वैसे हिंदी के विरोध का ताप भी मद्धिम पड़ने लगा। मिजोरम प्रशासनिक, आर्थिक, शैक्षणिक और चिकित्सीय आदि जरूरतों के लिए भारत पर बहुत ज्यादा निर्भर है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मिजोरम के लोगों को अपने प्रदेश से बाहर जाना पड़ता है। अपने प्रदेश से बाहर जाने पर स्वाभाविक रूप से उन का पाला हिंदी से पड़ता है। संपूर्ण देश के अलग-अलग क्षेत्रों की यात्रा करने पर वे सहज ही यह महसूस करने लगते हैं कि केवल मिजो भाषा के माध्यम से उन जगहों पर काम करना या वहाँ के लोगों से सम्बन्ध बनाना कठिन कार्य है। तब स्वाभाविक रूप से हिंदी की संपर्क भाषा के रूप में महत्ता को वे महसूस करते हैं। राज्य के भीतर की राजनीति अपनी जगह पर है परंतु यह व्यावहारिक समझ ही आज मिजोरम में हिंदी के सहज विकास में सहायक सिद्ध हो रही है। तभी मिजोरम में हिंदी के महत्त्व को स्वीकार किया जाने लगा और उसे अपनाने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। तब उसका स्वागत भी किया जाने लगा।

मिजोरम में हिंदी के विकास को यातायात के साधनों और आधुनिक संचार क्रांति ने भी गति प्रदान की। 1990ई. के आसपास से भारत में जो दूरसंचार की क्रांति हुई, उस दूरसंचार की क्रांति और रेडियो, टीवी, इंटरनेट, कंप्यूटर, मोबाइल तक भारत और मिजोरम के लोगों की सहज पहुँच ने मिजोरम को पूरे विश्व के काफी नजदीक ला दिया। ऐसी स्थिति में दूरसंचार के इन माध्यमों का प्रचार-प्रसार मिजोरम के घर- घर में भी हुआ और इन माध्यमों का इस्तेमाल करके मिजोरम के लोग भारत के अन्य हिस्से से सहजता से जुड़ने लगे। इन माध्यमों ने मिजोरम में टीवी चैनलों का प्रचार-प्रसार किया। इन टीवी चैनलों पर प्रसारित होने वाले हिंदी फिल्मों, गानों और सीरियलों की पहुँच मिजोरम के घर- घर तक हुई। छोटा भीम, कौन बनेगा करोड़पति, आपकी अदालत, कसौटी जिंदगी की, उड़ान, वीरा, सावधान इंडिया, क्राइम पेट्रोल, वंदे मातरम, नागिन आदि हिंदी सीरियल मिजो डबिंग के साथ मिजोरम के घर घर में देखे जाते हैं। दूरसंचार की इस क्रांति का लाभ लेने के लिए और हिंदी फिल्मों, गानों और सीरियलों से मनोरंजन पाने से

मिजोरम के लोगों के दिलों में हिंदी की जो बर्फ दशकों से जमी हुई थी, वह धीरे-धीरे पिघलने लगी। अब मिजोरम के टैक्सियों में आमिर खान की पहली फिल्म 'कयामत से कयामत तक' के गाने-'पापा कहते हैं बेटा नाम करेगा...', 'गजब का है दिन सुनो तो जरा...' जैसे हिंदी गाने सुनाई देने लगे। मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में दूरसंचार की क्रांति और जनसंचार के माध्यमों की भूमिका की तरफ इशारा करते हुए सुश्री आर. ललथ्लामुआनी लिखती हैं कि "स्टार प्लस के करोड़पति कार्यक्रम से भी लोग हिंदी सीखने की ओर जागृत हुए हैं। आकाशवाणी से प्रसारित 'हिंदी सबक' से भी कई लोग लाभान्वित हो रहे हैं। वे इन्हें नियमित रूप से सुनते हैं। उसे छोड़ना नहीं चाहते हैं।"[27] जब स्वाभाविक रूप से मिजोरम में हिंदी की स्वीकार्यता बढ़ी। तब पूर्व के मिजो भावना के विपरीत कुछ ऐसे भी मिजो परिवार और अभिभावक देखने को मिलने लगे जिन्होंने सचेत रूप से अपने बच्चों को भारत के दूसरे शहरों और प्रदेशों में पढ़ने के लिए भेजा। ताकि उनके बच्चे शिक्षा प्राप्ति के साथ-साथ अपने देश से परिचित हो सकें और उसकी संपर्क भाषा हिंदी को सीख सकें और उसे आत्मसात कर सकें। श्री सी. कामलोवा स्पष्ट लिखते हैं कि- "आज हालात बदले हैं। अधिक से अधिक लोग हिंदी सीखना चाहते हैं और तो और, सौम्य और शिक्षित परिवार के लोग भी अपने बच्चों को हिंदी सिखाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। हर कोई चाहता है कि थोड़ी बहुत हिंदी अवश्य सीखे।"[28] हिंदी भाषा के प्रति मिजो जनजातियों के इस दृष्टि परिवर्तन के कारणों का श्री सी. कामलोवा आदर्शवादी उत्तर देते हुए लिखते हैं कि "यदि अतीत में यहाँ के जनजाति हिंदी विरोधी थे तो आज इनकी सोच में इतना बड़ा परिवर्तन कैसे आया? उत्तर स्पष्ट है। न यहाँ के लोग कभी हिंदी विरोधी थे, न आज ही हैं। हाँ, अतीत में हिंदी के प्रति इनके मन में नकारात्मकता का मुख्य कारण हिंदी के औचित्य को सही ढंग से न समझ पाना, इनके गौरवपूर्ण इतिहास से अनभिज्ञता, इसके शब्द भंडार की विशालता के प्रति अज्ञानता आदि के साथ-साथ इसके साहित्य के मधुरतम भाव एवं गरिमा को न समझ पाना भी था।"

"परंतु आज वातावरण में परिवर्तन हुआ है। मिजो जनजाति हिंदी की वास्तविकता को समझने लगी हैं। इनके अंतस्तल में इस भाषा के प्रति प्यार एवं आस्था जो सुप्त अवस्था में थी, उपयुक्त वातावरण पाकर पल्लवित होने लगी है। जो निश्चय ही देश की एकता और अखंडता के लिए मील का पत्थर सिद्ध होगा।"[29]

इस दौर में मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार में कई संस्थाओं की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। 'मिजोरम हिंदी प्रचार सभा' तो पूर्व से ही मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य में सक्रिय थी। उसकी सक्रियता वर्तमान दौर में भी लगातार बनी रही। इसके अलावा '16 अक्तूबर 1975ई. को केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा के अधीन केंद्र के सहयोग से आईजोल में 'मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण संस्थान' की स्थापना की गई जिसे 29 अगस्त, 1986ई. में मिजोरम सरकार ने 'मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय' में परिवर्तन करने की इच्छा जताई जिसे काफी विरोध के बाद केन्द्रीय हिंदी संस्थान, आगरा ने मंजूरी दे दी।'[30] यह महाविद्यालय लगातार 'हिंदी शिक्षक डिप्लोमा', 'हिंदी शिक्षक प्रवीण सर्टिफिकेट' और 'हिंदी शिक्षक पारंगत' पाठ्यक्रम (बी.एड. कोर्स) का सफल संचालन कर रहा है। 'अपनी स्थापना से लेकर 1998ई. तक यह महाविद्यालय आईजोल शहर के इलेक्ट्रिक वेङ में किराए के भवन में चलता रहा। जिसे बाद में आईजोल शहर के ही अपर रिपब्लिक वेङ में स्थानांतरित कर दिया गया। कई वर्षों के अथक प्रयास के बाद केंद्र सरकार द्वारा संरक्षित और संचालित हिंदी भाषा योजना के अंतर्गत महाविद्यालय को भवन निर्माण हेतु 1997 ई में धन राशि की प्राप्ति हुई और मिजोरम राज्य सरकार के सहयोग से आईजोल शहर के दुरत्लाङ क्षेत्र में महाविद्यालय के अपने भवन और परिसर का सपना साकार हो पाया।'[31] 2000ई. से महाविद्यालय दुरत्लाङ के अपने इसी परिसर से हिंदी के पाठ्यक्रमों का सफल संचालन कर रहा है। आज भी मिजोरम में हिंदी के अध्ययन अध्यापन और प्रचार-प्रसार में यह महाविद्यालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। 'मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय' के पूर्व प्राचार्यो : डॉ. तेज़ नारायण लाल, डॉ. लक्ष्मी नारायण लाल, डॉ. के.टी. विश्वनाथ, डॉ. राम कृपाल कुमार, डॉ. पीताम्बर, श्री आर. जहलेइया, डॉ. सी. चोङथनमोई, डॉ. ओम प्रकाश शुक्ला, डॉ. शिव कुमार, डॉ. एच. ललदेङ किमी, डॉ. लुइस हाउह्नार (वर्तमान प्राचार्य); प्राध्यापकों : श्री सी. कामलोवा, प्रो.ई. सी. जिन्नी, श्रीमती ङूरछीङी, श्रीमती जया मुखर्जी, श्रीमती बिमला चौहान, डॉ. दिनेश कुमार द्विवेदी, डॉ. हबिल कीरो, सुश्री आर. ललथ्लामुआनी, श्री वनललफेला, डॉ. ललमुआनओमा साइलो, डॉ. अजय कुमार रणजीत, श्री ललछुआनओमा, डॉ. मरीना ललथ्लामुआनी, डॉ. जूडी ललएङवारी, श्रीमती लललोमजुआली हौह्नार, श्री ललरेमसियामा, डॉ. एलिजाबेथी, श्रीमती वनललपारी चिंजन आदि मिजोरम में हिंदी के अध्ययन, अध्यापन और प्रशिक्षण से जुड़े रहे हैं और हिंदी

के प्रचार-प्रसार में अपनी महती भूमिका का निर्वहन कर रहे हैं। मिजोरम के हिंदी के ज्यादातर स्कूल शिक्षक 'मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय' से ही प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, जो इन शिक्षकों की सक्रियता से ही संभव हो पाती है।

वर्तमान में मिजोरम में लगभग 318 उच्च विद्यालय हिंदी शिक्षक और 518 माध्यमिक विद्यालय हिंदी शिक्षक (कुल हिंदी शिक्षक-836) कार्यरत हैं। 2009 में केंद्र प्रायोजित योजना के तहत लगभग 1300 हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति की गई थी। 2017-18 में यह योजना समाप्त हो गई। प्रदेश सरकार ने इन शिक्षकों को नियमित करने की कोई इच्छा शक्ति नहीं दिखाई. परिणाम स्वरूप इन सभी शिक्षकों की नियुक्तियों को रद्द कर दिया गया। लेकिन 2021 में केंद्र प्रायोजित योजना के तहत कुल 541 नए हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति की गई है, जिसमें से 114 उच्च विद्यालय हिंदी शिक्षक हैं तो 427 माध्यमिक विद्यालय हिंदी शिक्षक हैं। एक बार फिर अक्तूबर 2021ई. में केंद्र प्रायोजित योजना के तहत लगभग 300 नए हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति के लिए आवेदन आमंत्रित किए गए हैं। उम्मीद है कि जल्द ही मिजोरम सरकार इन हिंदी शिक्षकों की नियुक्ति की प्रक्रिया भी पूर्ण कर लेगी जिससे मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार को नई गति और ऊँचाई प्राप्त होगी।

त्रिभाषा सूत्र के अंतर्गत मिजोरम के स्कूलों में अनिवार्य विषय के रूप में हिंदी की पढ़ाई कक्षा 5 से 8 तक की जाती है। परंतु अन्य विषयों से अलग इसमें अंक नहीं ग्रेड दिया जाता है और परीक्षा फल में इसके अंक शामिल नहीं किए जाते हैं। कक्षा 9 एवं 10 में आधुनिक भारतीय भाषा (MIL) के रूप में वैकल्पिक विषय के रूप में हिंदी पढ़ाई जाती है। कक्षा 11 एवं 12 में हिंदी की पढ़ाई नहीं होती है। मिजोरम के स्कूल पाठ्यक्रम में हिंदी को केवल व्यावहारिक भाषाई ज्ञान प्राप्त करने के उपयोगितावादी उद्देश्य की पूर्ति के लिए रखा गया है। डॉ. सी.इ. जीनी अपनी पुस्तक में उल्लेख करती हैं कि "शुद्ध उपयोगिता के दृष्टिकोण से ही वहाँ शिक्षा विभाग ने हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था की है न कि किसी बड़े प्रयोजन की पूर्ति के लिए- जैसा साहित्य का अध्ययन- अध्यापन या किसी अन्य भावना से प्रेरित होकर। शिक्षा विभाग यह भली भांति जानता है कि विशाल भारत के एक सुदूर कोने में अवस्थित अपने छोटे से प्रदेश की जनता का सर्वांगीण विकास तभी संभव हो सकता है, जब वह मुख्य धारा के लोगों के सतत संपर्क में बना रहे। यह सतत संपर्क तभी संभव हो सकता है जब वह अधिसंख्यक लोगों के द्वारा प्रयुक्त हिंदी भाषा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करे। इसी एक व्यावहारिक ज्ञान को प्राप्त करवाने के अपने स्पष्ट उद्देश्य को ध्यान में रखकर मिजोरम के शिक्षा विभाग ने अपने स्कूली हिंदी पाठ्यक्रम को भाषा केंद्रित बनाया है न कि अन्य अधिकांश अहिंदी भाषी राज्यों के समान साहित्य केंद्रित या बहु- उद्देश्य केंद्रित।"[32] इसलिए इस पाठ्यक्रम में एकमात्र भाषा और उसके वार्तालाप के ज्ञान पर जोर है। इसके साथ ही यह भी ध्यान देने की बात है कि 2016ई. से मिजोरम राज्य सरकार के स्कूलों में प्राथमिक स्तर से ही शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को बना दिया गया है। आशा है कि नई शिक्षा नीति- 2020 से इस में परिवर्तन आएगा। मिजोरम बॉर्ड के स्कूलों के अलावा यहाँ दो केन्द्रीय विद्यालय, एक नवोदय विद्यालय और एक सैनिक स्कूल भी है जिसमें हिंदी पढ़ाई जाती है।

2009ई. से गवर्मेंट आइजोल कॉलेज, आइजोल और कमला नगर कॉलेज, चोङते में भी स्नातक स्तर पर हिंदी की शिक्षा दीक्षा प्रारंभ हुई। डॉ. रतन कुमार, डॉ.रेबेक्का ललह्मङाइही, डॉ. ललरिनकिमी, डॉ. कैथी रोह्लुपुई, श्री हरि प्रसाद और डॉ. धीरेन्द्र कुमार श्रीवास्तव जैसे युवा प्राध्यापक मिजोरम के महाविद्यालयों में छात्रों को स्नातक स्तर पर हिंदी की शिक्षा प्रदान कर रहे हैं और मिजोरम के युवाओं में हिंदी के प्रति जागरूकता बढ़ा रहे हैं। 2010ई. में मिजोरम विश्वविद्यालय, आइजोल में हिंदी विभाग की स्थापना हुई और 2011ई. से यहाँ स्नातकोत्तर एवं पीएच.डी. पाठ्यक्रम प्रारंभ हुआ। मिजोरम विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग आज मिजोरम में हिंदी के उच्चतर अध्ययन-अध्यापन और शोध का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहाँ से कई सारे छात्र स्नातकोत्तर, एम.फिल. और पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त कर मिजोरम के विभिन्न क्षेत्रों में अध्ययन-अध्यापन का कार्य कर रहे हैं और मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार की अलख जगाए हुए हैं। मिजोरम विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के प्राध्यापक प्रो. संजय कुमार, प्रो. सुशील कुमार शर्मा, डॉ. सुषमा कुमारी, डॉ. अमिष वर्मा और डॉ. अखिलेश कुमार शर्मा मिजोरम में हिंदी के उच्चतर अध्ययन- अध्यापन और शोध को गति और दिशा प्रदान कर रहे हैं।

उपर्युक्त प्राध्यापकों और शिक्षकों के अलावा बहुत सारे अन्य सहृदय भी हिंदी की सेवा और उसके प्रचार-प्रसार के साथ-साथ हिंदी में सृजनात्मक साहित्य लेखन के क्षेत्र में सक्रिय हैं जिसमें से पद्मश्री सी. कामलोवा, डॉ. सी.इ. जीनी, डॉ. जेन्नी मलसोमडोङकिमी, डॉ. जेन्नी ललडिङलियानी, डॉ. वी.आर. रालते, श्री डेविड के. अजयु आदि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं।

मिजोरम में हिंदी के विकास और प्रचार-प्रसार की

स्थिति को समझने के लिए उपयुक्त परिस्थितियों और वस्तुस्थिति का ज्ञान अपेक्षित है। तमाम बाधाओं और चुनौतियों को पार करते हुए हिंदी धीरे-धीरे ही सही मिजोरम में अपने कदम सतत आगे बढ़ा रही है। मिजोरम में हिंदी के प्रचार-प्रसार की स्थिति बहुत उत्साह वर्धक तो नहीं है पर निराश होने की भी आवश्यकता नहीं है। पिछले तीन दशकों में स्थितियाँ काफी तेजी से बदली हैं जो हिंदी के सहज प्रचार-प्रसार में सहायक हैं। उम्मीद है कि नई शिक्षा नीति-2020 के पूर्ण रूप से लागू होने पर स्थानीय मिजो भाषा के साथ-साथ हिंदी का भी तेजी से विकास होगा। श्री सी. कामलोवा मिजोरम में हिंदी के सुगम प्रसार हेतु भविष्य की चुनौतियों की तरफ ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखते हैं कि- "अत: मिजोरम में हिंदी के प्रति राज्य एवं केंद्र दोनों ही सरकारों को सोच की दरिद्रता के चक्रव्यूह को तोड़ना होगा, भेदना होगा, उदारतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाने होगें। यदि ऐसा होता है तो आगामी दस वर्षों में मिजोरम हिंदी- ज्ञान, प्रयोग और अन्य प्रदेशों में इसके प्रचार हेतु आत्मनिर्भर हो जाएगा, जो निश्चय ही देश की एकता एवं अखंडता के लिए रामबाण सिद्ध होगी।"[33]

संदर्भ सूची :

1. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 19
2. डॉ. सी चोङ थनमोई, मिजोउ तथा हिंदी के वाक्य-विन्यास की विशेषताएँ (तुलनात्मक अध्ययन), पृष्ठ- 11
3. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 19
4. वही, पृष्ठ- 53
5. डॉ. एच. देङकिमी, हिंदी और मिजोउ भाषा की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन, पृष्ठ- 22
6. वही, पृष्ठ- 22
7. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 53- 54
8. वही, पृष्ठ- 54
9. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 16- 17
10. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 55
11. वही, पृष्ठ- 169
12. वही, पृष्ठ- 54
13. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 17
14. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 33
15. वही, पृष्ठ- 21
16. वही, पृष्ठ- 23
17. वही, पृष्ठ- 32
18. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 18
19. आर. ललथ्लामुआनी, 'राष्ट्रीय एकता का माध्यम-हिंदी', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 42
20. डॉ. एच. देङकिमी, हिंदी और मिजोउ भाषा की व्याकरणिक कोटियों का व्यतिरेकी अध्ययन, पृष्ठ- 22
21. वही, पृष्ठ- 22
22. आर. ललथ्लामुआनी, 'राष्ट्रीय एकता का माध्यम-हिंदी', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 42
23. श्री जेट बी. छुङा, 'मेरी अविस्मरणीय यात्रा', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 34
24. आर. ललथ्लामुआनी, 'राष्ट्रीय एकता का माध्यम-हिंदी', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 42
25. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 18
26. वही, पृष्ठ- 18
27. आर. ललथ्लामुआनी, 'राष्ट्रीय एकता का माध्यम-हिंदी', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 42
28. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 18
29. वही, पृष्ठ- 18
30. वही, पृष्ठ- 18
31. डॉ. सी चोङथनमोई, प्राचार्या का विवरण, संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 18
32. डॉ. सी.इ. जीनी, 'पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य', पृष्ठ- 54
33. सी. कामलोवा, 'मिजोरम में हिंदी सोच की दरिद्रता', संपा. शिव कुमार, मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण महाविद्यालय रजत जयंती स्मारिका- 2001, पृष्ठ- 19

पूर्वोत्तर भारत का भाषाई परिदृश्य और हिंदी

–प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र

पूर्वोत्तर भारत भारतवर्ष का उत्तर–पूर्वी हिस्सा है। इस भूखण्ड की अपनी अलग विशेषताएँ हैं। भौगोलिक रूप से 5,182 किलोमीटर में फैली हुई इसकी अंतरराष्ट्रीय सीमाएँ नेपाल, चीन, बांग्लादेश, भूटान और म्यांमार से आच्छादित है। इस क्षेत्र का भौगोलिक विस्तार लगभग 262,179 वर्ग किलोमीटर में विस्तारित है जो भारतवर्ष के कुल क्षेत्रफल का लगभग आठ प्रतिशत है। यहाँ की कुल जनसंख्या 45, 772,188 तथा उसका घनत्त्व 170 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है। सामान्यतः पूर्वोत्तर भारत, भारतवर्ष के आठ राज्यों का सामूहिक संबोधन है।

वस्तुतः पूर्वोत्तर भारत के इन राज्यों में असम की उपस्थिति सबसे प्राचीन है। नागालैण्ड पूर्वोत्तर भारत का दूसरा ज्येष्ठ राज्य (गठन तिथि 01 दिसम्बर, सन् 1963 ई.) है। सन् 1971ई. में पूर्वोत्तर परिषद् (North-East council, NEC) के गठन के उपरांत इस क्षेत्र के विकास के लिए 21 जनवरी, 1972ई. को अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम और त्रिपुरा नाम से पाँच और राज्यों का गठन किया गया। इन नवगठित राज्यों में अरुणाचल प्रदेश और मिजोरम को संघशासित राज्य के रूप में मान्यता मिली थी जो कालांतर में 20 फरवरी, 1987ई. को पूर्ण राज्य के रूप में मान्यता प्राप्त कर सके। इस प्रकार पूर्वोत्तर में 1972ई. तक राज्यों की संख्या सात हो गई। पूर्वोत्तर के राज्यों की इस पारिवारिक स्थिति को ही ध्यान में रखते हुए इन्हें सात बहनें (Seven Sisters) कहकर संबोधित किया गया। पूर्वोत्तर भारत के आठवें राज्य का गठन 16 मई, 1975ई. को हुआ तथा पूर्वोत्तर परिषद् में इसे 2002ई. में सम्मलित किया गया। सिक्किम के गठन के बाद पूर्वोत्तर में राज्यों की संख्या आठ हो गई जिसे सात बहनों और एक भाई के परिवार के रूप में मान्यता मिली। किंतु पूर्वोत्तर भारत के निवासियों के रहन–सहन, भाषा बोली, रीति–रिवाज आदि को ध्यान में रखकर यदि पूर्वोत्तर भारत का निर्धारण किया जाय तो इसमें उत्तर बंगाल के दार्जिलिंग, सिलीगुड़ी और कूचबिहार को सम्मिलित किया जाना श्रेयस्कर है।

सामान्यतः इन्हीं सात बहनों एवं एक भाई के रूप में जाने प्रसिद्ध कुल आठ राज्यों के समूह का सामूहिक संबोधन पूर्वोत्तर भारत है। किंतु किसी भी क्षेत्र या अंचल की सीमा केवल राजनीतिक या भौगोलिक सीमाओं मात्र में बँध कर नहीं रहती। वह निर्मित होती है उन आंतरिक तत्त्वों से जो सबमें समान रूप से पाई जाती है; वह निर्मित होती है उस क्षेत्रीयता या आंचलिकता से जो सामान्यतः एक समान रूप से उस क्षेत्र विशेष में पाई जाती है और पूर्वोत्तर भारत की तमाम क्षेत्रीय या आंचलिक विशेषताओं में से एक विशेषता इसकी भौगोलिक विशेषताओं के साथ–साथ यहाँ की सांस्कृतिक विशेषता भी है। पूर्वोत्तर भारत की समस्त प्रकार की विशेषताओं का मुख्य आधार यहाँ का वैविध्य है। सामाजिक, धार्मिक एवं भौगोलिक रूप से यह विविधता भारतवर्ष के किसी भी क्षेत्र में नहीं पाई जाती। भारत में निवास करने वाले जनजातीय समूहों में पूर्वोत्तर भारत में जनजातियों में व्यापक वैविध्य पाया जाता है और इसीलिए भाषा में भी इस वैविध्य के दर्शन होते हैं। वस्तुतः भाषा वह माध्यम है जिससे एक समाज विशेष के लोग आपस में विचार– व्यवहार करते हैं। एक समाज विशेष की इसकी सीमा ही इसके वैविध्य की जननी है। समाज एक प्रकार के जीवन व्यवहार के लोगों का समूह होता है और जब भारत में सदियों से अपने– अपने वैशिष्ट्य के साथ मानव समूहों का आगमन हुआ तो यह वैविध्य समूह के साथ–साथ भाषिक स्तर पर भी होना स्वाभविक ही है।

इस प्रकार सीमांकित पूर्वोत्तर भारत में बोली जाने वाली भाषाओं पर ध्यान दिया जाए तो यहाँ मूल रूप से मुख्यतः आग्नेय और तिब्बती– बर्मन परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। इनमें भी मेघालय की खासी मात्र पूर्वोत्तर भारत में आग्नेय परिवार की भाषा है। अरुणाचल की खाम्पती थाई भाषा परिवार से सम्बन्ध रखती है। इसके अलावा अधिकांश भाषाएँ तिब्बती– बर्मन परिवार की भाषाएँ हैं। पूर्वोत्तर भारत

के जनजातीय समूहों की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि ये भारतीयता के साथ-साथ अपनी मौलिकता के प्रति विशेष सजग दिखाई देते हैं। भारत के अन्य क्षेत्रों में निवास करने वाली जनजातियों पर भाषाई बहुलता के दबाव (सामाजिक और सांस्कृतिक) अधिक हैं, कारण यह है कि उन क्षेत्रों में जनसंख्या के आधार पर वे समूह अल्पसंख्यक हैं और रोजी-रोज़गार के कारण दूसरी भाषा का दबाव उनपर अधिक है। किंतु पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों के साथ ऐसा नहीं है यहाँ के राज्यों में निवास करने वाले इन जनजातीय समूहों की आबादी बहुसंख्यक है। इसलिए इन समूहों पर रोजी- रोज़गार सम्बन्धी वैसे दबाव नहीं हैं जैसे देश के अन्य क्षेत्रों में हैं। यहाँ बहुभाषिकता का कारण आपसी सम्पर्क और राष्ट्र के साथ सम्मानजनक सम्बन्ध स्थापन है। यहाँ भाषाई बहुभाषिकता का दबाव न होते हुए भी भारत की दूसरी भाषाओं के साथ इनके सम्पर्क आदर्श स्थिति में हैं।

विश्व में बोली जाने वाली भाषाओं के पारिवारिक विभाजन के आधार पर यह देखा जाता है भारत में विश्व की कुल पाँच प्रमुख भाषा परिवारों यथा- भारतीय आर्य, द्रविड़, आग्नेय, तिब्बती- बर्मन और अंडमानी की भाषाएँ बोली जाती हैं। इन भाषा परिवारों में भारतीय आर्यभाषा परिवार बोलने वालों की संख्या के आधार पर सबसे बड़ा भाषा परिवार है। भारत में इस परिवार की लगभग 21 प्रमुख भाषाएँ- असमी, उडिया, उर्दू, कश्मीरी, कोंकणी, खानदेशी, गुजराती, डोंगरी, नेपाली, पंजाबी, बंगाली, विष्णुपुरिया, भीली, मराठी, मैथिली, लहंदा, संस्कृत, सिंधी, शिना, हलाबी और हिंदी बोली जाती हैं, जिनके बोलने वालों की संख्या का पूरी आबादी में 76.86 प्रतिशत है। इन भाषाओं में पंद्रह भाषाएँ संविधान की आठवीं अनुसूची में भी सम्मिलित हैं। इस समूह की कुछ भाषाएँ पूर्वोत्तर भारत में भी बोली जाती हैं जिसमें असमी, बंगाली, विष्णुपुरिया, हिंदी और नेपाली उल्लेखनीय हैं।

भारत में बोले जाने वाले भाषा परिवारों में दूसरा प्रमुख भाषा परिवार द्रविड़ है। इस भाषा परिवार के बोलने वालों की संख्या भारत की आबादी में 20.82 प्रतिशत है। इस परिवार से सम्बन्धित भारत में कुल सत्रह भाषाएँ बोली जाती हैं, जिसमें कन्नड़, मलयालम, तमिल और तेलुगु संविधान की आठवीं अनुसूची में भी सम्मिलित हैं। इस समूह की कोई भी भाषा पूर्वोत्तर भारत में नहीं बोली जाती। आग्नेय परिवार भारत में बोलने वालों की संख्या के आधार पर तीसरे स्थान पर है। भारत में इसे बोलने वालों की संख्या 1.11 प्रतिशत है। इस परिवार की भाषा के मुख्यत: दो समूह भारत में प्रचलित हैं, वे ख्मेर निकोबारी और मुण्डा हैं। ख्मेर निकोबारी में मॉन- ख्मेर और निकोबारी दो समूह हैं। मॉन-ख्मेर समूह की एक मात्र भाषा- 'खासी' पूर्वोत्तर भारत के मेघालय की प्रमुख भाषा है तो निकोबारी अंडमान में प्रचलित है। मुण्डा समूह की बारह भाषाएँ भारत में प्रचलित हैं जिसमें संथाली को 2003ई. से संविधान के 92वें संशोधन के माध्यम से आठवीं अनुसूची में स्थान प्राप्त है। तिब्बती बर्मन परिवार के भाषाओं के बोलने वालों की संख्या भारत में अत्यल्प है जो कुल आबादी का लगभग एक प्रतिशत है। बोलने वालों की संख्या इस समूह की भले ही कम हो किंतु विविधता की दृष्टि से यह बहुत ही सम्पन्न समूह है। इसकी भाषाओं की संख्या 66 के आसपास है। इस समूह की तीन मुख्य शाखाएँ- तिब्बती हिमालयन, उत्तरी असम और असमी बर्मन हैं। भारत में बोली जाने वाली तिब्बती बर्मन समूह की सभी भाषाएँ पूर्वोत्तर भारत में बोली जाती हैं। इस समूह की दो भाषाएँ मणिपुरी और बोडो संविधान की आठवीं अनुसूची में भी शामिल हैं। भारत में बोले जाने वाले भाषा परिवारों में अंडमानी परिवार की भाषाएँ भी बोली जाती हैं। इस भाषा परिवार की भाषाओं के अनेक रूप अंडमान निकोबार द्वीप समूह में प्रचलित हैं। इसके अलावा भारत में थाई समूह की भी एक भाषा खाम्पती बोली जाती है जो अरुणाचल के एक विशिष्ट समूह द्वारा बोली जाती है। भारत की यह भाषाई बहुलता जनजातीय समूहों में भी पाई जाती है। इन जनजातीय समूहों में प्राय: अलग- अलग भाषाएँ बोली जाती हैं। भारत में जनजनतीय समूहों की संख्या 705 बताई जाती है। प्राय: प्रत्येक जनजाति अपने रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज की विशिष्टता के साथ-साथ भाषाई वैशिष्ट्य को लिए हुए है। बोलने वालों की संख्या के आधार पर ये चाहे छोटी या बड़ी कह दी जाय, उन्हें जनगणना में सम्मिलित न किया जाय, किंतु महत्त्व की दृष्टि से सभी समान हैं। इसे और स्पष्ट करने के लिए पूर्वोत्तर में प्रचलित भाषाओं की राज्यवार स्थिति के आँकड़ों को देखा जा सकता है।

जनसंख्या की दृष्टि से असम पूर्वोत्तर भारत का सबसे बड़ा राज्य है। जनसंख्या के आधार पर असम भारत का पंद्रहवाँ राज्य है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से स्कॉटलैण्ड के बराबर है। 2001ई. की जनगणना के अनुसार यहाँ 48.8 प्रतिशत असमिया तो 27.5 प्रतिशत बांग्ला भाषी निवास करते हैं। शेष 5.88 प्रतिशत हिंदी, 4.8 प्रतिशत बोड़ो, 2.12 प्रतिशत नेपाली के साथ 11.8 प्रतिशत अन्य भाषा भाषियों का हिस्सा इस राज्य में निवास करता है। जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर भारत में त्रिपुरा दूसरे स्थान पर है तो

भारतीय स्तर पर 22वाँ राज्य है। इस राज्य में त्रिपुरी बोलने वालों की संख्या 25.46 प्रतिशत है तो बांग्ला भाषियों का अनुपात 67.14 प्रतिशत है। यहाँ हिंदी भाषियों की संख्या 1. 68 प्रतिशत तो कूकी भाषा- भाषियों की संख्या 1.2 प्रतिशत के बराबर है। जनसंख्या के आधार पर मेघालय पूर्वोत्तर के राज्यों में तीसरे स्थान पर और भारत का 23वाँ राज्य है। इस राज्य की मुख्य भाषा खासी, गारो और जयंतिया है, जो यहाँ की पहाड़ियों और जनजातीय समूहों के भी नाम भी हैं। मेघालय में बोलने वालों की संख्या के आधार पर देखें तो खासी 33.82 प्रतिशत, गारो 31.6 प्रतिशत, पनार 10.69 प्रतिशत, बांग्ला 6.44 प्रतिशत, नेपाली 1.85 प्रतिशत, वार 1. 73 प्रतिशत, हिंदी 1.62 प्रतिशत, हाजोंग 1.4 प्रतिशत, असमी 1.34 प्रतिशत और अन्य 9.51 प्रतिशत हैं। इसी प्रकार जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का चौथा राज्य मणिपुर है जो इसी आधार पर भारत का 24वाँ राज्य है। इस राज्य में गैर जनजातीय भाषा का दबाव बहुत कम है। मैतेई यहाँ की प्रमुख भाषा है जिसके बोलने वालों की संख्या यहाँ की आबादी में 53 प्रतिशत है। इस राज्य में बांग्ला और हिंदी भाषियों का अनुपात 1.25 और 1.14 प्रतिशत है। नागालैण्ड जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का पाचवाँ और भारत का पच्चीसवाँ राज्य है। इस राज्य में भी गैर जनजातीय भाषाओं का दबाव अत्यल्प है। यहाँ कोनयाक, लोथा, अंगामी, आओ, चोकरी, चांग आदि भाषा- भाषियों का अनुपात गैर जनजातीय भाषा- भाषियों से अधिक है। बांग्ला भाषी 3.77 तो हिंदी भाषी 3.13 प्रतिशत हैं। अरुणाचल प्रदेश जनसंख्या के आधार पर पूर्वोत्तर का छठवाँ तो भारत का सत्ताइसवाँ राज्य है। क्षेत्रफल के आधार पर यह राज्य पूर्वोत्तर का पहला तो भारत का पंद्रहवाँ राज्य है। भाषाई रूप से भी यह राज्य पूर्वोत्तर का अत्यंत उर्वर राज्य है। यहाँ पचास के आसपास प्रमुख जनजातियाँ और उनकी भाषाएँ विद्यमान हैं। इस राज्य को भाषाई बहुलता में एशिया में प्रथम स्थान प्राप्त है। इस राज्य में निशी, आदी, मोनपा, वांगचू, तांगसा, मिष्मी, मिसिंग, नोक्ते के साथ-साथ असमी, बांग्ला, नेपाली और हिंदी भाषियों की भी अच्छी संख्या विद्यमान है। जनसंख्या के आधार पर भारत का अठ्ठाइसवाँ और पूर्वोत्तर का सातवाँ राज्य मिजोरम भी जनजातीय समूहों और जनजातीय भाषाओं की दृष्टि से अल्पसंख्यक नहीं है। गैर जनजातीय भाषा- भाषियों की संख्या यहाँ अत्यल्प या नहीं के बराबर है। इस राज्य में मिजो भाषी समुदाय प्रांत का सत्तर प्रतिशत से अधिक है। शेष समुदायों द्वारा प्रमुख रूप से चकमा, मारा, ताई, कूकी, त्रिपुरी, हमार, पाइते आदि जनजातीय भाषाएँ बोली जाती हैं। जनसंख्या के आधार पर सिक्किम भारत और पूर्वोत्तर का सबसे छोटा राज्य है। इस राज्य में भारतीय आर्य, आग्नेय, तिब्बती बर्मन, तीनों भाषा- परिवारों की भाषाएँ बोली जाती हैं। यहाँ नेपाली 62.6 प्रतिशत, भूटिया 7.6 प्रतिशत, हिंदी 6.6 प्रतिशत, लेपचा 6.5 प्रतिशत, लिंबू 6.3 प्रतिशत, शेरपा 2.4 प्रतिशत, तमांग 1.8 प्रतिशत तथा 6.2 प्रतिशत अन्य भाषा- भाषी रहते हैं।

पूर्वोत्तर भारत के भाषाई परिदृश्य को देखने से जो मूल बातें निकलकर सामने आती हैं वे इस प्रकार हैं-

1. भारत में भाषाई वैविध्य की दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत सर्वाधिक सम्पन्न है।
2. पूर्वोत्तर की यह भाषाई बहुलता उसे वैश्विक स्तर पर अप्रतिम बनाती है।
3. भाषाई वैविध्य के बावजूद सामाजिक, सांस्कृतिक सौहार्द में कोई समस्या नहीं है।
4. भाषाई वैविध्य के बावजूद बहुभाषिकता का दबाव मैदानी क्षेत्रों जैसा नहीं है, जहाँ छोटी भाषाएँ अपने अस्तित्व के संकट से जूझ रही हैं।

उपरोक्त तथ्यों को लेकर जब विचार करते हैं तो यह बात विचारणीय है कि राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तर पर इनके अंतर्सम्बन्ध का स्वरूप क्या है? इस ओर जब ध्यान देते हैं तो 'राष्ट्रभाषा हिंदी और जनदीय बोलियाँ' शीर्षक लेख में प्रो. नंद किशोर पाण्डेय जी का वक्तव्य महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि "वस्तुत: भाषाओं की एकता का आधार केवल व्याकरण नहीं है। ऐतिहासिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक एवं राजनीतिक कारणों से भी भाषाई एकता होती है। ये ही कारण बिखराव के लिए भी उत्तरदायी हैं।'' प्रांतो की सीमाएँ राजनीतिक होती हैं। राजनीतिक सीमाओं के आर- पार रहने वाले लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक सम्बन्धों में कोई अलगाव नहीं होता। हम सभी अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं के साथ राष्ट्रीय चरित्र सहधर्मिता और सहजीविता के कारण विविधता में एकता को स्थापित करते हैं। मूल रूप से हम चाहे जिस जातीय समूह से सम्बन्ध रखते हों किंतु भारतीय वातावरण में विकसित होने के कारण भारतीय हैं।

पूर्वोत्तर के समुदायों में रहन- सहन, रीति- रिवाज, भाषा- बोली में वैविध्य होने के बावजूद भारतीयता के सूत्र उसी प्रकार देखे जा सकते हैं। आज पूर्वोत्तर भारत के अधिकांश भाषाओं के साथ राष्ट्रीय स्तर पर सर्वाधिक बोली समझी जाने वाली सम्पर्क- भाषा हिंदी का सम्बन्ध उसी प्रकार है। अधिकांश भाषाओं में हिंदी के शब्द और हिंदी में इनके शब्दों का प्रवेश हो रहा है। एक प्रकार से कहा जाय

तो भाषा की नई शैलियों का विकास हो रहा है।

भाषा में सतत विकास की प्रक्रिया चलती रहती है। इसीलिए प्रत्येक युग में व्यवहार की भाषा मानक भाषा से थोड़ा बहुत विचलन लिए हुए होती है। पूर्वोत्तर की भाषाओं में भी सहजीविता और सहधर्मिता के कारण ही हिंदी शब्दों का प्रवेश दिखाई देता है। 2011 की जनगणना में हिंदी के अंतर्गत आने वाली भाषाओं की संख्या 49 गिनाई गई है। जिसे ध्यान में रखते हुए उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि एक दिन ऐसा आएगा जब हिंदी की 200 भाषाएँ होंगी और यह केवल भाषा ही नहीं बल्कि भारतीय संस्कृति की मूल प्रवृत्ति है। 'सब पढें- सब बढ़ें' की भावना के साथ सबका समान सम्मान और अधिकार भारतीय बहुलतावादी संस्कृति का मूल आधार है।

– प्रो. हितेंद्र कुमार मिश्र
हिंदी विभाग
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलॉन्ग

त्रिपुरा में हिंदी के प्रति बढ़ती आत्मीयता

-मुनीन्द्र मिश्र

भारत दुनिया में अपनी विविधताओं के लिए प्रसिद्ध है। जहाँ कई सभ्यताएँ समाप्त होकर नई सभ्यताओं में विलीन हो गई वहीं भारत में आज भी प्राचीन परंपरा, संस्कृति उसकी विविधताओं में सजीव है। जहाँ भारत का सांस्कृतिक वैविध्य इसे अद्‌भुत छटा प्रदान करता है, वहीं भाषाई वैविध्य भारत को दुनिया में अप्रतिम बनाता है। भारत के संविधान में 22 भाषाओं को संवैधानिक दर्जा मिला है इनके अतिरिक्त भी भारत में लगभग 758 और भाषाएँ विद्यमान हैं। बहुभाषावाद भारतीय परंपरा का अंग है। भारत के अधिकांश व्यक्ति एक से अधिक भाषा बोलते हैं। जीवन भर नई भाषाएँ सीखते रहते हैं। भारत में आधिकारिक तौर पर 122 भाषाएँ मानी गई हैं।

भारत में निरंतर बाह्य आक्रमणकारी आते रहे और अपनी संस्कृति व अपनी भाषा का प्रभाव यहाँ के समाज में निरंतर छोड़ते रहे। अरब आक्रमणकारियों ने भारत में वर्षों तक शासन किया और उन्होंने जहाँ भारतीय संस्कृति को प्रभावित किया वहीं भारतीय समाज के लिए फारसी और अरबी को आधिकारिक कामकाज की भाषा बनाया। तथापि फारसी पूर्णरूपेण भारतीय समाज द्वारा स्वीकार्य नहीं हुई और बस दरबारों तक सीमित होकर रह गई। स्थानीय भाषाओं के फारसी, अरबी मेल से बनी उर्दू या रेख़ता कुछ काल तक दरबारों में सुशोभित हुई और चूँकि इसमें स्थानीय रंग अधिक था इसलिए ये दरबार से बाहर भी निकली। उसके बाद आया यूरोपीय आक्रमणकारियों का काल उन्होंने देश को सांस्कृतिक रूप से जितना प्रभावित नहीं किया उससे अधिक भाषाई रूप से प्रभावित किया। अंग्रेजी का शिक्षा के माध्यम के रूप में अधिकृत और व्यवस्थित प्रयोग लार्ड मैकाले के उस विवरण पत्र (1835) के द्वारा भारत में आया जिसमें उसने शिक्षा के लिए निर्धारित धन उच्च और मध्य वर्ग के ऐसे भारतीयों की शिक्षा पर ही खर्च करने का मंतव्य प्रकट किया था जिससे उनके शासन के लिए 'एजेंट' का काम करने वाले तैयार हो सकें। इसी मंतव्य को पूरा करने के लिए भारत में अंग्रेजी कामकाज की भाषा बनी और सरकारी कामकाज और सभ्य समाज की भाषा के रूप में सम्मानित हुई।

इसी क्रम में बाह्य भाषाओं के साथ भारतीय भाषाएँ भी विकसित होती गई। हिंदी की यात्रा छन्दस, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी के रूप में चलती हुई खड़ी बोली हिंदी के रूप में उन्नीसवी शताब्दी के अंत में स्थापित हुई। देश के स्वतंत्र होने के बाद हिंदी 14 सितंबर, 1949ई. से भारत की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित हुई। हिंदी की राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठा के उपरान्त भी भारत के भाषाई वैविध्य और भारतीय मनस में अंग्रेजी की श्रेष्ठता की भावना और बाज़ार की अंग्रेजीप्रियता तथा रोज़गारपरकता भारतीय भाषाओं के विकास में निरंतर रोधक रहा है।

त्रिपुरा भारत के पूर्वोत्तर क्षेत्र का एक छोटा सा राज्य है। जिसका क्षेत्रफल 10,491 वर्ग किमी. है। इसके उत्तर पश्चिम और दक्षिण में बांग्लादेश है तो उत्तर में असम तथा पूर्व में मिजोरम है। इस प्रदेश की सीमा का 84 प्रतिशत भाग अंतर्राष्ट्रीय सीमा है। त्रिपुरा की जनसंख्या 36.74 लाख है। यहाँ का जनसंख्या घनत्व 350 व्यक्ति प्रतिवर्ग किमी. है। त्रिपुरा भारत में सर्वोच्च साक्षरता दर वाले प्रदेशों में एक है इसकी साक्षरता दर 2011ई. में 87.22% है। प्रदेश की साक्षरता दर पिछले सात आठ वर्षों में काफी बढ़ी है। अत्यंत दुर्गम क्षेत्रों वाला प्रदेश होते हुए भी त्रिपुरा में विद्यालय छोड़ने वालों और कभी भी विद्यालय न जाने वाले बच्चों की संख्या बहुत कम है। यह भारत में सर्वशिक्षा अभियान और राष्ट्रीय माध्यमिक शिक्षा अभियान के सर्वोत्तम क्रियान्वयन वाला प्रदेश है।

त्रिपुरा भारत के प्राचीन राजवंशों में से एक है, जो महाभारत कालीन किरात देश कहलाता था। बाद में यहाँ माणिक्य वंश का शासन रहा। राजमाला नामक ग्रंथ के अनुसार कुल 147 माणिक्य वंश के शासकों ने त्रिपुरा में शासन किया। यह राज्य अंग्रेजों के समय भी स्वतंत्र राज्य के रूप में रहा। 15 अक्टूबर, 1949ई. को त्रिपुरा का भारत में

विलय हुआ। 1 नवंबर 1956ई. को त्रिपुरा को केन्द्र शासित प्रदेश के रूप में मान्यता मिली। 21 जनवरी, 1972ई. को त्रिपुरा पूर्ण राज्य बना। 1982ई. में त्रिपुरा में संविधान के 7वीं अनुसूची के अनुसार स्वायत्त शासी ज़िला परिषद् की स्थापना हुई। यह परिषद् त्रिपुरा के कुल क्षेत्रफल के 68. 10% क्षेत्र को समाहित करती है। पहले त्रिपुरा एक ज़िला वाला राज्य था, वर्तमान में 8 ज़िले हैं।

त्रिपुरा की राजभाषा 'बांग्ला' है। इसके अतिरिक्त कॉकबरक को द्वितीय राजभाषा की मान्यता है। त्रिपुरा के राजभाषा अधिनियम 1960 के अनुसार अंग्रेजी पूर्ववत शासकीय कार्यों के लिए राजभाषा के रूप में मान्य होगी। त्रिपुरा प्रदेश में बड़ी जनसंख्या बांग्ला भाषियों की है। इनका प्रतिशत कुल भाषाभाषियों का 67% है। लगभग 26% लोग कॉकबरक भाषा का प्रयोग करते हैं। लगभग 1 प्रतिशत लोग मोग भाषा बोलते हैं जबकि 0.65% लोग मनिपुरी भाषी हैं। त्रिपुरा में मुख्य रूप से दो भाषा वर्ग के लोग हैं भारोपीय भाषा परिवार की बांग्ला, चकमा, हिंदी, नेपाली और मणिपुरी (विष्णुपुरिया) तथा चीनी- तिब्बती भाषा परिवार की कॉकबरक, दारलांग, हालाम, मैतेई, मिजो, पाइते, राल्ते, तांगखुल, वाईफेई, ताडोउ, बाउम, कोच भाषा। आग्नेय परिवार की संथाली भाषा के भी कुछ बोलने वाले त्रिपुरा में हैं जो चाय बागानों में काम करने यहाँ आए और बस गए हैं।

त्रिपुरा प्रदेश में मुख्य रूप से बांग्ला भाषी हैं। यहाँ की लिपि बांग्ला है। इसी लिपि का प्रयोग दूसरी प्रमुख जनजातीय भाषा कॉकबरक के लिए भी होता है। कॉकबरक त्रिपुरा लोगों द्वारा बोली जाती है। जो विभिन्न उपसमुदायों में विभक्त है, जिसके अंतर्गत देबबर्मा, जमातिया, रूपिणी, रियांग, नोआतिया, काइपेंग, कलाई इत्यादि शामिल हैं। संस्कृत साहित्य में इस समुदाय को किरात के रूप में दर्शाया गया है। कॉकबरक भाषा बोड़ो और दिमासा भाषा से बहुत निकट सम्बन्ध रखती है। त्रिपुरा में संथाल लोग चाय के बागानों में काम करने के लिए अंग्रेजों के जमाने में लाए गए। ये अपनी संथाली(मुंडा) भाषा का प्रयोग करते हैं जो कि आग्नेय परिवार की भाषा है। इनकी अपनी लिपि है तथापि वर्तमान में इनकी लिपि बांग्ला और देवनागरी हो गई है। त्रिपुरा के रांखल और हलाम लोगों द्वारा हलाम भाषा का उपयोग किया जाता है। यह चीनी- तिब्बती परिवार की भाषा है। त्रिपुरा में यद्यपि ज्यादातर बांग्ला और स्थानीय कॉकबरक भाषा के बोलने वाले हैं तथापि यहाँ हिंदी के प्रति वैमनस्य का भाव किंचित भी नहीं। यहाँ हिंदी को न समझ सकने वाले लोग बहुत कम हैं जो कि दूरदराज गाँवों और पहाड़ों में रहते हैं। जिनका बाहरी दुनिया से संपर्क बहुत कम होता है। अगरतला नगर में हिंदी, बांग्ला के समानान्तर संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो रही है।

भारत में हिंदी के विकास में व्यापारी वर्ग का विशेष योगदान रहा है विशेष रूप से मारवाड़ी व्यापारियों का। त्रिपुरा में भी जैसे-जैसे बाज़ार स्थापित होते गए व्यापार में मारवाड़ी व्यापारी स्थापित होते गए। जो अपने साथ हिंदी को सहेजे हुए लोगों के मध्य हिंदी की स्थापना में मुख्य भूमिका अदा करते रहे। त्रिपुरा के बहुभाषाई क्षेत्र में मारवाड़ी व्यापारियों के माध्यम से हिंदी को बढ़ावा मिलता रहा। मारवाड़ी व्यापारियों के साथ-साथ बिहार से आए कामगारों की भूमिका भी हिंदी के स्थापन में महत्त्वपूर्ण रही। बीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों में बड़ी संख्या में कामगार बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश से त्रिपुरा में आए इन्होंने स्थानीय लोगों के साथ अपनी भाषा हिंदी में संप्रेषण किया जिससे हिंदी स्वतः ही जनजन की भाषा बनती गई। हिंदी के प्रसार में जितनी भूमिका व्यापारी और कामगारों की होती है, उतनी सरकारी कर्मचारियों की। हिंदी भाषी कर्मचारियों के अतिरिक्त हिंदीतर भाषी क्षेत्रों के कर्मचारियों के लिए भी हिंदी ही संपर्क भाषा का काम करती गई। विशेष रूप से केन्द्रीय कार्यालयों के कर्मचारी जिनका स्थानांतरण पूरे देश में होता है उनके लिए हिंदी लेखन की भाषा पूर्णरूपेण न बन पाने के बावजूद भी मौखिक संपर्क की भाषा के रूप में पूर्णरूपेण स्थापित है। केन्द्रीय कार्यालय हिंदी के प्रमुख वाहक के रूप में आगे आए हैं। केन्द्र के राजभाषा विभाग की हिंदी शिक्षण योजना के अंतर्गत आयोजित हिंदी प्रबोध, हिंदी प्रवीण और हिंदी प्राज्ञ परीक्षा के द्वारा हिंदी न जानने वाले कर्मचारी भी हिंदी के ज्ञान को अर्जित करने में सक्षम हो रहे हैं। त्रिपुरा के हिंदी के स्थापन में केन्द्रीय कर्मचारियों के अतिरिक्त सेना और अर्ध सैनिक बलों का विशिष्ट योगदान है। त्रिपुरा में निरंतर बड़ी संख्या में सेना के अतिरिक्त अर्धसैनिक बल रहे हैं जिनमें सीमा सुरक्षा बल, केन्द्रीय रिजर्व पुलिस बल और असम राइफल्स के जवान मुख्य हैं। ये सैनिक चाहे जिस भाषाई क्षेत्र के हों इनके सार्वजनिक संप्रेषण की भाषा हिंदी होती है। ये जब भी बाह्य समाज के साथ संप्रेषण करते हैं पूर्णरूपेण हिंदी का प्रयोग करते हैं। त्रिपुरा में इनके संपर्क के नियमित रूप से स्थानीय समुदाय में आते रहे जो धीरे-धीरे इनकी हिंदी को अपनाते गए और हिंदी स्वतः ही बांग्ला के साथ त्रिपुरा के सामान्य जन की बोलचाल की भाषा बनती गई।

कोई भी भाषा तभी स्थापित होती है जब वह बाज़ार

द्वारा स्वीकार की जाय और रोज़गारपरक हो। बांग्ला के सिवाय त्रिपुरा की अन्य स्थानीय भाषाओं के स्थापित होने में यही मुख्य समस्या थी। हिंदी अपने विशाल समुदाय के साथ न केवल भारत में बाज़ार के लिए मुख्य आकर्षण का केन्द्र रही है बल्कि पिछले वर्षों में पूरे विश्व को हिंदी के बाज़ार शक्ति ने प्रभावित किया है, जिस कारण विश्व के कई देश हिंदी के अध्यापन को अपने देश में आरंभ करने को मज़बूर हुए हैं। दूरदर्शन और टेलीविजन एवं रेडियो के विज्ञापनों की हिंदी भाषा ने त्रिपुरा के लोगों को भी प्रभावित किया है और उन्होंने बाज़ार के साथ चलते हुए हिंदी को अपनाया है। हिंदी को अपनाने के बाद त्रिपुरा के लोगों ने पूर्वोत्तर के अन्य प्रांतों से इतर स्वयं को भारत के केन्द्रीय भाग में स्वयं को बाज़ारों एवं रोज़गार के लिए सक्षम पाया है।

त्रिपुरा में जनसंख्या का घनत्व प्रति किलोमीटर 350 से अधिक है। इस कारण त्रिपुरा के लोगों को देश के विभिन्न भागों में व्यवसाय और नौकरी के लिए जाना पड़ता है। बंगाल से बाहर कहीं भी जाने पर त्रिपुरा वासियों के लिए स्वाभाविक रूप से संपर्क भाषा के रूप में हिंदी ही नजर आती है। बांग्ला शब्दावलियों के अत्यंत नजदीक होने के कारण हिंदी समझने में त्रिपुरा वासियों को देर नहीं लगती और धीरे-धीरे हिंदी बोलना उनके लिए सहज हो जाता है।

त्रिपुरा में हिंदी भाषाई विकास का अध्याय वहाँ की महिलाओं की उपस्थिति के बिना संभव नहीं। वनस्थली विद्यापीठ से शिक्षित होकर आने वाली त्रिपुरा की बालिकाएँ, महिलाएँ त्रिपुरा के विकास में प्रमुख भूमिका निभाने लगीं। ये महिलाएँ त्रिपुरा के विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करा रही हैं। डॉ. मिलन रानी जमातिया, लिली देबबर्मा, अनुराधा देबबर्मा, खुमतिया देबबर्मा इत्यादि महिलाओं ने जहाँ एक ओर त्रिपुरा के विकास में अपनी प्रमुख भूमिका अदा की है, वहीं इन लोगों ने हिंदी को त्रिपुरा में स्थापित करने में मुख्य भूमिका निभाई है। वैसे भी जिस भाषा को महिलाएँ अपनाने लगें उसके विकास को रोकना संभव नहीं है। मिलन रानी जमातिया ने त्रिपुरा के जनजातीय साहित्य को हिंदी में रूपांतरित करने का बीड़ा उठाया है, उन्होंने त्रिपुरा की लोककथाओं, लोकगीतों पर हिंदी पुस्तकें प्रकाशित की हैं। साथ में सुधन्य देबबर्मा के उपन्यास 'हाचुक खुरियो' को हिंदी में अनूदित किया है। प्रख्यात हिंदी विदुषी डॉ. चन्द्रकला पांडेय ने डॉ. जय कौशल के साथ मिलकर अद्वैत मल्लबर्मन के उपन्यास तितास को हिंदी में रूपांतरित किया है, जो राजशाही के त्रिपुरा की अत्यंत मनोहर झलक देता है। केन्द्रीय हिंदी संस्थान ने हिंदी कॉकबरक अध्येताकोष खुमतिया देबबर्मा, मिलनरानी जमातिया के सहयोग से प्रकाशित किया है।

त्रिपुरा के युवा बड़ी संख्या में देश के विभिन्न कोनों में पढ़ाई कर रहे हैं। युवा वर्ग के लिए नए भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी को विशिष्ट स्थान मिल चुका है। यहाँ तक कि बेंगलूरू और हैदराबाद जैसे हिंदीतर भाषी नगरों में अध्ययन के लिए गए युवा सामान्य बातचीत के लिए हिंदी अपना रहे हैं और यही हिंदी के प्रति लगाव उनमें त्रिपुरा में आकर हिंदी के संवाहक बनने का अवसर देता है। वे त्रिपुरा में भी खुलकर हिंदी का प्रयोग कर रहे हैं। त्रिपुरा के जनजातीय समाज के बच्चे कई संगठनों द्वारा देश के विभिन्न कोनों में स्थापित आदिवासी छात्रावासों में निवास कर रहे हैं जहाँ वे प्रारंभिक अध्ययन के कक्षा 12 वीं तक का अध्ययन करते हैं। ये छात्र हिंदी के साथ इतने रच बस जाते हैं कि वापस आने पर घर के बाहर सामान्य रूप से हिंदी बोलने लगते हैं यहाँ तक कि घर में भी उन्हें हिंदी बोलना सरल लगता है।

त्रिपुरा में हिंदी के प्रसार को राजनीतिक दृष्टि से भी सकारात्मक सहयोग मिला। चाहे कम्युनिस्ट पार्टियाँ हों या फिर कांग्रेस या बीजेपी सभी पार्टियों के राष्ट्रीय नेता जनता से संबोधन के लिए हिंदी का प्रयोग करते हैं। विशेष रूप से 2018 के विधानसभा चुनावों में बड़ी संख्या में उत्तर भारत के कार्यकर्ता चुनाव प्रचार के लिए त्रिपुरा आए और गाँव-गाँव में संपर्क किया। इन्होंने संपर्क की भाषा हिंदी अपनाई जिसे पूरे त्रिपुरा ने आत्मीयता से स्वीकार किया। बड़े- बड़े नेताओं ने बड़ी- बड़ी रैलियाँ संबोधित की, जिसमें उनके संबोधन की भाषा हिंदी रही। विशेष रूप से त्रिपुरा की जनता में प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के हिंदी भाषणों के प्रति विशिष्ट लगाव है, उन्हें सुनने के लिए जनता काफी संख्या में उमड़ती है और बड़े चाव से सुनती है। चुनावों के बाद नए मुख्यमंत्री श्री बिप्लब देब का हिंदी प्रेम सर्वविदित है। वे हिंदी से विशिष्ट लगाव रखते हैं और अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी में उद्बोधन देने को वरीयता देते हैं। यदि बांग्ला भाषी समूह है तो बांग्ला संबोधन अन्यथा हिंदी उद्बोधन उनकी विशिष्टता है।

त्रिपुरा में हिंदी के उभार का विशिष्ट कारण है, जनजातीय समाज द्वारा इसे संपर्क भाषा के रूप में बढ़ावा देना। त्रिपुरा में हिंदी जनजातीय समाज द्वारा धीरे-धीरे संपर्क भाषा के रूप में विकसित हो रही है। जहाँ जनजातीय समाज अपने लोगों के मध्य कॉकबरक या अन्य जनजातीय मातृभाषा का उपयोग करते हैं वहीं वे अन्य समुदायों के साथ हिंदी

वार्तालाप को वरीयता दे रहे हैं। त्रिपुरा विश्वविद्यालय में ये देखा जा सकता है कि बहुतायत जनजातीय विद्यार्थी आपसी वार्तालाप में हिंदी अपना रहे हैं। जनजातीय समाज द्वारा कॉकबरक भाषा की लिपि के रूप में देवनागरी अपनाने की बात भी उठ रही है। देवनागरी लिपि को अपनाने के लिए कॉकबरक कलमबॉय नामक एक संगठन भी लगा हुआ है, जिसके हजारों की संख्या में सदस्य हैं। कॉकबरक विकास परिषद् के अध्यक्ष श्री अतुल देबबर्मा हिंदी प्रेमी हैं और त्रिपुरा में हिंदी को बढ़ावा देने के लिए जाने जाते हैं।

हिंदी फिल्में और धारावाहिक देश के साथ-साथ त्रिपुरा में बहुत अधिक लोकप्रिय हैं। जिसके कारण हिंदी का प्रयोग त्रिपुरा के जन-जन तक पहुँचा है। हिंदी फिल्में त्रिपुरा प्रदेश में मनोरंजन की सबसे बड़े साधनों में एक हैं। प्रदेश में पहले दूरदर्शन द्वारा हिंदी फिल्में तय तिथियों में दिखाई जाती थी जो अत्यंत लोकप्रिय थी। लोग इन्हें देखने के लिए समय से दूरदर्शन के सामने बैठ जाते थे, बाद में निजी चैनलों के आने के बाद हिंदी फिल्मों की बाढ़-सी आ गई। जिन्होंने घर बैठे-बैठे सबको बोलचाल की हिंदी सिखा दी। हिंदी फिल्मों के साथ-साथ जिसने हिंदी के प्रसार को बहुत अधिक बढ़ावा दिया, वह था टेलिविजन के सोप आपेरा सीरियल। दिन भर निरंतर चलने वाले सीरियल जनता के खाली समय के मनोरंजन के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। जिनके कारण महिलाएँ घर बैठे हिंदी को अपनाने लगीं। त्रिपुरा में रामायण और महाभारत सीरियल की लोकप्रियता ने लोगों को हिंदी सीखने पर मज़बूर किया और महिलाएँ विशेष रूप से हिंदी को समझने लगीं। धीरे-धीरे हिंदी त्रिपुरा की अपनी भाषा लगने लगी। हिंदी के प्रचार-प्रसार में कुछ बाल धारावाहिकों ने अत्यंत प्रमुख भूमिका निभाई है। डोरेमान, छोटा भीम, मोटू पतलू जैसे सीरियल देखकर छोटे बच्चे अपनी मातृभाषा के स्थान पर हिंदी में बात करने में सरलता महसूस करते हैं और वही बच्चों की बोलचाल की भाषा बन जाती है। टेलिविजन में विभिन्न मैचों की कमेंटरी हिंदी में आने के कारण लोगों का हिंदी के प्रति लगाव बढ़ता गया विशेष रूप से क्रिकेट कमेंटरी रेडियो पर हिंदी में सुनना अंग्रेजी से अधिक सरल लगता रहा जिसके कारण हिंदी अपनी लोकप्रियता के शिखर को पाती गई। त्रिपुरा में जिधर देखिए चाहे पूजन हेतु मूर्ति लेने जाना हो या पूजन के उपरांत मूर्ति विसर्जित करना हो जुलूस निकालकर धार्मिक कार्य किए जाते हैं। इन जुलूसों में तेज़ स्वर में गाने बजाए जाते हैं, जिन पर लोग नृत्य करते हैं। धीरे-धीरे इन जुलूसों के गीतों में हिंदी ने कब सर्वाधिकार कर लिया पता ही नहीं लगा और लोग हिंदी गानों पर नृत्य कर आनंद लेने लगे।

त्रिपुरा भाषाई वैविध्य से भरा-पूरा प्रदेश है। यहाँ अनेकों भाषाएँ है जिनकी अपनी पहचान है। वेशभूषा, खानपान, रहन सहन में बहुलता त्रिपुरा की पहचान है। लोकतंत्र में भाषा के मामले में केवल संख्या या आँकड़ों पर ही सबकुछ निर्भर नहीं करता बल्कि भाषा की स्वीकार्यता सबसे प्रमुख होती है। संविधान की दृष्टि से हिंदी राजभाषा है, इसलिए उस पर सरकारी कामकाज का माध्यम बनने की ज़िम्मेदारी है। इस रूप में हिंदी केन्द्रीय कार्यालयों की प्रमुख भाषा है। संविधान की धारा 351 में हिंदी को सामाजिक समरसता को बढ़ावा देने वाली भाषा के रूप में विकसित करने की बात कही गई है। संपर्क भाषा के रूप में हिंदी संविधान की इसी भावना को प्रतिपादित करती है। त्रिपुरा में हिंदी सामाजिक समरसता की प्रमुख कड़ी के रूप उभरी है। समाज के सभी वर्गों द्वारा बोलचाल की भाषा के रूप में बांग्ला और कॉकबरक के साथ-साथ सौहार्दभाव से स्वीकार की जा रही है। त्रिपुरा में हिंदी का विकास त्रिपुरा के 40 लाख से अधिक लोगों के लिए भारतीय मुख्यधारा से लगाव का विकास है। हिंदी के विकास द्वारा रोज़गार और व्यवसाय हेतु त्रिपुरा वासियों के लिए एक सर्वमान्य माध्यम मिला है। इसे पूरे त्रिपुरा में आत्मीयता से स्वीकारा गया है।

मणिपुर में हिंदी की स्थिति

- डॉ. ई. विजय लक्ष्मी

भारत में राजभाषा, राष्ट्रभाषा तथा सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग हो रहा है। हिंदी को ये पद उसकी अपनी विशेषताओं के कारण प्राप्त हुआ है। किसी भी भाषा को जन भाषा या सम्पर्क भाषा बनने के लिए सामाजिक आवश्यकताओं के पूर्ति की क्षमता, रचनात्मक शक्ति और साहित्यिक एवं कलात्मक योग्यता से परिपूर्ण होना चाहिए। हिंदी में ये सारी विशेषताएँ मौजूद हैं। इसलिए हिंदी का प्रयोग न केवल भारत में बल्कि विदेशों में भी बढ़ रहा है। कहना गलत न होगा कि आज तकनीकी विकास के इस दौर में भी हिंदी का प्रयोग बड़ी तेजी बढ़ रहा है।

मणिपुर में हिंदी का प्रयोग कब और कैसे शुरू हुआ, इसका निश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी के बीच भारत के प्रमुख हिंदी प्रदेशों से अनेक ब्राह्मण, मुगलों के आक्रमण से भयभीत होकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में चले गए थे। प्रबंधन के माध्यम से बहुत लोग मणिपुर भी पहुँचे, तब मणिपुर वासियों का परिचय हिंदी से हुआ। चौथारोल कुम्बाबा के अनुसार इस तथ्य की जानकारी भी मिलती है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में राजा कियाम्बा द्वारा लमलाङ्दोङ या विष्णुपुर में स्थापित विष्णु मन्दिर में पूजा-अनुष्ठान करवाने के लिए ब्राह्मण नियुक्त किए गए थे। ये ब्राह्मण अपने साथ अपनी भाषा और अपनी संस्कृति लेकर आए थे, जिनके समन्वय से मणिपुर में एक नई संस्कृति का जन्म हुआ। ईश्वर की पूजा- आराधना जैसी धार्मिक क्रियाओं में ये ब्राह्मण संस्कृत तथा हिंदी की शब्दावली का प्रयोग करते थे। अट्ठारहवीं शताब्दी में पामहैबा अर्थात् महाराजा गरीबनवाज द्वारा अपने शासन काल में वैष्णव धर्म को राज धर्म घोषित कर दिए जाने के बाद तो वैष्णव पदावली तथा जयदेव के गीतगोविन्द के पदों का गान मणिपुरी समाज- सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्रियाओं का अनिवार्य अंग बन गया। वैष्णव धर्मावलम्बी मणिपुरी लोगों के मन में काशी, हरिद्वार, नवद्वीप, पुरी, वृन्दावन आदि क्षेत्रों के प्रति श्रद्धा का भाव जागा। इन तीर्थ स्थलों की यात्रा के कारण भी हिंदी तथा यहाँ की बोलियों से मणिपुर के लोगों का परिचय बढ़ा। अट्ठारहवीं शताब्दी में जब अंग्रेज मणिपुर आए उस समय वे अपने साथ कुछ बांग्ला तथा हिंदी भाषी अधिकारियों को भी साथ लाए थे। उनसे सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी मणिपुर के लोगों को हिंदी की आवश्यकता महसूस हुई। उन्नीसवीं शताब्दी में महाराज चुड़ाचाँद के शासन काल में औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था के लिए विद्यालयों की स्थापना की गई। मेधावी विद्यार्थियों को मणिपुर से बाहर विद्याध्ययन के लिए भेजा गया। काशी, प्रयाग, नवद्वीप जैसे धार्मिक स्थलों में रहकर उन विद्यार्थियों ने संस्कृत के साथ हिंदी का भी ज्ञान प्राप्त किया। इसके साथ मणिपुर में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने में हिंदी भाषी व्यापारियों की भूमिका भी महत्त्वपूर्ण रही है।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान जब गांधी जी ने राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दुस्तानी की वकालत की और उसके प्रचार-प्रसार की आवश्यकता जताई तो विभिन्न प्रदेशों के साथ मणिपुर में भी राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को ही मान्यता देने के पक्ष में अनेक लोग सामने आए। पं.राधामोहन शर्मा, थोकचोम मधु सिंह, ललिता माधव शर्मा और कैशाम कुँजबिहारी ऐसे ही व्यक्तित्व हैं, जिनपर गांधी जी के विचारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वास्तव में इन्हें मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के आदि- स्तंभ के रूप में माना जाना चाहिए। आज मणिपुर में हिंदी का जो एक समृद्ध रूप देखने को मिलता है, वह सहज परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, बल्कि इन निःस्वार्थ हिंदी सेवियों की आहुतियों का परिणाम है। विपरीत परिस्थितयों से जूझने की उनकी प्रवृत्ति और अनथक प्रयासों के बदौलत ही हिंदी को यह स्थान प्राप्त हुआ है। उन त्यागमय हिंदी सेवियों के अमूल्य योगदान को याद किए बिना मणिपुर में हिंदी की स्थिति को पूर्णतः समझा नहीं जा सकता।

हिंदी प्रचार के प्रारंभिक समय में पं. राधामोहन शर्मा ने

थोकचोम मधु सिंह के साथ मिलकर 'हिंदी विद्यालय' स्थापित की और हिंदी अध्यापन का कार्य आरंभ किया। कैशाम कुँजबिहारी ने मोइराङखोम और तेरा बाज़ार में हिंदी स्कूल किया शुरुआत की। आगे चलकर इन्होंने ही 'राष्ट्रलिपि स्कूल' की भी स्थापना की। सन् 1933ई. में इम्फाल के व्यापारी वर्ग के प्रयासों से सेठ भैरोदान के नाम पर 'भैरोदान हिंदी स्कूल' की स्थापना हुई। इनके अलावा मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करने वाले महानुभावों में हुइरोम अतुलचन्द्र सिंह, लाइपुबम भागवत देव, अरिबम छत्रध्वज शर्मा, डांहांमै मथियुचुङ (मेरा कबुई), हिदङमयुम द्विजमणि देव शर्मा, चिगाङ्बम कलाचाँद शास्त्री आदि अनेक लोग हैं जिनपर अलग से शोध कार्य तक किया जा सकता है।

मणिपुर में संस्थागत हिंदी प्रचार के सम्बन्ध में प्रामाणिक तौर पर इस तथ्य की जानकारी मिलती है कि सन् 1928ई. में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग' द्वारा हिंदी प्रचार का कार्य शुरू किया गया। अत: माना जा सकता है कि इसी संस्था के माध्यम से मणिपुर में संस्थागत हिंदी प्रचार की नींव पड़ी। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अन्तर्गत सन् 1940ई. में 'मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई। सन् 1953ई. में 'मणिपुर हिंदी परिषद्' एक स्वैच्छिक हिंदी प्रचार संस्था के रूप में अस्तित्व में आया। इन संस्थाओं के साथ नागरी लिपि प्रचार सभा (1958 ई.), नागा हिंदी विद्यापीठ (1970 ई.), मणिपुर ट्रायबेल्स हिंदी सेवा समिति (1982 ई.) आदि समय-समय पर स्थापित संस्थाएँ हैं, जिन्होंने मणिपुर में हिंदी प्रचार को गति प्रदान की। अखिल मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ और मणिपुर हिंदी शिक्षक संघ जैसी संस्थाएँ भी मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करने की कोशिश में लगी हैं। सरकारी योजनाओं के तहत केन्द्रीय हिंदी शिक्षण योजना के अलावा हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण संस्थान, हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय आदि में आयोजित हिंदी सम्बन्धी कार्यक्रमों के कारण मणिपुर में हिंदी का एक सशक्त रूप उभर कर आता है। मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में होने वाली स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा, शोध तथा अनुवाद के कार्य मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करने वाले हैं। आकाशवाणी इम्फाल केन्द्र से प्रसारित होने वाले हिंदी सम्बन्धी कार्यक्रम हिंदी के प्रति रुचि उत्पन्न करने वाले हैं। अत: कहा जा सकता है कि ये कार्यक्रम भी मणिपुर में हिंदी की स्थिति को मज़बूत करने में सहायक हैं।

मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता ने भी हिंदी की स्थिति को मज़बूत किया है। मणिपुर में हिंदी पत्रकारिता के सम्बन्ध में यह तथ्य उपलब्ध है कि द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान एक हस्त लिखित पत्रिका प्रकाशित हुई थी, परन्तु इसके संपादक के बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है। सन् पचास के बाद दूसरी पत्रिका साइक्लोस्टाइल में निकाली गई, जिसका नाम 'कामाख्या न्यूज एक्सप्रेस' था। इसके बाद मणिपुर में प्रकाशित जिन पत्र- पत्रिकाओं ने हिंदी प्रचार-प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, उनमें उल्लेखनीय हैं- सम्मेलन गजट, नई शिक्षा, नागरिक पन्थ, चिन्तना, हिंदी शिक्षक द्वीप, युमशकैश, कुन्दो परेङ, महिप, चयोल पाउ, लटचम आदि परन्तु इनमें से कुछ धनाभाव या अन्य किसी न किसी कारण से अल्पकालिक सिद्ध हुईं। महिप, चयोल पाउ, लटचम और युमशकैश ऐसी पत्रिकाएँ हैं जो वर्तमान में हिंदी सेवा में जुटे लोगों की प्रतिबद्धता सिद्ध करती हैं।

मणिपुर में हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन के माध्यम से भी हिंदी के व्यापक प्रयोग को समझा जा सकता है। मणिपुर में हिंदी पुस्तकों के प्रकाशन के इतिहास को देखें तो पता चलता है कि मणिपुर में सन् पचास के आस-पास जो पहली हिंदी पुस्तक प्रकाशित हुई, वह अतोम बाबू शर्मा की धर्म सम्बन्धी पुस्तक थी। इसके पश्चात् आज तक अनेक पाठ्य-पुस्तकों तथा मौलिक रचनाओं का प्रकाशन हो चुका है। क्षितिज सा ध्येय (आचार्य राधागोविंद कविराज), मीतै चनु (सं. देवराज), राष्ट्रीय चेतना चिंतन (ह. गोकुलानंद शर्मा), सिद्धेश्वर चालिसा (शिवगोविंद दास), प्रयास (सं. देवराज), खम्ब- थोइबी (निशान सिंह), वीर टिकेन्द्रजीत (के याइमा शर्मा) आदि कुछ पुस्तकें उल्लेखनीय हैं। इन पुस्तकों के अलावा आज तक अनेक पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं। हिंदी से मणिपुरी तथा मणिपुरी से हिंदी में अनूदित सामग्रियाँ भी लगातार प्रकाशित हो रही हैं। इतना होने के बावजूद यह कहना गलत न होगा कि अहिंदी प्रदेश होने के नाते मणिपुर में हिंदी को वह स्थान नहीं मिल पाया है, जिसकी वह हकदार है। मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए अब तक व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक स्तर पर जितने भी प्रयास हुए हैं, वे सराहनीय है। उनके प्रयासों को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता, किन्तु यह भी सत्य है कि आज मणिपुर में हिंदी का अपेक्षित विकास नहीं हो रहा। इसके अनेक कारण हो सकते हैं-

1.भाषा सम्बन्धी समस्या- हिंदी तथा मणिपुरी दो भिन्न प्रकृति की भाषाएँ हैं। दोनों ही दो भिन्न भाषा परिवार से होने के कारण उनमें अनेक अंतर देखने को मिलते हैं। मणिपुरी तान प्रधान भाषा है इसलिए इसकी लिपि ही भिन्न नहीं है बल्कि शब्द, उच्चारण तथा व्याकरण भी भिन्न है। इसलिए

हिंदी सीखते समय मणिपुरी भाषी लोगों को हिंदी व्याकरण की नींव समझने में परेशानी होती है। अक्सर लिंग, वचन, कारक की सही जानकारी के अभाव में सही हिंदी सीख पाने में परेशानी होती है।

2.सामाजिक मानसिकता– व्यक्ति के विचारों पर राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है। समय के साथ परिस्थिति में जो बदलाव हो रहे हैं, उसने भी मणिपुर में हिंदी के प्रचार और प्रसार को प्रभावित किया है। आज हिंदी के प्रति वह मानसिक जुड़ाव नजर नहीं आता, जो हिंदी प्रचार के प्रारंभिक कालों में हिंदी सेवियों में दिखाई देते थे। नि:स्वार्थ और त्यागपूर्ण भावना आज के दौर में कुछ हिंदी सेवियों को छोड़कर, कम ही देखने को मिलती हैं।

3. व्यापार या अर्थ की भाषा– एक समय ऐसा था जब बाज़ार में हिंदी भाषी लोगों की संख्या अधिक थी। ऐसे में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए लोग स्वत: हिंदी सीखते थे, परन्तु आज हिंदी पूरी तरह बाज़ार की भाषा नहीं बन पाई है। हिंदी भाषी भी आज प्राय: मणिपुरी में वार्तालाप करते देखे जा सकते हैं। मणिपुर में हिंदी का सीधा सम्बन्ध अर्थ से न होने के कारण भी हिंदी का प्रचार कम हुआ है।

4. रोज़गार सम्बन्धी समस्या– शिक्षा का एक उद्देश्य रोज़गार से जुड़ा हुआ है। हिंदी के प्रति आकर्षण का एक कारण रोज़गार भी है, परन्तु मणिपुर में हिंदी रोज़गार की भी भाषा नहीं बन पाई है। हिंदी पढ़ने के बाद कुछ नौकरियाँ जरूर मिल जाती हैं पर वह बड़ी नौकरियाँ नहीं होतीं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में भी पदों की संख्या सीमित होती है तथा सरकारी विभागों में पदों का नितांत अभाव है। वहाँ भी कुछ गिने-चुने पद ही होते हैं। इसलिए भी लोग हिंदी की ओर कम आकर्षित होते हैं।

5. युवा वर्ग की भूमिका– आज के वैज्ञानिक तथा तकनीकी युग में युवा तेज़ रफ्तार को पसंद करते हैं। उन्हें हर चीज तुरन्त चाहिए इसलिए हिंदी प्रचार संस्थाओं से युवा-वर्ग का जुड़ाव कम होता जा रहा है। जिस भावनात्मक जुड़ाव के कारण लोग इन संस्थाओं से जुड़ते थे, आज वह भावना लोगों में कम दिखाई देती है, इसका कारण हिंदी के प्रति प्रेम व श्रद्धा भाव में कमी को माना जा सकता है। यह सच है कि आज खासकर युवा वर्ग की रुचि हिंदी से घट रही है। कुछ अगर जुड़ते भी हैं तो वे नौकरी पाने तक ही जुड़े रह पाते हैं इसलिए नौकरी लग जाने के बाद पहले की तरह संस्था के कामों को समय नहीं दे पाते अत: हिंदी से जुड़ी गतिविधियाँ कम हो जाती हैं।

6. शिक्षण सम्बन्धी समस्या– हिंदी शिक्षण केन्द्रों में कार्यरत सभी शिक्षक प्राय: भाषा में प्रशिक्षित नहीं हैं। या तो वे अपना शौक पूरा करने के लिए संस्थाओं से जुड़ते हैं या फिर आर्थिक कारणों से शिक्षण संस्थाएँ चलाते हैं। इसलिए इन संस्थाओं में प्रवेश के बावजूद शिक्षा सही ढंग से नहीं हो पाती। इन शिक्षण केन्द्रों से निकलने वाले विद्यार्थी ठीक से हिंदी बोलना तक नहीं सीख पाते।

7. धनाभाव– हिंदी प्रचार और प्रसार के कार्यों को सुचारू रूप से चलाने के लिए एक निश्चित रकम की जरूरत तो पड़ती ही है। राज्य सरकार और केन्द्र सरकार की ओर से मणिपुर में कार्यरत संस्थाओं को अनुदान के रूप में कुछ रकम मिलती तो है, परन्तु वह वर्ष के एक निश्चित समय पर ही दी जाती है। इसके साथ ही वह रकम पर्याप्त नहीं होती कि संस्थाएँ उस अनुदान के सहारे सारी योजनाओं को अंजाम दे सकें। अत: संस्थाएँ हिंदी प्रचार के काम को पूरा नहीं कर पाती।

8. अंग्रेजी के प्रति मोह– आज के बदलते परिदृश्य में सम्पूर्ण विश्व एक इकाई बन गया है। ऐसे में विश्व भर से संवाद के लिए अंग्रेजी का जानना जरूरी हो जाता है, इसलिए लोगों की रुचि अंग्रेजी के प्रति बढ़ रही है। राज्य स्तर पर भी हिंदी अनिवार्य न होने के कारण भी हिंदी का प्रचार-प्रसार अवरुद्ध हुआ है। दूसरी ओर सरकारी काम-काज के लिए भी हिंदी जानना आवश्यक नहीं है अत: हिंदी की ओर लोगों का ध्यान कम जाता है।

जहाँ तक इन समस्याओं के समाधान का प्रश्न है तो इसे हिंदी से जुड़े सभी विद्वतजन को मिलकर खोजना चाहिए, जिसमें हिंदी प्रचार संस्थाओं और हिंदी प्रचारकों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होनी चाहिए। मणिपुर में हिंदी प्रयोग सम्बन्धी जो समस्याएँ उभर रही हैं उन समस्याओं का हल न तो किताबों में है न ही चंद बातें यहाँ कह देने से हो सकता है। वास्तव में हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने का कार्य समर्पण भावना के साथ किया जाना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि हिंदी प्रचार से जुड़े सभी अपना सब कुछ हिंदी प्रचार में लगा दें परन्तु अपनी ज़िम्मेदारी के प्रति ईमानदार बने रहना नितान्त आवश्यक है। कोई भी व्यक्ति या संस्था अपने बूते पर मणिपुर में हिंदी की स्थिति को सुधार नहीं सकता इसलिए सरकारी स्तर पर इसके लिए निश्चित योजना बनाई जानी चाहिए। साथ ही उनका क्रियान्वयन भी उतने ही लगन से किया जाना चाहिए। यही नहीं संस्थाओं की कार्य पद्धति का भी पुनरीक्षण होना चाहिए। हिंदी से जुड़े लोगों को यह समझना होगा कि हिंदी सीखने का अर्थ केवल क ख ग सीखना नहीं है, बल्कि उसे अभिव्यक्ति की भाषा भी बनानी

है। अपनी संस्कृति और अपने इतिहास को व्यक्त करने की भाषा बनानी है। हिंदी हमारी अपनी भाषा मणिपुरी को उन्नत करने का माध्यम भी हो सकती है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आज हिंदी की स्थिति सुदृढ़ हो रही है। विश्व के प्रमुख देशों ब्रिटेन, अमेरिका, रूस, जर्मनी, चीन, जापान यहाँ तक कि थाइलैण्ड और कोरिया में भी प्रतिष्ठित और मान्यता प्राप्त है। हिंदी के माध्यम से न केवल भारत में बल्कि विश्व की दौड़ में भी शामिल हो सकते हैं। हिंदी के माध्यम से इंटरनेट की सुविधा का लाभ उठाया जा सकता है। इसी के साथ हमें यह भी समझना होगा कि हिंदी के माध्यम से विश्व को मणिपुरी भाषा और संस्कृति का परिचय दिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में मणिपुर में हिंदी प्रचारकों तथा संस्थाओं के समक्ष तमाम समस्याओं के होते हुए समझदारी, कौशल और समर्पण भावना के साथ योजनाबद्ध ढंग से यदि प्रचार कार्य करें तो निश्चित रूप से मणिपुर में हिंदी की स्थिति को सुदृढ़ किया जा सकता है।

सहायक ग्रंथ–

1. अरिबा मणिपुरी साहित्य गी इतिहास, निङथौखोङजम खेलचन्द्र, तीसरा संस्करण– 2004.
2. अ हिस्ट्री ऑफ मणिपुरी लिटरेचर, सीएच. मणिहार, तीसरा संस्करण– 2013, साहित्य अकादमी ISSN: 978- 81- 260- 4212- 8
3. मणिपुर इतिहास– राजकुमार सनाहल सिंह, प्रकाशक श्री ङाङोम तोम्पोक सिंह– 1947
4. मणिपुर : विविध संदर्भ, सं। देवराज हिंदी परिषद, हिंदी विभाग, मणिपुर विश्वविद्यालय इम्फाल।

त्रिपुरा में हिंदी भाषा व साहित्य : एक अवलोकन

- डॉ. काली चरण झा

15 अक्टूबर, 1949ई. में भारतीय संघ में विलय से पूर्व त्रिपुरा एक देशी रियासत था। ऐसा माना जाता है कि प्राचीन त्रिपुरा का विस्तार व्यापक था। "यह तथ्य है कि प्राचीनकाल में त्रिपुरा का सीमा- विस्तार बंगाल की खाड़ी तक था, जब उसके शासकों का प्रभुत्व गारो हिल्स से अराकान तक था। गौरतलब है कि आज भी पहाड़ी लोग तिपरा शब्द का उच्चारण करते हैं न कि त्रिपुरा का।"[1] त्रिपुरा का सम्बन्ध प्राचीन राजा द्रूहायु, त्रिपुर और त्रिलोचन से भी जोड़ा जाता है। जो भी हो इतना तो तय है कि महाभारत समय तक इस प्रदेश की एक स्पष्ट पहचान स्थापित हो चुकी थी। इसीलिए भारतीय सभ्यता और संस्कृति को जानने के लिए पूर्वोत्तर भारत को भी जानना होगा। हमें लगता है कि पूर्वोत्तर हमसे बहुत दूर है किन्तु जब हम इसका ऐतिहासिक व सांस्कृतिक अध्ययन करते हैं तो हम पाते हैं कि यहाँ के रहवासियों का सम्बन्ध भारत के शेष भाग से सदियों से रहा है। अपने प्राकृतिक सौन्दर्य, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विशिष्टताओं तथा सामरिक व वाणिज्यिक विशिष्टता के कारण त्रिपुरा हमारे लिए विशेष महत्त्व रखता है।

भाषाई दृष्टि से पूर्वोत्तर भारत एक विलक्षण चित्र प्रस्तुत करता है। हकीकत तो यह है कि "उत्तर-पूर्व भारत के एक विस्तृत एवं जटिल नृजातीय व सामाजिक भाषाई बनावट में विभिन्न भाषा परिवारों की लगभग 420 भाषाएँ एवं बोलियाँ बोली जाती हैं। उपर्युक्त तथ्य इस क्षेत्र की भाषा सम्बन्धी समस्याओं की एक विलक्षणता एवं विशिष्टता प्रदान करता है। यह विस्तृत नृजातीय क्षेत्र सात राज्यों की 209 अधिसूचित जनजातियों और गैर-जनजातियों की विषमांग आबादी को समाहित करता है।"[2] पूर्वोत्तर भारत में स्थित तथा 10491.69 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैला वर्तमान त्रिपुरा भारत का छोटा-सा प्रदेश है, जिसकी सीमाएँ बांग्लादेश, मिजोरम एवं असम से लगी हुई हैं। यहाँ की कुल जनसंख्या 36,71, 032 में से जनजातियों की जनसंख्या 11,66,813 है।[3] यहाँ विभिन्न प्रकार की उन्नीस मूल जनजातियों का अधिवास है। यहाँ की मूल जनजातियों की भाषाओं को तीन मुख्य भाषाई वर्गों में बाँटा गया है-बोड़ो वर्ग, कूकी चीनी वर्ग तथा अराकान वर्ग। बोड़ो वर्ग के अंतर्गत आठ जनजाति वर्ग हैं- त्रिपुरी, जमातिया, रियांग, नोआतिया, उचाई, कोलाई, मुडासिंह और रूपिणी। ये सभी जनजातियाँ बोड़ो वर्ग के अंतर्गत मानी जाती हैं और इनका मूल मंगोलाइड है। इनकी भाषा को चीनी-तिब्बती वर्ग के अंतर्गत तिब्बती-वर्मी समूह में वर्गीकृत किया गया है। इन्हीं आठ आदिवासियों की सम्मिलित भाषा को 'कॉकबरॉक' कहा जाता है। कूकी-चीनी वर्ग के अंतर्गत डारलोंग, कुकी, हलम, लुसाई, मालसोम, कईपेंग, बोंग आदि आदिवासी आते हैं। यह कूकी-चीनी वर्ग मूलत: चीनी मूल से सम्बन्ध रखते हैं और तिब्बती-बर्मी भाषा बोलते हैं। मोग और चकमा आदि आदिवासी अराकान वर्ग के अंतर्गत माने जाते हैं क्योंकि ये मूलत: अराकान जनजातियों से सम्बन्धित हैं और इनकी भाषा अराकानी मानी जाती है। इन मूल निवासियों के अतिरिक्त त्रिपुरा में कुछ अप्रवासी आदिवासियाँ भी हैं, जो सदियों पहले रोज़गार की तलाश में यहाँ आए अथवा लाए गए और यहीं बस गए हैं। इन आदिवासी समूहों में मुंडा, संथाल, उड़ाऊँ, भील, लेपचा, खसिया तथा भूटिया आदि विशेष उल्लेखनीय हैं।

त्रिपुरा की वर्तमान भाषाई स्थिति के संदर्भ में यह तथ्य अवलोकनीय है कि कुछ ऐतिहासिक कारणों से बांग्ला भाषा इस प्रदेश की महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली भाषा रही है। "राज्य के तत्कालीन शासकों ने बांग्ला को राजकीय एवं प्रशासनिक भाषा के रूप में संरक्षण दिया। अब तो यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्वयं को स्थापित कर चुकी है। करीब अस्सी फीसदी लोग अपने दैनिक जीवन में बांग्ला भाषा का इस्तेमाल करते हैं। यहाँ तक कि त्रिपुरी (कॉकबरक) बांग्ला लिपि में लिखी जाती है। यही कारण है कि त्रिपुरी लोग बांग्ला समझ एवं बोल लेते हैं। त्रिपुरियों के प्रबुद्धवर्ग की बांग्ला भाषा पर महारत हासिल होती है। ये बांग्ला भाषा पर मातृभाषा जैसी पकड़ रखते हैं। इनकी बौद्धिक एवं सांस्कृतिक

उपलब्धियाँ उतनी ही उच्च है जितनी किसी अन्य उन्नत समुदाय की।"[4] यहाँ यह उल्लेख करना अप्रासंगिक नहीं होगा कि कॉकबरॉक भाषा वर्तमान में बांग्ला अथवा रोमन लिपि में लिखी जाती है क्योंकि इसकी अपनी कोई लिपि नहीं रही है।

वर्तमान में त्रिपुरा में बांग्ला, कॉकबरॉक और अंग्रेजी राजकीय भाषा के रूप में प्रचलित है और कहना न होगा कि यही बांग्ला, कॉकबरॉक और अंग्रेजी भाषाएँ पठन- पाठन के माध्यम भी हैं। यहाँ हिंदी भाषा शिक्षा का माध्यम नहीं है बल्कि एक भाषा विषय के रूप में कुछ विद्यालयों, पाँच महाविद्यालयों (चार सरकारी तथा एक प्राइवेट) तथा त्रिपुरा विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) में पढाई जाती है। महाविद्यालय स्तर पर हिंदी पाठ्यक्रम डिग्री स्तर पर तीन स्तरों पर निर्धारित किया गया है। प्रतिष्ठा के रूप में, ऐच्छिक विषय के रूप में तथा एम.आई.एल. के रूप में। जबकि त्रिपुरा विश्वविद्यालय (केन्द्रीय विश्वविद्यालय) में आई.एम. डी. और स्नातकोत्तर स्तर पर हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है साथ ही पीएच.डी. पाठ्यक्रम भी हिंदी में उपलब्ध है। त्रिपुरा विश्वविद्यालय का हिंदी विभाग हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए एक वर्षीय अनुवाद में स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी चलाता है।

वस्तुतः इन्हीं परिस्थितियों में त्रिपुरा में हिंदी का प्रचार-प्रसार, अनुवाद व रचनात्मक लेखन को समझा जा सकता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का यह विचार था कि कई भाषाओं के प्रयोग के कारण राममनोहर राय सभी धर्मो को समझ पाए और इसलिए वे देश के सच्चे प्रतिनिधि हैं। वस्तुतः कोई भी भाषा अच्छी तरह सीखना आज के समावेशी जातीय आत्म पहचान, उच्चतर सौन्दर्यबोध, विश्लेषण क्षमता और संवेदनशीलता के उन्मेष की प्रक्रिया है। वस्तुतः त्रिपुरा के नवयुवक अधिकाधिक संख्या में हिंदी को अपनाते हैं तो उनके सर्वांगीण विकास के लिए उपयुक्त माध्यम सिद्ध होगी। एक संपर्क भाषा के रूप में इसकी उपयोगिता स्वयंसिद्ध है। सबसे बड़ी बात यह है कि हिंदी आज रोजी-रोटी पाने का माध्यम भी बन चुकी है। इसकी प्रयोजनीयता का क्षेत्र विस्तृत हो चुका है। यह प्रशासन, कार्यालय, वाणिज्य, विधि, विज्ञान एवं तकनीकी, संगणक, विज्ञापन, जनसंचार, मनोरंजन आदि क्षेत्रों की भाषा बन चुकी है।

अपने विशाल शब्द भण्डार, वैज्ञानिकता, शब्दों और भावों को आत्मसात करने की प्रवृत्ति के साथ ज्ञान- विज्ञान की भाषा के रूप में अपनी उपयोगिता पूरी दुनिया में साबित कर रही है। यह दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने तक बोली, पढ़ी- लिखी और समझी जाती है। वास्तव में, हिंदी की जड़ें गहरी है। 'भाषा महज अभिव्यक्ति का साधन नहीं है, भाषा में मनुष्य की अस्मिता स्वर पाती है। उसमें सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति भी होती है। समय के साथ होने वाले सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों की अनुगूँज उसमें सुनाई पड़ती है।' हिंदी की इसी महत्ता को आत्मसात करते हुए त्रिपुरावासी हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए आगे आ रहे हैं। त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, धर्मानगर के श्री रमेंद्र कुमार पाल, डॉ. शुभ्रांशु धाम; त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अगरतला के श्री हरिपद देब तथा सुश्री अपर्णा देब त्रिपुरा विश्वविद्यालय के प्रो. विनोद कुमार मिश्र आदि लोग हिंदी के प्रचार-प्रसार तथा संवर्धन में जुटे हुए हैं।

जहाँ तक हिंदी में रचनात्मक साहित्य का प्रश्न है तो त्रिपुरा में इसका अभाव है। इस क्रम में प्रो. विनोद कुमार मिश्र का भी मानना है कि त्रिपुरा में हिंदी भाषा में रचित रचनात्मक साहित्य की कोई परम्परा अभी तक विकसित नहीं हो पाई है लेकिन अनूदित साहित्य धीरे-धीरे विस्तार पा रहा है।[5] यद्यपि स्व. रमेंद्र कुमार पाल का एक उपन्यास "देवी माँ" के नाम से हिंदी में प्रकाशित हो चुका है इसके साथ ही उन्होंने कुछ कविताएँ तथा कहानियाँ भी हिंदी में लिखी हैं किन्तु दो-एक को छोड़कर अधिकांश रचनाओं का प्रकाशन नहीं हो पाया है।[6] डॉ. शुभ्रांशु दाम ने कुछ कविताएँ एवं लेख हिंदी में लिखे हैं जिसका प्रकाशन 'समन्वय पूर्वोत्तर', 'लहक', 'शब्दनील', 'कंचनजंघा', 'राष्ट्रभाषा' आदि पत्र-पत्रिकाओं के विभिन्न अंकों में हुआ है। श्री शुभ्रांशु धाम द्वारा लिखित तथा प्रकाशित कुछ महत्त्वपूर्ण कविताओं के नाम हैं- अभिजात्य, अभिलाषाएँ, नारी हूँ मैं, गणतंत्र दिवस, मुझे प्यार है, अकेला हूँ मैं, कविता, दर्पण, वसंत, हिंदी हमारी शान आदि।

वस्तुतः त्रिपुरा में बांग्ला और कॉकबरक भाषा में लिखित साहित्य से हिंदी में अनुवाद कार्य अवश्य हो रहे हैं। इस कार्य में केन्द्रीय हिंदी निदेशालय महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है जो अनुदान देकर, कार्यशालाओं का आयोजन कर कॉकबरॉक भाषा में लिखित साहित्य का अनुवाद हिंदी में करने को प्रोत्साहित करता है, जैसे कॉकबरक लोक साहित्य (2016 ई.), हिंदी-कॉकबरॉक अध्येता कोश आदि। इसी प्रकार 'समन्वय पूर्वोत्तर' पत्रिका के माध्यम से यहाँ के लेखक विविध विषयों पर आलेख लिखकर हिंदी भाषा व साहित्य को समृद्ध कर रहे हैं। अभी हाल ही में सुधन्य देबबर्मा द्वारा कॉकबरॉक भाषा में लिखित उपन्यास का हिंदी

अनुवाद (2021 ई.) 'पहाड़ की गोद में' नाम से चंद्रकला पाण्डेय और मिलन रानी जमातिया ने किया है। यह उपन्यास त्रिपुरा के जनजातीय जीवन पर आधारित प्रथम प्रकाशित उपन्यास के रूप में मान्यता प्राप्त है। इसी तरह त्रिपुरा के जनजातीय देवता गाँरिया पर हिंदी भाषा में एक पुस्तक "त्रिपुरा के गाँरिया लोकगीत" नाम से वर्ष 2019ई. में प्रकाशित हुआ है। वाणी प्रकाशन द्वारा प्रकाशित तथा कृपाशंकर चौबे द्वारा संपादित 'हिंदी और पूर्वोत्तर' नामक पुस्तक में भी त्रिपुरा के कुछ लेखकों के लेख संगृहीत हैं।

यह सही है कि त्रिपुरा में हिंदी भाषा में रचनात्मक साहित्य का सृजन बहुत कम हुआ है लेकिन अनूदित साहित्य से हिंदी क्रमशः संवर्धित हो रही है। साथ ही यहाँ के युवाओं में बोल-चाल की भाषा के रूप में हिंदी धीरे-धीरे काफी लोकप्रिय हो रही है। वस्तुतः जैसे-जैसे हिंदी की महत्ता स्थापित हो रही है और उसका प्रचार-प्रसार हो रहा है, यहाँ के रचनाकार हिंदी में साहित्य सृजन की ओर अवश्य उन्मुख होंगे और हिंदी का रचनात्मक साहित्य क्रमशः संवर्धित होता जाएगा।

संदर्भ ग्रंथः

1. त्रिपुरा डिस्ट्रिक्ट गजेटीयर, गवर्मेंट ऑफ त्रिपुर, अगरतला, पृष्ठ 1
2. सैम्युल जान, 'लैंग्वेज एँड नेशनलिटी इन नार्थ- ईस्ट इंडिया', इकोनोमी एँड पोलिटिकल विकली, खंड XXV III, नं। 3- 4 (जनवरी 1993), पृष्ठ 91- 92
3. trci-tripura-gov-in
4. त्रिपुरा, एस.एन.गुहा ठाकुराता (अनुवाद संजय सिंह), पृष्ठ 47, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, प्रथम संस्करण, वर्ष 2013ई.
5. पूर्व महासचिव, विश्व हिंदी सचिवालय तथा अध्यक्ष, हिंदी विभाग त्रिपुरा विश्वविद्यालय
6. डॉ. शुभ्रांशु धाम, त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, धर्मानगरसे हुई वार्ता पर आधारित

- डॉ. काली चरण झा

सहायक प्राध्यापक

हिंदी विभाग

त्रिपुरा विश्वविद्यालय

मोबाईल नं. 9436928223

ईमेल- jhakalicharan44@gmail.com

सिक्किम में हिंदी शिक्षण

-छुकी लेप्चा

भारत का बाईसवाँ राज्य सिक्किम अपनी प्राकृतिक सुंदरता के लिए जाना जाता है। न केवल प्राकृतिक सुन्दरता अपितु यहाँ के विविध सांस्कृतिक एवं धार्मिक पक्ष भी लोगों को आकर्षित करते हैं। कंचनजंघा की गोद में बसा ये राज्य शांतिप्रिय और पयर्टकों का पसंदीदा स्थान भी है।

राज्य की तीन प्रमुख जातियाँ लेप्चा, भूटिया, नेपाली है जो कई सदियों से एक साथ आपसी सद्‌भावना लेकर जीवन यापन करती हैं। इनकी अपनी-अपनी लिपियाँ है। लेप्चा की लिपि-मेन सोलोग है, भूटिया की थूमिसामबोटा है, लिम्बू की याकथुङ/श्रीजंगा है। इन तीनों भाषाओं को राजकीय भाषा की मान्यता प्राप्त है। प्रचलित भाषा के रूप में नेपाली भाषा का प्रचलन सबसे ज्यादा है। यहाँ के विद्यालयों में त्रि-फार्मूला का नियम है। विद्यालयों में प्रथम भाषा के रूप में अंग्रेजी भाषा पढ़ाई जाती है जो कि अनिवार्य भाषा है। दूसरी भाषा के रूप में स्थानीय भाषाएँ (वर्नाकुलर) के रूप में नेपाली, लेप्चा, लिम्बू, भूटिया, शेरपा, गुरुंग, मंगर, तामाङ, मुखिया, सुनुवार इत्यादि पढ़ाई जाती है। सभी उपजातियों की अपनी-अपनी लिपि है जैसे- गुरुंग- खेमा, तामाङ- तामिक, मुखिया- कोइंचब्रेसे, नेवार- रंजना, शेरपा- सामबोटा, मंगर- अंखारिका, राई- बांतवा इत्यादि।

हिंदी शिक्षण की दृष्टिकोण से देखें तो जनजाति बाहुल्य राज्य में इसका शिक्षण करवाना बहुत कठिन कार्य है। सबकी अपनी मातृभाषाएँ है। हिंदी में रुचि रखने वाले विद्यार्थी ही हिंदी सीखने के इच्छुक हैं। देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली समान्तर की भाषा नेपाली है। यहाँ हर जगह नेपाली भाषा का प्रयोग होता है, इस कारण नेपाली भाषा विषय लेकर पढ़ने वालों की संख्या सबसे अधिक है। हिंदी और नेपाली में तत्सम शब्द जो संस्कृत से आए हैं, वे लगभग एक ही हैं किंतु नेपाली में हर वाक्य में विभक्ति जुड़ती है, हिंदी में अलग- अलग लिखा जाता है। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं-

नेपाली में-

1. आमाले मलाई खाना दिनुभयो।
2. मेरो किताब भाईलाई दिएँ
3. जनता राजमा जनतै राजा।
4. विचारकों धनी हुनुपर्छ।

हिंदी में-

1. माँ ने मुझे खाना दिया।
2. मेरी किताब भाई को दिया।
3. जनता के राज्य में जनता ही राजा।
4. विचार का धनी होना चाहिए।

बहुत सारे ऐसे शब्द हैं जो नेपाली में दूसरा अर्थ है और हिंदी में अलग अर्थ देते हैं। जैसे-

'सिंघाड़ा' नेपाली में 'समोसा'- को कहते हैं। हिंदी में इसका अर्थ पानी में पाया जाने वाला फल 'मेवा' का अर्थ हिंदी में सुखाया फल है, जबकि नेपाली में 'पपीता' को कहते हैं।

राज्य के कई स्कूलों में देवनागरी जानने वाले को ही हिंदी पढ़ाना होता है, जिससे बच्चों की विषय की अवधारणा स्पष्ट नहीं होती। देवनागरी जानने वाले अध्यापक वे होते हैं जो संस्कृत एवं नेपाली पढ़े होते हैं। ज्यादातर विद्यालयों में जो अध्यापक संस्कृत, नेपाली पढ़े हुए होते हैं वही अध्यापक हिंदी पढ़ाते हैं। हिंदी शिक्षण में सबसे बड़ी समस्या हिंदी व्याकरण को लेकर होती है। हिंदी व्याकरण में 'लिंग' व्यवस्था में सब उलझ जाते हैं। अनेक लोग पूछते हैं- 'गाड़ी' स्त्रीलिंग है तो 'ट्रक' पुल्लिंग कैसे हो जाता है? पुलिस स्त्रीलिंग क्यों है? जबकि वह तो पुरुष है। वाक्य संरचना के आधार पर लिंग का निर्धारण होता है, ऐसा कहने के बावजूद भी लगातार इस विषय पर बहस चलती रही है।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबंध 'शिरीष के फूल'[1] में शिरीष के फूल मैदानी क्षेत्रों में पाए जाने के कारण बच्चे को 'शिरीष के फूल' समझाने में दिक्कत आती है। 'अशोक का

पेड़' तो समझ आ जाता है, किन्तु पलाश, पुन्नाग, आरग्वध (अमलतास) जैसे पेड़ तो मैदानी क्षेत्रों में पाए जाते हैं, ज्यादातर वन्य संपदा को यहाँ के विद्यार्थी समझ नहीं पाते हैं। कई बार पुस्तकों में चित्र भी स्पष्ट नहीं होते जिससे विषय की जानकारी विद्यार्थियों तक पहुँचाने में दिक्कत आती है।

हिंदी अध्यापकों की कमी होने के कारण इस विषय का अध्ययन-अध्यापन में काफी दिक्कतों का सामना करना पड़ रहा है। प्राथमिक शिक्षक, स्नातक शिक्षक हिंदी पढ़ाने के लिए न के बराबर हैं। प्राथमिक करना पड़ रहा है। प्राथमिक शिक्षक पर जो शिक्षक नेपाली पढ़ाते हैं, वहीं हिंदी पढ़ाते हैं, इसलिए दोनों का उच्चारण एक से करते हैं। जैसे बड़ी 'ई' छोटी 'इ'- को नेपाली के उच्चारण बड़ाईकर छोटाइकर करके सिखाया जाता है। 'क' से कबूतर 'ख' से खरगोश ये हिंदी में सिखाई जाती है तो नेपाली में 'क' से कलम 'ख' से खरायो सिखाया जाता है। ऐसे बहुत से शब्द है जो नेपाली में अलग तरीके से लिखे जाते हैं और हिंदी में दूसरी तरीके से जैसे नेपाली में 'त्रिशुल' में छोटी' ु 'लिखा जाता है तो वही शब्द हिंदी में' ू 'लगाकर लिखा जाता है 'त्रिशूल'। हिंदी में 'राष्ट्रीय' बड़ी 'ी' लगाकर लिखा जाता है, वही नेपाली में ' ि ' करके लिखा जाता है- 'राष्ट्रिय'। नेपाली में छोटी 'ि' लिखने का कारण इसका व्याकरणिक नियम है। नियमानुसार दो अक्षर के बीच में आने वाले शब्द में ह्रस्व 'इ' लगता है। हिंदी 'चम्मच' लिखते हैं तो नेपाली में 'चमच' लिखा जाता है। हिंदी में 'हाथी' लिखा जाता है तो नेपाली में 'हाती' लिखा जाता है। हिंदी में 'लहसून' लिखा जाता है तो नेपाली में 'लसुन' लिखते हैं। 'शिकंजी' शब्द यहाँ के बच्चों के लिया नया शब्द है। कहते हैं भाषा के कौशलों का विकास करने के लिए वाचन, श्रवण, लेखन का शुद्ध होना आवश्यक है किंतु यहाँ भाषा कौशलों का विकास कर पाना कठिन हो जाता है। शुद्ध उच्चारण से ही शुद्ध लेखन संभव होता है, किंतु यहाँ शुद्धता कहीं लुप्त होती नजर आती है।

हमारे अध्यापकों को प्रशिक्षण की बहुत ज्यादा आवश्यकता है। कई इच्छुक अध्यापकों को प्रशिक्षण नहीं मिल पाता है, इससे भी हिंदी शिक्षण को बढ़ावा नहीं मिल पाता है। हमारे विद्यालयों में हिंदी विषय पढ़े हुए अध्यापक/अध्यापिकाओं की सख्त आवश्यकता है। कई हिंदी अध्यापकों के सेवानिवृत्त के बाद नए अध्यापकों की नियुक्ति जितनी होनी चाहिए थी उतनी नहीं हो पाई है। अध्यापकों की कमी के चलते कई स्कूलों में तो हिंदी की किताब पहुँचती भी नहीं है। अब 2016 से हिंदी को सिक्किम राज्य में पहली कक्षा से पढ़ाया जाने लगा जिससे आने वाले समय में इस विषय में उत्तरोत्तर विकास की संभावनाएँ नजर आती हैं।

हिंदी शिक्षण से जुड़े अध्यापकों को कई प्रकार की समस्याओं को झेलना पड़ता है। यदि अध्यापक कक्षा में मजाक का माहौल बनाते हुए पढ़ाता है तो विद्यार्थी तुरंत सिर पर चढ़ जाते हैं और ऊँट- पटांग सवाल करते हैं। ऐसा करके वे अध्यापक के लिए सिर दर्द बन जाते हैं। यदि अध्यापक सख्ती दिखाता है तो बच्चे फिर इस विषय को न पढ़ने और रुचिकर न होने का आरोप लगाते हैं। एक हिंदी अध्यापक की स्थिति एक मझधार में फँसे नाव की तरह हो जाती है, जिसे अपनी मंजिल दिखाई नहीं देती।

अहिंदी भाषी राज्यों में हिंदी पढ़ाना वास्तव में टेढ़ी खीर है। खासतौर पर मुहावरों का वाक्यों में प्रयोग करना। एक बार कक्षा में एक विद्यार्थी ने अध्यापिका से पूछा- 'आप इतनी बोरिंग कविताओं को कैसे पढ़ लेती हैं?' अध्यापिका ने जवाब दिया बंदर क्या जाने अदरक का स्वाद। बच्चे ने तुरंत उत्तर दिया मुझे अदुवा (अदरक) पसंद नहीं है। ऐसा जवाब पाकर अध्यापिका सोच में पड़ गई कि मुहावरों को किस तरह समझाया जाए। एक और मुहावरा है- तुम तो ईद का चाँद हो गए, यानी कभी- कभी दिखाई देने वाले। दूसरा मुहावरा है- तुम तो गूलर के फूल हो गए। हिंदी में गुलर का फूल एक सामान्य सी बात है जबकि नेपाली में इसका अर्थ गलत माना जाता है। इस तरह शब्द, वाक्य संरचना के चलते कई भिन्नताएँ और समानताएँ दोनों भाषाओं में दिखाई देती हैं। 'टोकशिंग' देना नेपाली में सिर पर मारकर एक प्रकार की आवाज निकलने की क्रिया को कहते हैं। इसके लिए हिंदी में शब्द ही नहीं है। नेपाली में ऐसे बहुत से शब्द है जिसका रूपांतरण न हिंदी में हो सकता है और न ही अँग्रेजी में। इस भाषा की अपनी सही विशिष्टता उसे अन्य भाषाओं से अलग करती है। इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार है-

1. **तरल्यांग तुरलुंग** इसका अर्थ है- फ्रेंच बीन जैसे सब्जियों का अच्छी तरह से फलना, फूलना।
2. **इयास्स देखियो**- इसका अर्थ है केही दिखा हुआ के अर्थ में प्रयोग होता है।
3. **गाडांग- गुडुंग**- यस शब्द बादल की गर्जना को दिखाने के लिए प्रयोग होता है।
4. **चुर्लुम्म भयो**- बारिश के चलते बुरी तरह से भीग जाने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।
5. **तुरक्क झोल**- तरल पदार्थ जैसे सूप, दाल, माँगने के लिए इस शब्द का इस्तेमाल होता है।
6. **प्याच्च**- इसका अर्थ है तुरंत जवाब देना। किसी के

कफछ पूछने, कहने पर तपाक से जवाब देने के अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

7. **सुटुक्क भन्यो**– अकेले में रहकर, चुपचाप काम कर लेना, ऐसा काम जो दूसरों की जानकारी में न हो, चुपचाप अकेले कर लेना, इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग होता है।

अन्य राज्यों की तरह हिंदी भाषा का संस्कार यहाँ भी है। आजकल तो स्थिति ये है कि अन्य भाषाओं को गाँव के लोग उतनी आसानी से नहीं अपना रहे, बल्कि हिंदी को बहुत अच्छी तरह से अपना रहे हैं। हिंदी को लोकप्रिय बनाने में सबसे बड़ी भूमिका 'मीडिया' की है। आजकल गाँवों में टी.वी. समाचार, सीरियल, कार्टून, कौन बनेगा करोड़पति जैसे कार्यक्रमों ने इस भाषा के पराएपन को दूर कर दिया है। यहाँ सब हिंदी समझते हैं, बोलते हैं किंतु लिखने में कमजोर है। सब इस भाषा को बड़ी सहजता और सरसता के साथ अपना रहे हैं। हर पार्टी, हर समारोह में हिंदी गीतों की ही धूम रहती है। भाषा एक नदी है जो हमेशा प्रवाहित होती रहती है। हिंदी एक महानदी है जिसमें छोटी- छोटी नदी आकर मिल जाती है। ठीक यही स्थिति आज सिक्किम में हिंदी की है। सभी उपभाषाओं को जोड़कर हिंदी ने अपना स्वरूप विकसित किया है। कई नेपाली साहित्यकारों ने हिंदी को इस तरह अंगीकार किया है। अपनी मातृभाषा से बढ़कर हिंदी प्रेम को आगे बढ़ाया है। बहुत से लेखकों साहित्यकारों का कहना है कि उन्हें अपनी भावनाएँ हिंदी भाषा में अभिव्यक्त करते हुए गर्व का अनुभव होता है। इस भाषा को अपनाते हुए कहीं कोई रूकावट नहीं आती, अभिव्यक्ति देने में सहजता रहती है। इसमें मिठास है, शब्द भंडार की कमी नहीं। गजल, कविता, गीत, छंद, उर्दू मिश्रित शब्दावली के चलते भाषा का आकर्षण हमेशा से रहा है। उतनी समृद्ध अन्य भाषा नहीं हैं। हमारे राज्य में आज बहुत से साहित्यकार हिंदी में अपना योगदान दे रहे हैं। उन लेखकों के नाम इस प्रकार हैं- रवि रोदन, गोपाल दाहाल, मणिका शर्मा, भक्ति शर्मा, रूपा तामाङ, तुलसी घिमिरे, सुधा एम. राई, उषा शर्मा, कविता छेत्री, प्रवीण खालिंग, पी.एम. खनाल, विष्णु नियोपानी इत्यादि। प्रवीण खालिंग जी एक अखबार के संपादक भी हैं। गान्तोक से निकलने वाले दैनिक अखबार 'अनुगामिनी' के संपादन, निष्पादन का कार्य भी देखते हैं। विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों में शामिल होकर हिंदी के विकास में अपना योगदान दिया है। सिक्किम से ही निकलने वाली समाचार पत्रिकाओं में सबसे पुराना 'जमाना' है। यह सिक्किम का सर्वप्रथम हिंदी साप्ताहिक समाचार-पत्र है। यह 1987ई. से प्रकाशित हो रहा है। आजकल इसका नया नामकरण हुआ है यह समाचार-पत्र 'जमाना सदाबहार' के रूप से निकलता है। इसका नया नामकरण 2000ई. में हुआ था। इसके सम्पादक श्रीमती संतोष निराश हैं। इस तरह हिंदी का स्वरूप रूप में फलता- फूलता रहा है।

आयरिश कवि अटोमस डेविस ने कहा था- 'कोई राष्ट्रभाषा को छोड़कर राष्ट्र नहीं कहला सकता। मातृभाषा की रक्षा सीमाओं की रक्षा से भी ज्यादा जरूरी है, क्योंकि वह विदेशी आक्रमण को रोकने में पर्वत और नदियों से भी अधिक समर्थ है।'

भाषाएँ गले का हार हैं, तमिल मराठी हो सिंधी।
अंग्रेजी लिपिस्टिक होने की, हिंदी माँ भारती की बिंदी।

इस प्रकार से कहा जा सकता है कि सिक्किम में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल है।

संदर्भ–

1. आरोह भाग 2 (पृ. संख्या 144- 145))
आलेख अध्यापन अनुभव एवं पाठन पर आधारित है।
अध्यापकों के साक्षात्कार, वार्तालाप पर आधारित है।

त्रिपुरा में कला और हिंदी

– डॉ. अमिता मिश्र

त्रिपुरा, पूर्वोत्तर भारत का छोटा और मनोरम पहाड़ी प्रदेश है। यह प्रदेश घने जंगलों, पहाड़ों, नदियों, जलप्रपातों से आच्छादित है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यहाँ की जलवायु अत्यंत लाभप्रद है। त्रिपुरा महान संगीतकार देववर्मन की जन्मभूमि है। ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार त्रिपुरा नामक जनजाति के नाम पर इस राज्य का नाम त्रिपुरा रखा गया।

त्रिपुरा के पत्रकार ज्योति प्रसाद सैकिया ने पहली बार पूर्वोत्तर के इन सात राज्यों को 'सात बहनों' के नाम से पुकारा था। इंद्रधनुष के सात रंगों का समावेश इन्हीं सात राज्यों में है।

यह भारत का तीसरा सबसे छोटा राज्य है जैसा कि महाभारत में उल्लेख है कि त्रिपुरा का प्राचीन नाम 'किराट देश' है। यह एक कृषि प्रधान राज्य है। इसकी आधी से अधिक आबादी कृषि पर और उससे जुड़े संसाधनों पर आश्रित है। काफी लंबे समय तक यहाँ पर माणिक्य वंश का शासन रहा तथा बाद में अंग्रेजों के समय में यह एक स्वतंत्र रियासत बना जो 1949ई. में भारत से मिल गया। यहाँ पर मौसमी बारिश काफी अधिक मात्रा में होती है, जिसकी वजह से इस प्रदेश में वन अधिक हैं। पहाड़ी इलाकों और वनों के कारण केवल 27% भूमि ही खेती के लिए उपलब्ध है। चावल यहाँ की मुख्य फसल है।

रबड़ और चाय इस राज्य की नकदी फसलें हैं। देश में प्राकृतिक रबर के उत्पादन में त्रिपुरा का केरल के बाद दूसरा स्थान है।

त्रिपुरा की राजधानी अगरतला 'होआरा' नदी के तट पर बसा है इसे 1760ई. में त्रिपुरा राजघराने की राजधानी बनाया गया था। शहर के अधिकांश पुराने निर्माण जैसे- महल, सड़कें, तालाब इत्यादि महाराजा कृष्णकिशोर माणिक्य ने करवाए थे। यहाँ का 'उज्जयन्त महल' भारतीय- अरबी स्थापत्य कला का अद्‌भुत नमूना है। इसके विशालकाय गुम्बद और नक्काशीदार दरवाज़े मन मोह लेते हैं। महल में हाथीदाँत से बना विख्यात राज सिंहासन भी है। अगरतला से बांग्लादेश बेहद नजदीक है इसकी दूरी बमुश्किल 2-3 किमी. ही होगी। दोनों ओर के लोगों की भाषा और रहन-सहन काफी मिलते-जुलते हैं। शाम को 5 बजे भारतीय सीमा सुरक्षा बल तथा बांग्लादेश राइफल्स के जवान अपने-अपने राष्ट्रध्वज उतारते हैं जिसे देखने के लिए बड़ी संख्या में लोग यहाँ पहुँचते हैं।

त्रिपुरा राज्य अपने हस्तशिल्प में विशेष रूप से हाथ से बुने हुए सूती कपड़े, लकड़ी की नक्काशी और बाँस के उत्पादों के लिए जाना जाता है। साल, गर्जन और सागौन की उच्च गुणवत्ता वाली इमारती लकड़ी त्रिपुरा के जंगलों में बहुतायत से पाई जाती है। यहाँ प्राकृतिक गैस के भंडार भी हैं। त्रिपुरा में फैली अनगिनत झीलें और हरियाली इसे मनमोहक बनाती हैं। कुल मिलाकर त्रिपुरा राज्य प्राकृतिक सम्पदाओं से भरा हुआ है। लोग कठिन परिश्रम करने वाले हैं।

त्रिपुरा बाँस और बेंत हस्तशिल्प के लिए विख्यात है। बाँस की लकड़ी और बेंत का उपयोग फर्नीचर, बर्तन, हाथ वाले पंखे, चटाई, टोकरियाँ, मूर्तियाँ और आंतरिक सजावट की सामग्री बनाने के लिए किया जाता है।

त्रिपुरा राज्य में हथकरघा सबसे पुराना उद्योग है। त्रिपुरा की जनजातियाँ अपने लिए कपड़े स्वयं बुनती हैं। रिहा और रिसा यहाँ की दो प्रसिद्ध कपड़ा निर्माण सामग्री हैं, जिनसे कपड़े बुने जाते हैं। यह हस्तशिल्प पूरे राज्य में फैला हुआ है। यहाँ बनाई जाने वाली वस्तुओं में चटाइयाँ, झोले, मूरा, फल की टोकरियाँ और फूलदान प्रमुख हैं। यह कलाएँ अगरतला शहर के अलावा कैलासहर, धर्मनगर, खोवाई, सदर, सुआ मोरा तक फैली हैं। त्रिपुरा में बाँस की चटाई का फलता- फूलता उद्योग है। यहाँ पर बाँस की चटाई को मीटर के हिसाब से बेचा जाता है। चटाई की कीमत बाँस के चीरे की बारीकी, चटाई की चौड़ाई, तानों की संख्या और रंग पर निर्भर करती है। इस बाँस की चटाई से अनेक उत्पाद जैसे कि पंखे, लैंपस्टैंड, हैंडबैग तथा अनेक सजावटी वस्तुएँ

बनाई जाती हैं। बाँस से बनती वाली सबसे सरल सजावटी वस्तु वाल- हैंगिग है। चटाई से जो टुकड़े बच जाते हैं उससे फूल की छड़ियाँ बनाई जाती हैं। बाँस से बनी मेज की चटाई सर्वाधिक लोकप्रिय उत्पादों में से एक है। कुछ चटाइयों पर स्थानीय कलाकार तेल चित्र भी बनाते हैं। बाँस के फूलदान, लैंपस्टैंड, मग, पेन्सिल इत्यादि अन्य सामान भी इससे बनाये जाते हैं।

बाँस व बेंत की टोकरियाँ भी यहाँ बुनी जाती हैं। जिनका इस्तेमाल ईंधन की लकड़ी तथा अनाज ढोने के लिए किया जाता है। इसके अलावा और कई प्रकार की टोकरियाँ बनाई जाती हैं जिनका उपयोग भिन्न- भिन्न कार्यों के लिए किया जाता है।

त्रिपुरा की रियांग जनजाति के लोग तंबाकू पीने के लिए एक बड़े हुक्के का प्रयोग करते हैं जो बाँस की नली और मिट्टी से मिलकर बना होता है।

पूर्वोत्तर में अनेक जनजातियाँ निवास करती हैं जिनकी अपनी- अपनी भाषाएँ तथा बोलियाँ हैं। सभी राज्यों में हिंदी का प्रयोग अधिकांश प्रवासी हिंदी भाषियों द्वारा किया जाता है।

सर्वप्रथम 1934ई. में गांधीजी ने हिंदी के उत्थान के लिए इन प्रदेशों में अलख जगाया था जिसकी मशाल निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। 'राजमाला' पुस्तक में इस बात का वर्णन मिलता है कि यहाँ के राजा ने करीब 200 साल पहले हिंदी में कविताएँ लिखीं थी ये राजा धर्मदेव माणिक्य बनारस में रहा करते थे।

त्रिपुरा में जो वर्तमान शिक्षा का माध्यम है उसमें बांग्ला माध्यम से विद्यार्थियों को शिक्षित किया जाता है। बांग्ला और कॉकबरॉक त्रिपुरा की राजभाषा है पर पिछले दो दशकों में हिंदी की स्थिति में गुणात्मक सुधार आया है। सभी गैरसरकारी स्कूलों में हिंदी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। नवोदय विद्यालयों में भी हिंदी पढ़ाई जाती है। कुछ महाविद्यालयों में हिंदी आनर्स और हिंदी पास कोर्स पढ़ाया जाता है।

व्यावसायिक, कारोबारी, रिक्शाचालक, नर्स, कुलियों, मजदूरों तथा सेना के मध्य हिंदी का प्रयोग काफी होता है पर अभी भी सरकारी कामकाज अंग्रेजी भाषा में ही होता है। यद्यपि 2006ई. में स्थापित त्रिपुरा विश्वविद्यालय के द्वारा हिंदी का लगातार प्रचार-प्रसार हो रहा है। हिंदी को लगातार यहाँ बढ़ावा मिल रहा है पूर्वोत्तर राज्य के लेखक प्रचलित लोक कथाओं, लोकगीतों का हिंदी अनुवाद कर रहे हैं जिससे यहाँ का साहित्य समस्त देशवासियों तक पहुँच रहा है। देवनागरी लिपि में लिखने की प्रवृत्ति का लगातार संवर्धन हो रहा है। आजकल हिंदी, बाज़ार और नौकरियों की भाषा हो गई है। अत: इस क्षेत्र में भी हिंदी लेखन बढ़ रहा है। त्रिपुरा में रमेन्द्र पाल, डॉ. मिलन रानी जमातियाँ, डॉ. विनोद कुमार प्रमुख कार्य कर रहे हैं। हिंदी का वर्चस्व इन रचनाकारों के कारण लगातार बढ़ रहा है। साथ ही स्वैच्छिक हिंदी संस्थानों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है।

त्रिपुरा राज्य में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा ने 'त्रिपुरा राष्ट्रभाषा विचार समिति' की स्थापना की जिसका मुख्यालय धर्म नगर रखा गया। त्रिपुरा में संचालित स्वैच्छिक हिंदी संस्था के लगभग दस केंद्र संचालित हैं, जहाँ प्रारंभिक स्तर पर हिंदी पढ़ाई जाती है।

त्रिपुरा राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अगरतला स्वैच्छिक संस्था है आज इस प्रदेश में हजारों की संख्या में युवा हिंदी पढ़ रहे हैं। यहाँ हिंदी को समझने वाले काफी लोग मिलते हैं उसकी बनिस्बत बोलने वालों की संख्या कम है जिसे हिंदी के वर्तमान कार्यों द्वारा निरन्तर पूरा किया जा रहा है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में यहाँ आने वाले व्यापारियों का भी योगदान रहा है। वे जब यहाँ व्यापार के लिए आए तो अपने साथ अपनी भाषा भी लाए मारवाड़ी इनमें मुख्य रहे हैं। हिंदी को लोक से जोड़ने में हिंदी फिल्मों, गानों, दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के योगदान को भी भुलाया नहीं जा सकता। यहाँ के लोग हिंदी फिल्मों को खूब खुशी- खुशी देखते हैं। इसने लोगों को बोलचाल की हिंदी सिखाई।

साथ ही सेना तथा ओएनजीसी द्वारा के कराए जा रहे कार्यक्रमों द्वारा भी हिंदी का प्रचार होता रहा है इनके द्वारा आयोजित की जाने वाली प्रतियोगिताओं में यहाँ के बच्चे बेहद दिलचस्पी से भाग लेते हैं। वर्तमान समय में हिंदी का परिवार विस्तृत हो रहा है।

आदिवासी साहित्य में स्त्री का स्थान किसी भी स्तर पर पुरुष से कम नहीं पाया जाता है। इनका मौखिक साहित्य आदिवासी मिथक, किवदंतियों व लोकोक्तियों में मिलता है।

कवयित्री ' करैरी मॉम चौधरी' अपनी कविता 'आत्मा की चीख' में लिखती हैं-

समय आ गया है कि छेड़े एक नई जंग
आदमी को चाहिए
खोजना एक वरदायी गगन
बदलनी होगी प्रतिरोध की भाषा

साहित्य में निरन्तर बदलाव की बयार देखी जा सकती है। आगामी समय में इसे और उन्नत बनाया जा सकता है।

पूर्वोत्तर की विभिन्न जनजातियों में एकात्मकता का

भाव जगाने के उनकी धार्मिक मान्यताओं प्राचीन संस्कृति, भाषा साहित्य अपनी वेशभूषा के प्रति अनुराग को बनाए रखने के लिए 'जनजाति फेथ एँड कल्चर प्रॉडक्शन फोरम' नामक संस्था काम करती है।

आदिवासियों की ईमानदारी, उन्मुक्तता, सच्चाई, सह-अस्तित्व की भावना, साहस, जुझारूपन और लोकतांत्रिक समाज के प्रति उनका समर्पण साफ झलकता है संगीत और नृत्य त्रिपुरा राज्य की संस्कृति के महत्त्वपूर्ण घटक हैं। प्रत्येक समुदाय के पास सदियों, धार्मिक अवसरों तथा अन्य उत्सवों के दौरान आयोजित होने वाले गीतों और नृत्यों की अपनी पहचान है। राज्य की एक बड़ी जनजाति रियांग अपने 'होजागिरी' नृत्य के लिए प्रसिद्ध है। यह नृत्य मिट्टी के घड़े पर संतुलित ढंग से युवा लड़कियों द्वारा किया जाता है। आदिवासी समुदाय अपनी हर खुशी को नृत्य उत्सव के द्वारा ही व्यक्त करता है।

इनके नृत्यों में प्रमुख बिझू नृत्य, बंगाला नृत्य, हक नृत्य, सँगवाई नृत्य और ओवा नृत्य हैं। ऐसे पारम्परिक संगीत के साथ-साथ मुख्य धारा के भारतीय शास्त्रीय संगीत और रवींद्र संगीत का भी अभ्यास किया जाता है। त्रिपुरा का संगीत वाद्ययंत्र जैसे- सुमुई, जो एक प्रकार की बाँसुरी होती है दूसरा 'रवंग' जो एक तरह का ड्रम होता है प्रमुख हैं। इसके अलावा यहाँ के वाद्ययंत्रों में तारा आधारित 'सांरिडा' और 'चोंगपाएँग' भी प्रमुख है। यहाँ के लोगों का 'गरिया' नृत्य एक प्रकार का धार्मिक नृत्य माना जाता है। रियांग समुदाय के लोग अपने 'होजगिरि' नृत्य के लिए प्रसिद्ध हैं साथ ही त्रिपुरी समुदाय का लिबांग नृत्य, चारु समुदाय का बिझू नृत्य, गारो समुदाय का वागला नृत्य, कुकी समुदाय का हाई हक नृत्य शामिल है।

इन नृत्यों में प्रमुख बिझू नृत्य, बंगाला नृत्य, हक नृत्य, संगराई नृत्य और ओवा नृत्य हैं- ये नृत्य त्योहारों और हँसी-खुशी के मौके पर किए जाते हैं। ऐसे पारंपरिक संगीत के साथ-साथ मुख्य धारा के भारतीय शास्त्रीय संगीत और रवींद्र संगीत का भी अभ्यास किया जाता है।

पहनावे में पुरुषों के लिए पारंपरिक पोशाक एक तौलिया होता है जिसे 'रिकतुगाचा' के रूप में भी जानते हैं। कुबे एक प्रकार की शर्ट होती है। त्रिपुरा में पुरुष कुबे के साथ रिकतुगाचा पहनते हैं। गर्मी के दौरान पुरुष गर्मी से बचने के लिए सिर पर पगड़ी पहनते हैं। महिलाएँ कमर में एक बड़ा कपड़ा पहनती हैं। जिसे घुटनों तक लपेटे रहती हैं इस कपड़े पर सुंदर हस्तकला की कढ़ाई होती है जिसे 'खाग्लू' कहा जाता है। गले में सिक्के और मोतियों से बने हार महिलाएँ पहनती हैं। राजधानी अगरतला में विभिन्न देवी- देवताओं को समर्पित अनेक मंदिर और देवस्थल हैं। दुर्गाबारी, काली बारी, जगन्नाथ बारी, शिव गली मंदिर इस बात को साक्ष्य हैं कि त्रिपुरा राज्य की संस्कृति में राजाओं का योगदान रहा है। त्रिपुरा की प्राचीन राजधानी उदयपुर में भी अनेक मंदिर हैं। मंदिरों की अधिकता के कारण इसे मन्दिरों का नगर भी कहा जाता है।

यह राज्य पत्थर की नक्काशी और मूर्तियों के लिए भी अत्यंत प्रसिद्ध है। नीरमहल इस राज्य का सांस्कृतिक जलमहल है इन मूर्तियों में आदिवासी समुदायों की झलक है। प्राकृतिक सौंदर्य में खूबसूरती बिखेरती डमबोर झील बेहद लोकप्रिय है यह झील कई प्रवासी पक्षियों का अस्थायी घर भी बनती है।

सन्दर्भ ग्रंथ

1. आदिवासी संस्कृति और साहित्य- सत्येंद्र सिंह
2. पूर्वोत्तर सृजन 'मिथक और लोक कथाएँ'- संपादन संकलन : रमणिका गुप्ता
3. भारत के आदिवासी- प्रो.मधुसूदन त्रिपाठी
4. आदिवासी विमर्श- केंद्रीय हिंदी निदेशालय
5. पूर्वोत्तर हिंदी संवाद
6. राजभाषा भारती, जनवरी- मार्च 2016

नाम- डॉ. अमिता मिश्र
लक्ष्मीबाई कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय

मणिपुर में हिंदी का परिदृश्य

-डॉ. आर. के. मोबी सिंह

मणिपुर में हिंदी की वर्तमान स्थिति को जानने-समझने के लिए यहाँ के विद्यालयों, महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालय में हिंदी अध्ययन- अध्यापन की स्थिति का पर्यवेक्षण करना जरूरी है। यहाँ के कानन देवी-विद्यालय, आर.के. सनातोम्बी विद्यालय, सैनिक स्कूल, केन्द्रीय विद्यालय जैसे सी.बी. एस. ई. से सम्बद्ध विद्यालयों में से सिर्फ केन्द्रीय विद्यालय ही एक मात्र ऐसा स्कूल है जिसमें दसवीं कक्षा तक हिंदी विषय का अध्ययन करना अनिवार्य है। जबकि अन्य सी.बी.एस.ई. के स्कूलों में सिर्फ आठवीं कक्षा तक ही हिंदी पढ़ाई जाती है। मणिपुर के सरकारी एवं निजी स्कूलों में भी आठवीं कक्षा तक ही हिंदी का अनिवार्य शिक्षण होता है और आगे की कक्षाओं में यह अनिवार्यता समाप्त हो जाती है। मणिपुर के विद्यालयों में कक्षा आठ के बाद हिंदी शिक्षण की अनिवार्यता का समाप्त होना यहाँ के छात्र-छात्राओं में हिंदी के प्रति अरुचि का कारण बनता है। क्योंकि छात्रों के मन में यह बात घर कर जाती है कि हिंदी सिर्फ आठवीं कक्षा तक ही पढ़नी है आगे नहीं। जिससे कुछेक छात्रों को छोड़कर शेष छात्र किसी तरह आठवीं की परीक्षा पास करके हिंदी से छुटकारा पाने की कोशिश करते हैं। बच्चों की यही मानसिकता हिंदी भाषा के प्रति अरुचि पैदा करती है जो एक सोचनीय विषय है। बच्चों के साथ ही अविभावक भी बच्चों में हिंदी के अध्ययन के प्रति रुचि पैदा करने में योगदान नहीं देते। इस कारण आठवीं कक्षा तक के छात्रों में हिंदी ही एक ऐसा विषय रहता है जिसमें छात्र-छात्राएँ बहुत कम अंक लेकर उत्तीर्ण होते हैं या कुछ छात्र अनुत्तीर्ण भी हो जाते हैं। आठवीं कक्षा तक, जहाँ हम हिंदी को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाते हैं अगर इसकी यह स्थिति है तो आगे की कक्षाओं- नवीं, दसवीं, ग्यारहवीं और बारहवीं में जहाँ हिंदी वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है उसकी क्या दशा होगी, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। टी.जी. हायर सेकेन्डरी स्कूल, जॉनोस्तोन हायर सैकेन्डरी स्कूल और सी.सी. हायर सैकेन्डरी जैसे स्कूलों में बारहवीं कक्षा तक हिंदी वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है। लेकिन इन स्कूलों में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या न के बराबर रहती है। काउन्सिल ऑफ हायर सेकेन्डरी एजूकेशन, मणिपुर की एक रिपोर्ट के अनुसार विगत वर्ष 2017 के सत्र में बारहवीं परीक्षा के परिणाम में सिर्फ 16 छात्र-छात्राओं ने हिंदी की परीक्षा दी और उनमें से 12 छात्र-छात्राओं ने ही परीक्षा उत्तीर्ण की।

महाविद्यालयों के स्तर पर डी.एम. कॉलेज ऑफ आर्ट्स, जी.पी.वूमेन कॉलेज, प्रेसीडेन्सी कॉलेज जैसे सरकारी महाविद्यालयों के साथ लिबरेल कॉलेज, एस.के. वूमेन कॉलेज जैसे निजी कॉलेजों में बी.ए. ऑनर्स (हिंदी) या बी. ए. जनरल (हिंदी) पाठयक्रम में अध्ययन- अध्यापन की सुविधाएँ हैं लेकिन पिछले कुछ सालों की तुलना में आजकल इन कॉलेजों में हिंदी अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या दयनीय है। डी.एम. कॉलेज ऑफ आर्टस जिसे मणिपुर का प्रीमियर कॉलेज माना जाता है वहाँ पर पिछले कुछ वर्षों में बी.ए. पाठयक्रम में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या निरन्तर घटती जा रही है।

कोई भी बी.ए., बी.ए.सी. उत्तीर्ण छात्र राष्ट्रभाषा महाविद्यालय, वर्धा जैसी संस्थाओं से 'हिंदी रत्न' परीक्षा उत्तीर्ण करके मणिपुर विश्वविद्यालय में एम.ए. हिंदी पाठ्यक्रम में प्रवेश ले सकते हैं लेकिन महाविद्यालयों में इस तरह का कोई प्रावधान नहीं है। यहाँ पर हिंदी विषय के साथ इन्टरमीडियट की परीक्षा उत्तीर्ण छात्र ही बी.ए. ऑनर्स में हिंदी ले सकते हैं। इस कारण भी महाविद्यालयों में हिंदी पढ़ने वाले छात्रों की संख्या कम होती जा रही है। दूसरी ओर मणिपुर विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के एम.ए. पाठयक्रम में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या भी दिनोंदिन घटती जा रही है। यहाँ पर महाविद्यालयों से बी.ए. ऑनर्स (हिंदी) उत्तीर्ण दो या तीन छात्र ही प्रवेश लेते हैं। शेष छात्र 'हिंदी रत्न' उत्तीर्ण करके एम.ए. हिंदी पाठ्यक्रम में प्रवेश करते हैं। फिर भी वहाँ पर एम.ए. हिंदी पाठ्यक्रम के लिए निर्धारित आधी

से भी कम सीटें भर पाती हैं।

मणिपुर में हिंदी की अच्छी प्रगति हो इसका बड़ा दायित्व यहाँ के हिंदी प्रचारकों एवं अध्यापकों पर निर्भर है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मणिपुर में राजकीय स्तर पर हिंदी प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले गए हैं। राजकीय हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान एवं राजकीय हिंदी शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालय ऐसी संस्थाएँ हैं जिनमें हिंदी माध्यम से अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता है ताकि हिंदी की विकास गति में तीव्रता आए और हिंदी के प्रति लोगों में अत्यधिक रुचि उत्पन्न हो। फिर भी हिंदी टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज इम्फाल की स्थिति अच्छी नहीं हैं। यहाँ पर प्री- सर्विस एवं इन- सर्विस दोनों को मिलाकर हर वर्ष में 5. सीटें निर्धारित हैं। जहाँ पर नामांकन करने वाले स्थानीय छात्रों की संख्या प्रतिवर्ष घट रही हैं। जबकि बाहर से आने वाले हिंदीभाषी छात्रों की संख्या बढ़ रही हैं। साथ ही राजकीय हिंदी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान की स्थिति भी कुछ इसी तरह की है जहाँ वर्तमान वर्ष अर्थात् 2017 की प्रवेश परीक्षा में निर्धारित सीटें भी नहीं भर पाई हैं।

यहाँ पर संस्थागत स्तर पर भी हिंदी का प्रचार-प्रसार हो रहा है। मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल की स्थापना 1950ई. में हुई। वर्तमान समय में समिति के अन्तर्गत 65 परीक्षा केन्द्र, 22 शिक्षण केन्द्र, 24 विद्यालय तथा 21 महाविद्यालय संचालित हैं। इस संस्था का दावा है कि अब तक इनके द्वारा लाखों की संख्या में मणिपुर के लोग हिंदी सीख चुके हैं, पर आजकल यहाँ भी छात्रों की स्थिति बहुत संतोषजनक नहीं हैं।

3835 मणिपुर राज्य की एकमात्र स्वैच्छिक हिंदी संस्था मणिपुर हिंदी परिषद् की स्थापना 1953ई. में हुई। मणिपुर हिंदी परिषद् की स्थिति भी इस दृष्टि से संतोषजनक नहीं है। वहाँ पर भी प्रत्येक वर्ष पढ़ने वाले छात्रों की संख्या घट रही है।

आज मणिपुर में हिंदी पढ़ने वालों की संख्या दिन-ब-दिन कम होती जा रही है। यह एक विचारणीय विषय है। हम हिंदी क्यों पढ़ते हैं? क्योंकि हिंदी हमारी राजभाषा है या हिंदी हमारी सम्पर्क भाषा है। यह मात्र कहने और सुनने की बात है, पर इसके पीछे एक अलग ही कारण है कि हम हिंदी इसलिए पढ़ते हैं क्योंकि इससे हमारे भविष्य की सम्भावनाएँ जुड़ी हैं। हम इसलिए हिंदी पढ़ते हैं ताकि बाद में कुछ लाभ मिले और हिंदी सीखकर हमें नौकरी मिले, वह हमारी जीविका का साधन बने। लेकिन आजकल मणिपुर में हिंदी पढ़कर भविष्य की सम्भावनाएँ कम दिखाई दे रही हैं। यहाँ हिंदी पढ़कर रोज़गार के अवसर न के बराबर हैं। जो थोड़े बहुत छात्र-छात्राएँ हिंदी भाषा और साहित्य में उच्च अध्ययन करके निकलते हैं उनके लिए पिछले कई वर्षों से हिंदी शिक्षक के रूप में नियुक्त होकर शिक्षण करने की सम्भावनाएँ लगभग समाप्त प्राय हैं। मणिपुर के स्कूलों, कॉलेजों व पर्यटन क्षेत्र में हिंदी को लेकर रोज़गार की सम्भावनाएँ प्रायः नगण्य है। मणिपुर पब्लिक सर्विस कमीशन की ओर से वर्ष 2009ई. में हिंदी का एक नियमित प्रोफेसर नियुक्त किया गया। तब से आजतक हिंदी में किसी पद की नियुक्ति नहीं हुई है। आकाशवाणी इम्फाल में एक नियमित अनुवादक पद की नियुक्ति सन् 1998ई. को हुई थी। तब से यहाँ भी आजतक किसी की नियुक्ति नहीं हुई है। वर्ष 2011ई. में 175 हिंदी प्राइमरी टीचरों और 49 हिंदी ग्रेजुएट टीचरों की रेगुलर पोस्ट पर नियुक्ति के बाद आजतक मणिपुर शिक्षा विभाग मौन है। मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति की एक वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष 2010ई. में इस संस्था से 1490 लोगों ने अलग- अलग कक्षाओं में परीक्षा दी और 2011 में परीक्षा देने वालों की संख्या 3835 थी। एक ही साल में 2345 छात्र-छात्राओं की बढ़ोत्तरी का एकमात्र कारण है मणिपुर सरकार की ओर से उस वर्ष कुछ हिंदी अध्यापकों के रिक्त पदों में भर्ती की प्रक्रिया थी।

गत वर्षों में मणिपुर में हिंदी पढ़ने वालों की संख्या कम होने का दूसरा कारण यह भी है कि हिंदी द्वारा अन्य विषयों की बराबरी न कर पाना। मणिपुर में अन्य विषय जैसे अंग्रेजी, गणित, भौतिकी आदि में जो निजी या सरकारी नौकरी की प्राथमिकता है वह हिंदी विषय वालों को नहीं मिलती। मणिपुर के स्कूलों में आठवीं कक्षा तक हिंदी अनिवार्यता होने के कारण अन्य विषयों की तुलना में हिंदी छात्रों की संख्या बहुत ही कम है। जब हिंदी छात्रों की संख्या कम है, तो स्वाभाविक ही हिंदी अध्यापकों की जरूरत भी कम ही होगी। अन्य विषयों के छात्र-छात्राओं की संख्या अधिक होने के कारण उसी विषय से सम्बन्धित अध्यापकों को कहीं-न-कहीं रोज़गार मिल जाता है चाहे वे प्राइवेट स्कूल में हो या प्राइवेट ट्यूशन में। आजकल मणिपुर में कई प्राइवेट कम्पनियाँ खुलने लगी हैं। कई नए-नए फर्म आने लगे हैं। प्राइवेट अस्पतालों में भी अधिक मात्रा में कर्मचारियों की नियुक्ति हो रही है। कई बैंकों में भी कर्मचारियों की भर्ती हो रही है। इन रिक्त पदों के लिए हिंदी बोलने और जानने की माँग भले ही न की गई हो, लेकिन हर प्रतिभागी को अंग्रेजी जानना एवं बोलना अनिवार्य बताया गया है। कहने का अर्थ यह है कि यहाँ हिंदी की तुलना में अंग्रेजी भाषा को अधिक

प्राथमिकता दी जा रही है।

हिंदी हमारे देश की सम्पर्क भाषा है। मणिपुर राज्य राजभाषा प्रयोग के 'ग' क्षेत्र के अन्तर्गत आता है। जिसके कारण यहाँ पर हिंदी पूर्णरूप से सम्पर्क भाषा नहीं बन पाई है। यह भी मणिपुरी निवासियों में हिंदी के प्रति अरुचि उत्पन्न होने का एक मुख्य कारण रहा है। भारत के किसी भी क्षेत्र में दो अलग- अलग अहिंदीवासी हिंदी भाषा के माध्यम से अपनी जरूरतें पूरी करते हैं। हिंदी जानने वाले कोई बंगाली, कोई असमिया, कोई पंजाबी हिंदी भाषा द्वारा अपना काम निकाल लेते हैं। वे सीखी हुई हिंदी का कुछ तो लाभ उठाते हैं। लेकिन यह स्थिति मणिपुर में नहीं है। यहाँ हिंदी जानने वाला कोई मणिपुरी अंग्रेजी में बात करते समय अपने आपको गौरवान्वित महसूस करता है। मणिपुर में आने वाले बाहरी लोग भी यहाँ अंग्रेजी बोलना ही अधिक पसन्द करते हैं जबकि उन्हें पता होता है कि सामने वाले को हिंदी बोलनी आती है और तो और मणिपुर में रहने वाले दो अलग- अलग समुदाय के लोग भी अंग्रेजी भाषा को सम्पर्क भाषा के रूप में प्रयोग करते हैं जबकि वे दोनों हिंदी की अच्छी जानकारी रखते हैं। इस तरह यहाँ पर उनको हिंदी भाषा जानने और न जानने का कोई खास फर्क नहीं पड़ता है।

मणिपुर के स्कूल- कॉलेजों की स्थिति को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मणिपुर में हिंदी का भविष्य संतोषजनक नहीं है। एक तरफ मणिपुर में सरकारी या निजी संस्थाओं में औपचारिक ढंग से हिंदी सीखने वालों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है लेकिन दूसरी तरफ मणिपुर के कई आदमी चाहे बच्चे हो या बूढ़े अपनी- अपनी आवश्यकतानुसार अनौपचारिक तौर से हिंदी सीखने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं और दिन- ब- दिन इन लोगों की संख्या में बढ़ोत्तरी देखने को मिलती है। शिङजमै में स्थिति आर. के. हिंदी कोचिंग सेन्टर में 45 दिनों के एक कोर्स में कम- से-कम 20 से 25 छात्र-छात्राएँ हिंदी बोलचाल सीख रहे हैं तथा पिछले पाँच सालों में यहाँ से लगभग दो हजार से ऊपर छात्र-छात्राएँ हिंदी सीखकर लाभान्वित हो चुके हैं।

मणिपुर में हिंदी की इस दयनीय स्थिति में सुधार के लिए छात्र-छात्राओं में हिंदी के प्रति रुचि बढ़ाने के लिए सरकार को हिंदी अध्ययन-अध्यापन के लिए आधारभूत सुविधाओं का विस्तार करना चाहिए, जिनमें स्कूलों में हिंदी पढ़ाए जाने की व्यवस्था के साथ हिंदी अध्यापकों की पर्याप्त उपलब्धता भी शामिल है। सरकार हिंदी पढ़ने वाले छात्र-छात्राओं को आवश्यक अनुदान दे ताकि उनको प्रोत्साहन मिले। हिंदी भाषा सम्बन्धित भविष्य की सम्भावनाओं को भी भारत सरकार एवं मणिपुर सरकार ध्यान में रखे। उनको हिंदी के रिक्त पदों की पूर्ति पर भी ध्यान देना चाहिए। आवश्यकतानुसार नए- नए हिंदी से सम्बन्धित पदों की भी रचना करना जरूरी है। मणिपुर के कुछ संस्थानों को भारत सरकार से हर वर्ष अनुदान मिलता है। लेकिन यह अनुदान की राशि बहुत कम है, ऊपर से कई कई साल तक एक ही अनुदान राशि मिलती रहती है। मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल को गत तीन वर्षों अर्थात् 2013-14, 2014-15, 2015-16 में एक ही धनराशि (11, 51, 150) प्राप्त हुई। इस महाविद्यालय में कार्यरत एक अध्यापक को 1500 मासिक वेतन मिलता है जो बहुत कम है, इसमें बढ़ोत्तरी होनी चाहिए। साथ ही, सरकार को स्थानीय कानून व्यवस्था के प्रति उचित ध्यान देना चाहिए जिससे अधिक संख्या में बाहरी पर्यटक, व्यापारी या राजनेता लोग मणिपुर में आएँ तथा हिंदी में शिक्षित लोगों को रोज़गार मिले। मणिपुर में कई सालों से सिनेमाघरों में हिंदी फिल्मों एवं सार्वजनिक जगहों पर हिंदी गीतों के प्रसारण पर कई पाबन्दियाँ रखी गई हैं, जिनको धीरे-धीरे समाप्त किया जाना चाहिए।

अन्ततः हिंदी का प्रचार-प्रसार करने में मणिपुर एक उचित राज्य माना जा सकता है। समूह 'ग' क्षेत्र के राज्यों में मणिपुर ऐसा एक मात्र राज्य है जहाँ हिंदी बाज़ारी संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग की जा रही है। मणिपुर के बाहर जाकर बहुत सारे लोग शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तथा वहाँ पर वे हिंदी सीखकर वापस आ रहे हैं। इससे भी हिंदी का प्रसार हो रहा है। मणिपुर में हिंदी का भविष्य उज्ज्वल हो, इसके लिए राज्य सरकार एवं केन्द्र सरकार के द्वारा हिंदी को प्रोत्साहित किए जाने की जरूरत है। साथ ही, यहाँ के निवासियों को राष्ट्र की मुख्यधारा में जुड़ने के लिए हिंदी के प्रति रुचि प्रदर्शित करनी होगी। तभी मणिपुर में हिंदी की दशा में सुधार होगा एवं उसके प्रचार- प्रसार को उचित दिशा प्राप्त होगी।

(C) महिष पत्रिका- मणिपुर हिंदी परिषद, इन्फाल, जून 2017ई.

सिक्किम में हिंदी

- सुवास दीपक

पूर्वोत्तर परिषद् का आठवाँ राज्य सिक्किम सांप्रदायिक एकता एवं सांस्कृतिक सौहार्द का एक जीता-जागता उदाहरण है। 1975ई. तक सिक्किम भारत का एक संरक्षित अधिराज्य था। 16 मई, 1975ई. को सिक्किम भारतीय गणराज्य का 22वाँ राज्य बना। 7096 वर्गमील में फैले और 5,40,857 की आबादी के इस छोटे से राज्य में 12 भाषाओं को सरकारी मान्यता प्राप्त है। अमन-चैन और भाईचारे की मिसाल बन चुके इस राज्य के इतिहास में कभी भाषा या धर्म को लेकर पारस्परिक तनाव उत्पन्न हुआ हो, इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता। पारस्पारिक एकता इसका ज्वलंत उदाहरण है।

विलय से पूर्व सिक्किम के स्कूलों में हिंदी को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता रहा है। 1925ई. तक सिक्किम में केवल एक सरकारी हाई स्कूल था, वह भी राजधानी गंगटोक में। इससे पहले ईसाई मिशनरियों के द्वारा स्थापित स्कूलों में हिंदी के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य धर्म प्रचार होने के बावजूद इस समूचे पर्वतीय क्षेत्र में (उस समय सिक्किम का क्षेत्रफल काफी विस्तृत था, जिसमें आज का समूचा दार्जिलिंग ज़िला शामिल था और उसकी सीमाएँ कूचविहार और पश्चिम में मेची नदी तक फैली हुई थीं) शिक्षा के प्रचार-प्रसार में इन ईसाई मिशनरियों की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक दशकों तक शिक्षा का माध्यम हिंदी रहा। सिक्किम और दार्जिलिंग में स्थापित स्कूलों में बाद में बिहार और उत्तर प्रदेश से हिंदी शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। चूँकि वे स्थानीय भाषाएँ नहीं जानते थे, इसलिए जनजातीय और नेपाली भाषी विद्यार्थियों को वर्णमाला सिखाते ह्रस्व व दीर्घ की मात्रा को 'छोटा इ', 'छोटा उ', 'बड़ा ऊ', श, स ष के उच्चारण को ध्वनि के स्थान पर 'तालव्य', 'मूर्धन्य' और 'दन्त्य' कहकर सिखाते थे जिनका उच्चारण कालान्तर में केवल 'स' (दन्त्य स) ही रह गया। 'न' और 'ण' के उच्चारण के साथ भी ऐसा ही हुआ। केवल 'न' ही रह गया। इसका प्रभाव अद्यावधि देखा जा सकता है।

सिक्किम की आबादी में पिछले डेढ़ सौ वर्षों में नेपालीभाषियों की बहुतायत रही है। नेपाली भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में सिक्किम की राजधानी गंगटोक के इकलौते हाई स्कूल में अंग्रेजी के साथ-साथ हिंदी भी एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती रही। 1925ई. से 1950ई. तक तीसरी भाषा के रूप में। पहली अंग्रेजी, दूसरी नेपाली और तीसरी हिंदी।

भारत में विलय के पूर्व सिक्किम में भारत सरकार के राजनीतिक अधिकारी का कार्यालय था। उसने छठे दशक में एक अध्ययन केन्द्र की स्थापना की थी जिसमें नेपाली, भुटिया, लेप्चा भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में कविता पाठ का आयोजन किया जाता था।

गांधी शताब्दी समारोह (1969 ई.) के अवसर पर तत्कालीन सिक्किम सरकार ने गांधी दर्शन पर अखिल सिक्किम निबन्ध प्रतियोगिता का आयोजन किया था जिसमें नेपाली, भुटिया, लेप्चा, लिम्बू भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में भी निबन्ध आमन्त्रित किए गए थे।

1975ई. से पूर्व प्रकाशन विभाग, भारत सरकार से सिक्किम के पुस्तकालयों और स्कूलों के लिए बड़ी संख्या में विभाग के प्रकाशन, विशेष तौर पर हिंदी साहित्य तथा भारत की स्वतंत्रता के इतिहास सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ व पुस्तकें वितरित की जाती थीं।

1950ई. में सिक्किम भारत-भारत मैत्री संधि हुई जिससे भारत सरकार ने सिक्किम के योजनाबद्ध विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाओं की व्यवस्था की। सिक्किम में तब से शिक्षा विकास की सुदृढ़ नींव रखी गई। दसवीं तक पश्चिम बंगाल बोर्ड के अधीन हिंदी की पढ़ाई की व्यवस्था थी परन्तु सी.बी.एस.ई.(सेंट्रल बोर्ड आफ सेकेंडरी एडुकेशन) प्रणाली लागू होने पर हिंदी विषय को ऐच्छिक बना दिया गया जो अध्यावधि कायम है।

सिक्किम के स्कूलों में बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान,

हरियाणा आदि से आए व्यापारियों, जो स्थायी रूप से सिक्किम में बस गए हैं, के बच्चे स्कूलों में हिंदी विषय लेते ही हैं, अभी धीरे-धीरे जनजातियों और नेपाली भाषी विद्यार्थी भी हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए आगे आ रहे हैं। वर्तमान में सिक्किम के स्कूलों में 8-9 ऐसे अहिंदी भाषी शिक्षक हैं जिन्होंने हिंदी में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की है। सिक्किम केंद्रीय विश्वविद्यालय में हिंदी में उच्च शिक्षा की व्यवस्था है जिसमें अहिंदी भाषी स्थानीय छात्र हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। हिंदी विभाग में प्राध्यापक डॉ. छुकी भुटिया स्थानीय जनजाति समुदाय से हिंदी में पीएच.डी. करने वाली प्रथम महिला हैं।

हिंदी के प्रति झुकाव का एक प्रमुख कारण है नागरीलिपि जिससे यहाँ की शत-प्रतिशत जनता परिचित है। बहुसंख्यक नेपाली भाषी लोगों और हिंदीभाषी लोगों में भाषिक संस्कृति की समानता के कारण बनारस में संस्कृत पढ़ने के लिए जाने वाले विद्यार्थी हिंदी की स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की परीक्षाएँ देते आ रहे हैं। इसके पीछे आर्थिक कारण भी हैं क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों को विभिन्न स्कूलों में जीविका के स्थायी अवसर प्राप्त हो जाते हैं।

1978ई. में सिक्किम का प्रथम महाविद्यालय स्थापित हुआ था जिसमें हिंदी विभाग की स्थापना की गई। उत्तर प्रदेश के लम्बोदर झा महाविद्यालय के प्रथम हिंदी व्याख्याता नियुक्त हुए थे परन्तु 1982-83ई. में विद्यार्थियों की कमी के चलते हिंदी विभाग को समाप्त कर दिया गया था।

1981ई. से स्थापित आकाशवाणी गंगटोक में स्थानीय भाषाओं के साथ-साथ हिंदी में कार्यक्रम प्रस्तुत किए जाते हैं। सिक्किम स्थित केंद्र सरकार के विभागों एवं उपक्रमों में हिंदी अधिकारी नियुक्त हैं।

गंगटोक स्थित शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान के माध्यम से राष्ट्रीय हिंदी संस्थान, आगरा से हिंदी के विषय विशेषज्ञों के द्वारा स्थानीय शिक्षकों को हिंदी शिक्षण के विशेष प्रशिक्षण की प्रति वर्ष व्यवस्था की जाती है। इसके अतिरिक्त प्रति वर्ष 30 से 50 शिक्षकों को आगरा में हिंदी शिक्षण का प्रशिक्षण दिया जाता है।

सिक्किम के सभी 780 स्कूलों में तृतीय कक्षा से आठवीं कक्षा तक अनिवार्य रूप से हिंदी विषय लेना पड़ता है। नवीं कक्षा से ऐच्छिक।

बीसवीं शताब्दी के पाँचवें दशक तक सिक्किम की राजधानी गंगटोक व कुछ अन्य प्रमुख शहरों में स्थानीय नाटक मण्डलियाँ एवं बिहार और उत्तर प्रदेश से आई रामलीला पार्टियाँ धार्मिक नाटकों द्वारा लोगों का मनोरंजन करती थीं। बिहार के सीताशरण दूबे की रामलीला पार्टी ने 1945ई. से 1980ई. तक सिक्किम के विभिन्न स्थानों पर रामलीला के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार किया।

सिक्किम में हिंदी पत्रकारिता

1987ई. से गंगटोक से श्रीमती संतोष निराश (1928-2020 ई.) ने 'जमाना सदाबहार' (हिंदी साप्ताहिक) का चार दशकों तक नियमित प्रकाशन/सम्पादन किया है। यह सिक्किम से प्रकाशित इकलौता हिंदी साप्ताहिक है। इसका प्रकाशन अब दिवंगत संतोष की पुत्री नीता निराश कर रही हैं।

दैनिक हिंदी समाचारपत्र

2006ई. से सिक्किम की राजधानी गंगटोक से 'अनुगामिनी' नामक हिंदी दैनिक का प्रकाशन हो रहा है।

2012ई. से गंगटोक से हिंदी दैनिक 'नित्य समय' का प्रकाशन हो रहा था। 2019ई. के जून महीने से इस हिंदी दैनिक का प्रकाशन स्थगित है।

सिलीगुड़ी से प्रकाशित राष्ट्रीय हिंदी दैनिक समाचार पत्रों में स्थानीय अहिंदी भाषी संवाददाता हिंदी में समाचार संकलन कर रहे हैं। इन संवाददाताओं में प्रणय लामिछाने, प्रवीण खालिंग, जोसेफ लेप्चा आदि प्रमुख हैं।

सिक्किम से हिंदी में लिखने वाले कुछेक प्रमुख लेखक/कवि- के.एन. शर्मा, श्याम प्रधान, पदम क्षत्री (अनुवाद भी करते हैं), आशा किरण, शीला दाहाल का योगदान उल्लेखनीय है।

प्रथम हिंदी पुस्तक

सिक्किम से प्रकाशित प्रथम हिंदी पुस्तक है चन्द्रचूड़ नारायण शर्मा 'चिन्तक' की 'जय बांग्ला' (1972ई. में प्रकाशित) है। यह एक खंडकाव्य है जिसमें बंगलादेश के निर्माण से जुड़े घटनाक्रम का उल्लेख किया गया है। इसके पश्चात् ध्रुव नारायण सिंह की 'बीस बढ़ते कदम'। यह एक गीति नाटक है और इसका प्रकाशन 1976ई. में शिक्षा विभाग, सिक्किम सरकार ने किया था। 1992ई. में सिक्किम के नेपाली महाकवि तुलसीराम शर्मा 'कश्यप' का हिंदी खण्डकाव्य 'इन्द्रकील' तथा कृपाल सिंह द्वारा लिखित और प्रकाशन विभाग सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार द्वारा 1997ई. में प्रकाशित 'सिक्किम संस्कृति और जनजीवन' अब तक की हिंदी में प्रकाशित पुस्तकों की सूची है।

अस्सी के दशक से सिक्किम से हिंदी साहित्य लेखन एवं हिंदी पत्रकारिता का प्रारंभ होता है। सुवास दीपक की हिंदी रचनाएँ 1970ई. के बाद छपनी शुरू हो चुकी थीं।

उनकी पहली हिंदी रचना 1972ई. को 'सारिका' (टाइम्स आफ इंडिया प्रकाशन से प्रकाशित कहानी मासिक) पत्रिका में छपी थी। कहानी लेखन महाविद्यालय, अम्बाला छावनी की पत्रिका 'शुभ तारिका' (तब केवल 'तारिका') के 1973ई. के एक अंक में उनकी एक लघु कथा 'आवाजों के बीच' भी छपी थी। 1977ई. के 'सारिका' के युवा कथाकार विशेषांक में सुवास दीपक की कहानी 'पड़ोस' प्रकाशित है।

सिक्किम के प्रथम हिंदी उपन्यासकार, कवि और कहानीकार

सिक्किम के प्रथम हिंदी उपन्यासकार, कवि और कहानीकार होने का श्रेय सुवास दीपक को ही जाता है। सुवास दीपक का संभावना प्रकाशन, हापुड़ से 1985ई. में प्रकाशित 'अरण्य रोदन' सिक्किम का प्रथम हिंदी उपन्यास है। इसके अतिरिक्त 'खुला दरवाज़ा और पेड़' (1995ई. में प्रकाशित) कविता संग्रह तथा 2004ई. में प्रकाशित कहानी संग्रह 'चक्रव्यूह तथा अन्य कहानियां' सिक्किम से प्रकाशित इन विधाओं की पहली हिंदी पुस्तकें हैं।

राष्ट्र भाषा हिंदी की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर विश्व के दस राष्ट्रों के 293 कवियों का अन्तर्राष्ट्रीय हिंदी काव्य संकलन (1999 ई.), ध्रुव प्रकाशन, अहमदाबाद में सुवास दीपक की 'एकता और सदभावना का नीर' कविता सम्मिलित है।

इसके अतिरिक्त सुवास दीपक की 'गोरखा शिखर पुरुष शृंखला' के अंतर्गत चार हिंदी पुस्तकें-

प्रथम गोरखा स्वाधीनता सेनानी दल बहादुर गिरी (2015 ई.), अमर शहीद दुर्गा मल्ल (2015 ई.), नेताजी सुभाषचंद्र बोस के गायक सिपाही राम सिंह ठकुरी (2016 ई.) और नेपाली साहित्य संस्कृति संगीत के धरोहर मास्टर मित्रसेन थापा (2017 ई.) प्रकाशित हैं।

अनुवाद

भारतीय नेपाली साहित्य की अवधारणा को विस्तार देने वाले लेखकों और अनुवादकों में सुवास दीपक का योगदान उल्लेखनीय और ऐतिहासिक माना जाता है। 1970ई. से नेपाली साहित्य को हिंदी अनुवाद के माध्यम से सर्वप्रथम प्रस्तुत करने का श्रेय सुवास दीपक को जाता है। उन्होंने 1974ई. में 'साहित्य निर्झर' (चंडीगढ़ से प्रकाशित) के 'भारतीय नेपाली कहानी विशेषांक' का न केवल सम्पादन किया, बल्कि इस विशेषांक की एक दो कहानियों को छोड़कर बाकी कहानियों का हिंदी अनुवाद भी किया। भारतीय नेपाली कहानियों का हिंदी में प्रकाशित यह पहला विशेषांक गिना जाता है।

पटना से प्रकाशित 'प्रस्ताव' पत्रिका के 1981ई. के अंक में 'भारतीय नेपाली कथा खण्ड' में छह भारतीय नेपाली कहानियों के हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुए। 'भारतीय नेपाली कहानियां' 1996ई. में सिक्किम के अग्रणी प्रकाशन समूह 'निर्माण प्रकाशन' से प्रकाशित सुवास दीपक द्वारा हिंदी में अनुवादित कहानियों की पुस्तक भारतीय नेपाली कहानियों की प्रथम पुस्तक गिनी जाती है। इसके अतिरिक्त 1996ई. में ही प्रकाशित पवन चामलिङ 'किरण' की नेपाली कविताओं का हिंदी अनुवाद 'क्रूसीफाइड प्रश्न और अन्य कविताएँ' पुस्तक भारतीय नेपाली कविताओं की हिंदी अनुवाद के रूप में पहली पुस्तक है। कमलेश्वर द्वारा सम्पादित 'शिखर कथा कोश' के प्रथम एव द्वितीय भाग में सुवास दीपक के 35 भारतीय नेपाली कहानियों के हिंदी अनुवाद सम्मिलित किए गए हैं। 2001ई. में नेपाली उपन्यासकार लैनसिंह बाङदेल का चर्चित उपन्यास 'लंगड़ाको साथी' का 'सहयात्री' शीर्षक में, पी. अर्जुन के खण्डकाव्य 'क्रमशः' का 2003ई. में तथा बिन्ध्या सुब्बा के साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त उपन्यास 'अथाह' का 2003ई. में हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं।

सुवास दीपक की अभी तक नेपाली से हिंदी में अनूदित दर्जनों रचनाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें प्रमुख पत्रिकाएँ हैं- 'सारिका', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान', 'पहल' 'दिनमान' 'समकालीन भारतीय साहित्य', 'भाषा', आदि प्रमुख हैं।

भारतीय नेपाली लेखकों की कुछ अन्य पुस्तकें भी हिंदी में अनूदित होकर सिक्किम में पिछले वर्षों में प्रकाशित हुई हैं। इनमें प्रमुख हैं- खडगराज गिरी द्वारा हिंदी में अनूदित वीरभद्र कार्कीढोली की दो पुस्तकें 'तुमने जीवन तो दिया लेकिन...' (कविता) और 'शब्दों का कोहरा' कहानी संग्रह।

सुवास दीपक का हिंदी लेखन की ओर झुकाव 1970ई. के शुरुआती सालों में होता है। वह 1968- 69ई. में टाइम्स ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित कथा पत्रिका "सारिका" और "धर्मयुग" से प्रभावित होते हैं। इसी दौरान उनका झुकाव अनुवाद की ओर होता है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में फैले लगभग एक करोड़ नेपाली भाषी भारतीय नागरिकों के प्रमुख गढ़ दार्जिलिंग में नेपाली भाषा में साहित्य सृजना की दीर्घ परम्परा रही है। भारतीय नेपाली साहित्य की अवधारणा का सध्येय विस्तार, प्रचार और मान्यता को एक लक्ष्य के रूप में लेकर भारतीय नेपाली साहित्य को राष्ट्रभाषा हिंदी में अनुवाद के माध्यम से परिचित कराने के संकल्प के तहत

1974ई. में चंडीगढ़ से प्रकाशित हिंदी मासिक 'साहित्य निर्झर' के अक्तूबर 1974ई. के अंक के 'भारतीय नेपाली कहानी विशेषांक' का सम्पूर्ण अनुवाद किया। भारतीय नेपाली साहित्य को राष्ट्रभाषा हिंदी के माध्यम से परिचित कराने में इस विशेषांक का ऐतिहासिक महत्त्व है क्योंकि इस प्रकार का यह नितान्त प्रथम प्रयास था। यह वह समय था जब साहित्य अकादमी ने नेपाली भाषा को मान्यता नहीं दी थी और नेपाली भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में मान्यता भी नहीं मिली थी।

सिक्किम के पहले हिंदी उपन्यासकार होने का श्रेय सुवास दीपक को जाता है। 1985ई. में संभावना प्रकाशन, हापुड़ से प्रकाशित उनका हिंदी उपन्यास 'अरण्य रोदन' चर्चित हुआ है। इस उपन्यास की समीक्षा तत्कालीन हिंदी साप्ताहिक (कलकत्ता से प्रकाशित) 'रविवार' के 1-7 दिस. 1985ई. के अंक में प्रकाशित हुई थी। सकलदीप सिंह ने लिखा-

"आज़ादी के बाद भ्रष्ट व्यवस्था ने इस देश में राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दिवालियापन की जो विकलांग स्थिति पैदा की उसी की प्रतिक्रिया है सुवास दीपक का यह उपन्यास 'अरण्य रोदन'। भ्रष्ट राजनीति अपनी कुर्सी सुरक्षित रखने के लिए कैसे घिनौने हथकंडे अपनाती है और बेईमान अफसरों और राजनेताओं के संसर्ग में उत्पन्न चमचावाद किस तरह पूरे तन्त्र पर हावी होता जा रहा है यह लेखक ने देश के भावी नागरिकों का निर्माण करने वाली संस्था और उसके कर्णधार शिक्षकों के कार्यकलापों द्वारा अपनी विशिष्ट भाषा और शैली में पाठकों को बताने का दु:साहस किया है। पारम्परिक उपन्यास से कुछ भिन्न सुवास दीपक के उपन्यास अरण्य रोदन को पढ़ने के बाद ऐसा लगा कि नए लेखक उपन्यास को एक नया ढाँचा देने की कोशिश कर रहे हैं। ... इस छोटे उपन्यास का कैनवास बड़ा नहीं है, समस्याएँ भी जानी- पहचानी हैं, उनके निदान के लिए रास्ता ढूंढना भी अरण्य रोदन जैसा ही है, पर अपने चटख शिल्प के द्वारा लेखक बुद्धिजीवियों, शिक्षकों एवं शिक्षितों को एक बार फिर उनके पतन का एहसास कराता है।"

1974ई. में प्रकाशित 'भारतीय नेपाली कहानी विशेषांक' (साहित्य निर्झर) की कहानियों में और कहानियाँ शामिल कर 1966ई. को 'भारतीय नेपाली कहानियाँ' का प्रकाशन निर्माण प्रकाशन द्वारा हुआ, जो पुस्तक के रूप में भारतीय नेपाली कहानियों का नेपाली से हिंदी में अनूदित पहला कहानी संग्रह है। सुवास दीपक द्वारा सिक्किम के स्वनामधन्य कवि- साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ पवन चामलिङ (साहित्यिक नाम पवन चामलिङ 'किरण') की नेपाली कविताओं के हिंदी अनुवाद का संकलन 'क्रूसीफाइड प्रश्न और अन्य कविताएँ' (1966ई.), चक्रव्यूह तथा अन्य कहानियाँ (मौलिक हिंदी कहानियाँ- 2003 ई., सिक्किम से प्रकाशित पहला हिंदी कहानी संग्रह), मौलिक हिंदी कविता संग्रह 'खुला दरवाज़ा और पेड़' (1995 ई.) सिक्किम से प्रकाशित पहला कविता संग्रह है।

1978ई. के 'सारिका' पत्रिका के युवा कहानीकार अंक में सुवास दीपक की कहानी 'पड़ोसी' काफी चर्चित हुई थी। उनके हिंदी लेख, अनुवाद पिछले चार दशकों से सारिका, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, पहल, भाषा आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। साहित्य अकादमी पत्रिका 'समकालीन भारतीय साहित्य' में पिछले तीन दशकों से नेपाली कविताओं और कहानियों के अनुवाद छपते आ रहे हैं।

सुवास दीपक द्वारा हिंदी में 'गोरखा शिखर पुरुष शृंखला' के तहत अभी तक स्वाधीनता सेनानी दलबहादुर गिरी तथा अमर शहीद दुर्गा मल्ल पर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

सुवास दीपक का रचना संसार व्यापक और बहुआयामी है- उनकी कहानियाँ, उपन्यास, कविताएँ किन्हीं विशेष वादों या विचारधाराओं की दीवारों में कैद नहीं हैं, उनके रचना संसार में उत्तरोत्तर विकास हुआ है। इसमें उनकी पूर्ववर्ती विचारधाराओं के खंडन या अस्वीकार की बात नहीं है, बल्कि उन्होंने हर क्षण के अनुभव को अपनी उत्तरजीविता से जोड़ कर मुक्त मस्तिष्क से खुद को खुल कर व्यक्त किया है। अपने लेखन की शुरुआती परिस्थिति पर उन्होंने साहित्य अकादमी अनुवाद पुरस्कार (2003 ई., नेपाली) प्राप्त करने के बाद अपने वक्तव्य में कहा था-

"लेखन क्षेत्र में मेरा प्रवेश कैसे, कब और किन परिस्थितियों में हुआ और उनके पीछे कौन से परोक्ष व प्रत्यक्ष कारण थे-यह कह पाना एक कठिन बात है और जिसका उत्तर दे पाना मेरे लिए सहज नहीं है। प्रत्येक स्रष्टा के व्यक्तित्व में अन्तर्निहित संस्कारों और आद्यबिम्बों के साथ-साथ परिस्थितियों से उत्पन्न संताप, तनाव, द्वन्द्व और स्वैरकल्पनाओं की एक शक्तिशाली भूमिका रही होती है। मेरे संस्कारों ने मुझे लिखित शब्द के प्रति अतिशय अनुराग और संवेदनशीलता प्रदान की है।"

सुवास दीपक

एस. पी. गोलाई, आरिथांग, पोस्ट बाक्स नं. 36,
गंगटोक- 737101, सिक्किम

असम के मारवाड़ी समुदाय और हिंदी

-जाहिदुल दीवान

असम पूर्वोत्तर भारत का सबसे जाना- पहचाना राज्य है। इस राज्य की विशिष्ट पहचान जिन कारणों से बनी है, भाषा उनमें से एक अन्यतम कारण है। लेकिन भाषा पर बात करने से पहले कुछ दूसरी जरूरी बातों पर चर्चा करना भी आवश्यक है। तब बात और अधिक स्पष्ट हो पाएगी। कहा जाता है कि असम में हजारों वर्षों से बाहर के लोग आकर बसे हैं। कहीं-न-कहीं यह सिलसिला आज भी जारी है। लेकिन प्रवास के इस लंबे इतिहास में केवल दो ही समुदायों ने लूटने या फतह करने के इरादे से असम में प्रवेश किया था। जाहिर तौर पर वे दोनों समुदाय क्रमश: मुगल और अंग्रेज थे। बाकी जितने भी समुदाय असम में आए उन्होंने कभी असम को छोड़कर जाने का विचार नहीं किया। उन्हीं प्रवासी लोगों ने असम को हर दृष्टि से समृद्ध करने का काम भी किया है। देखा जाए तो प्रवासी लोग वर्तमान असमिया समाज के अविच्छेद अंग बन चुके हैं। आज प्रवासियों के बिना असम की कल्पना करना भी मुश्किल है। लेकिन वर्षों से असम के कुछ प्रवासी लोग विवाद का कारण भी बने हुए हैं। हालांकि यह अपने आप में एक विस्तृत परिचर्चा का विषय है, जिस पर हम अलग से बात कर सकते हैं।

जैसे कि प्रस्तुत लेख के शीर्षक से ही स्पष्ट हो चुका है कि हम असम के मारवाड़ी लोगों के हिंदी भाषा के विकास एवं प्रचार-प्रसार में क्या योगदान रहा है, उस पर चर्चा करने जा रहे हैं। हालांकि यहाँ असम में हिंदी भाषा की स्थिति और मारवाड़ी समाज का उनमें योगदान, इन दोनों पक्षों पर संक्षिप्त विवरण मात्र ही प्रस्तुत किया जाएगा। पहले ही कहा जा चुका है कि जिन कारणों से असम राज्य पूरे भारतवर्ष में पहचाना जाता है उनमें भाषा एक अन्यतम बिंदु है। असम की असमिया भाषा भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल वह भाषा है जिसकी एक समृद्ध परंपरा है। असम के स्थानीय लोग असमिया भाषा से, प्राणों से बढ़कर प्रेम करते हैं। असमिया समाज के लोग अपनी सबसे बड़ी सांस्कृतिक पहचान असमिया भाषा को ही मानते हैं। मैं इन बातों को यहाँ इसलिए दोहरा रहा हूँ क्योंकि इस स्थिति को समझे बिना हम असम के बारे में किसी भी भाषागत विषय पर मुकम्मल बात नहीं कर सकते। चाहे हिंदी हो या कोई दूसरी भाषा, असम में विस्तार के लिए सर्वप्रथम उसे असमिया भाषा से टकराना पड़ता है। इसलिए असम के प्रवासी समुदाय के लोगों को अपनी भाषा में कुछ सोचने-विचारने से पहले असमिया भाषा का भी ख्याल रखना पड़ता है। असम के हिंदी भाषी मारवाड़ी समुदाय भी इस स्थिति से अनजान नहीं हैं।

अहिंदी अंचल असम में प्रारम्भ में हिंदी प्रचार का दायित्व बाबा राघवदास को सौंपा गया था, जो अपने बरहज आश्रम में पहले से ही राष्ट्रभाषा प्रचार में जुटे थे। काका साहब कालेलकर तथा अन्य राष्ट्रनेताओं ने इस अंचल का दौरा किया। उन्हीं दिनों असम में सुचारू रूप से हिंदी प्रचार हेतु एक संस्था बनाने का उद्योग भी होने लगा था। असम के लोकप्रिय गोपीनाथ बरदलै हिंदी के बड़े पोषक व समर्थक थे। काका साहेब कालेलकर की उपस्थिति में सन् 1936 ईसवी में गुवाहाटी में गोपीनाथ बरदलै की अध्यक्षता में हिंदी प्रचार समिति की स्थापना हुई। आगे चलकर इसका नाम 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' पड़ा। असम के डिब्रूगढ़', 'जोरहाट', 'शिवसागर', 'बरपेटा' आदि अंचलों में हिंदी शिक्षण होने लगा। गुवाहाटी में राष्ट्रभाषा प्रशिक्षण हेतु राष्ट्रभाषा शिक्षण मंदिर' खोला गया जिसके प्रधानाचार्य के रूप में एक बहुत ही सुयोग्य व्यक्ति कमलनारायण आये थे। राष्ट्रभाषा शिक्षण के अलावा उन्होंने हिंदी- असमिया के साहित्यिक समन्वय के लिए भी कदम उठाया था।

असम के विकास में मारवाड़ी लोगों ने इतना योगदान दिया है जिसकी कोई तुलना नहीं है। मारवाड़ी लोग हिंदी भाषी होते हैं जिनकी मातृभाषा राजस्थानी हिंदी है। राजस्थान, हरियाणा, मालवा तथा उसके निकटवर्ती भू- भागों के रहन-सहन, भाषा तथा संस्कृति वाले सभी लोग जो स्वयं अथवा उनके पूर्वज देश या विदेश के किसी भू- भाग में बसे हों,

वे मारवाड़ी कहलाते हैं। यह परिभाषा आज तक मानक रूप में स्वीकार्य है। देश का कोई ऐसा प्रान्त नहीं है जहाँ मारवाड़ी नहीं गए हों या आज भी नहीं बसे हों। इन प्रवासी लोगों में एक बहुत बड़ी संख्या ऐसी है, जिसका मारवाड़ से कोई ताल्लुक नहीं है। प्रश्न उठता है कि फिर वे मारवाड़ी क्यों कहलाये? उत्तर बहुत स्पष्ट है। वे सभी लोग मारवाड़ी भाषा बोलते थे और जहाँ भी गये, उन्होंने अपना परिचय मारवाड़ी के रूप में दिया। इसीलिए राजस्थान से किसी भी रूप में जुड़े हुए हर व्यक्ति मारवाड़ी कहलाए। आज से चार सौ वर्ष पहले शायद राजस्थान या राजस्थानी शब्द ही नहीं बने होंगे। अतः खुद के परिचय के लिए राजस्थानी शब्द की जगह मारवाड़ी शब्द का प्रयोग किया जाता रहा।

मारवाड़ शब्द संस्कृत के मारुवाट का अपभ्रंश माना जाता है। प्राचीनकाल में यह मरुप्रदेश कहलाता था। कारण भौगोलिक दृष्टि से इसका विशाल इलाका मरुभूमि, रेगिस्तान ही था। माड़वाड से मारवाड़ी शब्द की उत्पति हुई है। ऐतिहासिक सूत्रों से पता चलता है कि मारवाड़ी व्यापारियों का बंगाल में सन् 1564ई. में आगमन हुआ था। कालक्रम में उनका व्यापार स्थानीय लोगों से जुड़ने लगा और लोग उन्हें मारवाड़ी नाम से संबोधित करने लगे। मारवाड़ी शब्द का प्रयोग सिर्फ व्यापारियों के लिये होता हो ऐसा नहीं है वरन् जो भी व्यक्ति मारवाड़ी भाषा, वेशभूषा, खानपान, रीति-रिवाज आदि को मानते हैं उन्हें भी मारवाड़ी कहा जाता है। असम में मारवाड़ी शब्द एक विनिर्दिष्ट समुदाय को दर्शाता है जिनके पूर्वज किसी समय मारवाड़ (जोधपुर) नामक स्थान से इस राज्य में आकर बसे थे। शुरू-शुरू में मारवाड़ी शब्द केवल मारवाड़ के निवासियों के लिए ही प्रयोग किया जाता था लेकिन समय के चलते इस शब्द का अर्थविस्तार हो गया। विशेषतः सिकर, उदयपुर आदि स्थान की भाषा-संस्कृति के साथ सामंजस्य रखने वाले राजस्थान के पास के हरियाणा जैसे स्थान से आनेवालों को भी वृहत् मारवाड़ी समुदाय के अन्तर्गत माना जाता है। सुप्रसिद्ध इतिहासकार श्री गौरीशंकर हीरा चन्द ओझा ने कहीं लिखा है, 'मारवाड़' शब्द देशवाची, लोकवाची एवं संस्कृतिवाची है। राजपूताना के लोगों को हिन्दुस्तान में मारवाड़ी ही कहते हैं। राजपूताना से बाहर जाने वाले लोग अपने पहनावे, रहन- सहन, व्यवहार और व्यापार आदि में समानता के कारण राजस्थान से बाहर कलकत्ता, मुंबई आदि भारत के सभी स्थानों में मारवाड़ी कहे जाते हैं, भले ही वे राजस्थान में जोधपुर, बीकानेर अथवा जयपुर के या अन्य किसी राज्य के निवासी ही क्यों न हों।

आहोम राजा गौरीनाथ सिंह (1780-1794 ई.) और अंग्रेज कैप्टन वेल्स के साथ एक समझौता हुआ था जिसके तहत अंग्रेज व्यापारियों को भारतीय व्यापारियों के साथ असम में व्यवसाय करने की अनुमति मिली थी। इन व्यापारियों में अगरवाला और मारवाड़ के ओसवाल तथा ढाका के मुसलमानों के भी शामिल होने का प्रमाण मिलता है। राजा कमलेश्वर सिंह (1795-1810 ई.) के शासनकाल में असम के कई स्थानों पर बंगाली और मारवाड़ी व्यापारियों की दुकानें चलने का उल्लेख मिलता है। ऐतिहासिक प्रमाण व साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मारवाड़ी लोग पिछले ढ़ाई-तीन सौ वर्षों से असम में कार्यरत हैं। इस कालखण्ड के पहले भी मारवाड़ियों के असम प्रदेश में मौजूद होने का दावा किया जाता है। लेकिन इसका कोई साक्ष्य उपलब्ध नहीं है। सत्रहवीं शताब्दी में मुगल सैनिकों के साथ मारवाड़ियों के आने की बात का उल्लेख साहबुद्दीन तालेश की 'तारिख ए असम' में मिलता है जिसमें कुछ राजपूत सेना अधिकारियों के असम में निवास करने का उदाहरण मौजूद है।

राजस्थान से रोजगार की तलाश में असम आए एक मारवाड़ी परिवार ने असमिया जाति को नयी बुलंदियाँ प्रदान की। हम बात कर रहे हैं रूप कुंवर ज्योतिप्रसाद अगरवाला के परिवार की। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि अंग्रेजों के शासन काल में ही राजस्थान से आये केडिया परिवार ने असम में न सिर्फ रोजगार के साधन जुटाये, बल्कि असमिया साहित्य, कला, संस्कृति को अपने महत् योगदान से लबरेज कर दिया। स्व. ज्योतिप्रसाद अगरवाला को असमिया जाति का पुरोधा मानकर पूजा जाता है। यह बात नहीं है कि विगत दो शताब्दियों में सिर्फ ज्योतिप्रसाद का परिवार ही राजस्थान से आकर असम में स्थायी रूप से रचा-बसा हो। ऐसे हजारों परिवार हैं, जो रोजगार की तलाश में असम आये तथा पूरी तरह यहाँ रच-बस गये। आज उनकी कई पीढ़िया यहाँ गुजर चुकी हैं, लेकिन उनमें से ऐसे परिवार गिने-चुने ही हैं, जिनको ज्योतिप्रसाद के परिवार सरीखा मान सम्मान, प्यार हासिल हुआ हो। आखिर ज्योतिप्रसाद के परिवार में ही ऐसा क्या था कि आज हर असमिया उन्हें न सिर्फ अपना मानता है, बल्कि अपना पुरोधा मानकर पूजता भी है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी ज्योतिप्रसाद अगरवाल एक नाटककार, कथाकार, गीतकार, पत्र संपादक, संगीतकार तथा गायक सभी कुछ थे। मात्र 14 वर्ष की उम्र में ही 'शोणित कुंवरी' नाटक की रचना कर आपने असमिया साहित्य को समृद्ध कर दिया। 1935ई. में असमिया साहित्यकार लक्ष्मीकांत बेजबरूआ के ऐतिहासिक नाटक 'जयमति कुंवरी' को

आधार मानकर प्रथम असमिया फिल्म बनाई। वे इस फिल्म के निर्माता, निर्देशक, पटकथाकार, सेट डिजाइनर, संगीत तथा नृत्य निर्देशक सभी कुछ थे। ज्योति प्रसाद ने दो सहयोगियों कला गुरु विष्णु प्रसाद राभा (1909– 69) और फणि शर्मा (1909– 69) के साथ असमिया जन संस्कृति को नई चेतना दी। यह असमिया जातीय इतिहास का स्वर्ण युग है। ज्योतिप्रसाद की संपूर्ण रचनाएँ असम के सरकारी प्रकाशन संस्थान ने चार खंडों में प्रकाशित की हैं। उनमें 10 नाटक और लगभग उतनी ही कहानियाँ, एक उपन्यास, 20 से ऊपर निबंध, तथा 359 गीतों का संकलन है। जिनमें प्राय: सभी असमिया भाषा में लिखे गये हैं। तीन–चार गीत हिंदी और कुछ अंग्रेजी में नाटक भी लिखे गये हैं। असम सरकार प्रत्येक वर्ष 17 जनवरी को ज्योतिप्रसाद की पुण्यतिथि को शिल्पी दिवस के रूप में मनाती है।

स्वतंत्रता के पूर्व जब गांधी जी पूरे भारतवर्ष में हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्थापित करने का प्रयास कर रहे थे तभी 1923ई. में गुवाहाटी शहर के कुछ युवकों ने इस अहिंदी भाषी प्रांत में, जहाँ हिंदी के नाम पर या तो एक मिडिल स्कूल चल रहा था या फिर दो–चार लोग बाहर से हिंदी के अखबार मँगा रहे थे, में हिंदी के प्रचार–प्रसार का सपना देखा। स्व. पंडित श्री केसर देव शर्मा, स्व. जगदीश जी सांगानेरिया, स्व. देवी दत्त जी सांगानेरिया, स्व. राम प्रसाद जी जालान, स्व. बालूराम जी आदि ने मिलकर गुवाहाटी के फैंसी बाजार स्थित श्री गोविंद जी ठाकुरबाड़ी में ही एक हिंदी पुस्तकालय की शुरुआत की (जिसका नाम बाद में 'श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय' पड़ा) में आरंभ में बहुत थोड़ी– सी पुस्तकें जो प्राय: इन्हीं लोगों द्वारा प्रदत्त थी। आज इस पुस्तकालय में हजारों की संख्या में हिंदी पुस्तकें मौजूद हैं। हिंदी के प्रति समाज में रुझान पैदा करने के उद्देश्य से यह पुस्तकालय पिछले कई वर्षों से लगातार एक बड़े कवि सम्मेलन का आयोजन जनवरी माह में करता आ रहा है जिसमें करीब 1200 श्रोता सक्रिय सहभागिता करते हैं। सन् 2013ई. से पुस्तकालय में एक द्विवार्षिक सज्जन जैन स्मृति साहित्य पुरस्कार भी दिया जा रहा है जो कि पूर्वोत्तर में हिंदी के क्षेत्र में सर्वाधिक कार्य करने वाले व्यक्ति को दिया जाता है।

असम के वरिष्ठ पत्रकार व संपादक घीसा लाल अग्रवाल को पूर्वोत्तर में हिंदी पत्रकारिता का गुरु माना जाता है। बता दें कि वे जीएल पब्लिकेशंस प्रबंध के निदेशक सह अध्यक्ष रहे हैं। इसके तहत हिंदी अखबार 'पूर्वांचल प्रहरी', असमिया अखबार 'आमार असम', अंग्रेजी दैनिक 'द नॉर्थ ईस्ट टाइम्स' और मेघालय राज्य के लिए एक अलग अंग्रेजी दैनिक 'द मेघालय गार्जियन' का प्रकाशन हो रहा है। पब्लिकेशंस के अध्यक्ष घीसा लाल अग्रवाल ने असमिया भाषा और संस्कृति के विकास में महती योगदान दिया। उनका जन्म बरपेटा जिले में सन् 1940ई. में हुआ था। हिंदी पत्रकारिता के क्षेत्र में छगनलाल जैन अग्रणी माने जाएंगे। उन्होंने 1950ई. में 'पूर्वज्योति' नामक हिंदी मासिक समाचार पत्र प्रारंभ किया था। यही पूर्वज्योति बाद में साप्ताहिक रूप में प्रकाशित होने लगा। यह साप्ताहिक समाचार पत्र करीब ढाई दशक तक असम के बारे में हिंदी भाषी लोगों को जानकारी प्राप्त कराने का महत्वपूर्ण साधन था। छगनलाल जैन ने शंकरदेव द्वारा रचित कीर्तन और नामघोषा का हिंदी भाषा में अनुवाद कर आकाशवाणी दिल्ली केंद्र से प्रसारित करवाकर असम की महापुरुषीया धर्म–संस्कृति के प्रचार के क्षेत्र में एक महान कार्य किया था। असम और असमिया साहित्य सभा के प्रति उनकी अगाध निष्ठा थी। असमिया साहित्य–संस्कृति के विकास में असम के कई हिंदी भाषियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इनमें कई लोगों ने हिंदी और असमिया दोनों के साहित्य–संस्कृति के समन्वय सेतु के रूप में अपनी अहम भूमिका निभाई। इनमें से कुछ लोग असम में ही रह गए तो कुछ लोग कुछ समय के बाद अपने प्रदेश वापस लौट गए, लेकिन उनका रचनात्मक कार्य असम में हिंदी–असमिया भाषा के समन्वय सेतु के रूप में मील का पत्थर साबित हुआ।

असम में पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी सम्मेलन तथा पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी युवा मंच नामक दो स्थापित संगठन हैं, जिन्हें असम के मारवाड़ी समाज का प्रतिनिधि संगठन माना जाता है। पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी सम्मेलन मारवाड़ी समाज के प्रबुद्ध व प्रतिष्ठित लोगों का संगठन माना जाता है। ये संगठन विगत कई दशकों से पूर्वोत्तर में अपनी गतिविधियाँ चला रहे हैं। असम के मारवाड़ी समुदाय तथा स्थानीय असमिया के बीच की दूरी मिटाने के काम की सबसे अहम जिम्मेदारी पूर्वोत्तर प्रदेशीय मारवाड़ी सम्मेलन पर ही है, लेकिन इस संगठन को आज भी असम क्षेत्र में कई ठोस काम करने बाकी हैं।

संदर्भ– सूची

HATICHUNG Dr- Ranajit Sabhapandit- 2020- PRABAS PRABRAJAN ANUPRABESHAR CHAKRABEHUT ASOM- GUWAHATI % SUN BEAM -

SIVANATH BARMAN- 2013- SWADESH SWAMAT- PANBAZAR] GUWAHATI& 1% BANDHAV-

UMESH KHANDELIYA- 2019- ASOMOR MARWARI SAMAJ - DHEMAJI] ASSAM % DHEMAJI ZILA SAHITYA SABHA & MARWARI SAMMELAN] DHEMAJI BRANCH -

कांता अग्रवाल. 2021 जनवरी– फरवरी . "श्री मारवाड़ी हिंदी पुस्तकालय:

एक विरासत." पुस्तेक संस्कृति 24.
गोपाल जालान. जनवरी 2010. "मारवाड़ी सम्मेलन और असम साहित्य सभा।" समाज विकास 29-30.
विकिपीडिया. 2022. ज्योतिप्रसाद आगरवाला. 16 जनवरी. इस दिन देखा गया 20 अप्रैल 2022. https:èkèkhi.wikipedia-orgèkwikièk
शांति संपादक मंडल. 2016. पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की दशा और दिशा . नवा वाडज, अहमदाबाद, गुजरात : शांति प्रकाशन .

लेखक का परिचय एवं पता:
डॉ. जाहिदुल दीवान (पोस्ट डॉक्टरेट)
कमरा नं. 32, 52 ए/2
करतार सिंह टोकस बिल्डिंग
बुद्ध विहार, मुनिरका
नई दिल्ली- 110067
मोबा: 7678245992

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की विकास यात्रा

- अनंत मिश्र

भारत बेजोड़ संस्कृति वाला राष्ट्र है और यह विश्व की प्राचीनतम और महानतम सभ्यताओं में से एक है। भारत को मुख्यत: छ: अंचलों- उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वी, पश्चिमी, मध्यवर्ती और पूर्वोत्तर में वर्गीकृत किया जा सकता है।

'पूर्वोत्तर' शब्द की अवधारणा का उद्‌भव ब्रिटिश काल के दौरान हुआ। ब्रिटिश काल के दौरान भारत की राजधानी कोलकाता थी और कोलकाता से यह भू- भाग उत्तर- पूर्व में स्थिति है। परन्तु वर्तमान समय में भारत की राजधानी दिल्ली से यह क्षेत्र ठीक पूर्व की ओर है।

भारत का पूर्वोत्तर अंचल वर्तमान समय में आठ राज्यों का एक समूह है, जिसके अंतर्गत असम, अरुणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड, त्रिपुरा एवं सिक्किम आते हैं। इन राज्यों को सात बहनें और एक भाई(सिक्किम) के नाम से जाना जाता है। भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र भारत की मुख्य सांस्कृतिक धारा के साथ प्रवाहमय है। यह क्षेत्र वैविध्य के दृष्टिकोण से एक अतुल्य क्षेत्र है। यह क्षेत्र अनूठी संस्कृति, हस्तशिल्प और प्राकृतिक सुंदरता के लिए जाना जाता है।

पूर्वोत्तर भारत में असमिया के साथ ही बांग्ला, नेपाली, मणिपुरी, अंग्रेजी, खासी, गारो, निशी, आदि, मोनपा, वांग्चु, नागामीज, मिजो, कॉकबरॉक, लेप्चा, भुटिया आदि लगभग 125 भाषाएँ बोली जाती हैं। जिन्हें भाषा विज्ञान की दृष्टि से देखें तो तीन वर्ग में बाँटा जा सकता है- ऑस्ट्रो- एशियेटिक, इंडो-आर्यन, तथा तिब्बत-बर्मी। इसके अतिरिक्त 'पूर्वोत्तर' में एक बड़ी जनसंख्या उन हिंदी भाषियों की है जो मुख्यत: उत्तर भारत से आकर यहाँ बस गए हैं। पूर्वोत्तर की भाषाओं में से केवल असमिया, बोड़ो और मणिपुरी को भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिला है।

भाषाई अस्मिता न केवल संवाद, साहित्य और सृजन जैसे विषयों पर चलती है अपितु जीवन के राग- रंग को कैसे अभिव्यक्त किया जाय इस मुद्दे पर भी चलती है। जब हिंदी पर बातचीत करें, तो अन्य भारतीय भाषाओं के साथ उसको प्रतिपक्ष में खड़ा करने की कोशिश न करें। हिंदी पर जब भी बातचीत करें तो इस रूप में बातचीत करें कि देश के राग को, देश के रंग को, देश के मन को एक ऐसी भाषा में बोलने की बात है जो कच्छ से कटक तक और कश्मीर से कन्याकुमारी तक का व्यक्ति समझ सके।

पूर्वोत्तर में आदिकालीन हिंदी

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी लेखन के इतिहास को अगर पलट कर देखें तो हम पाते हैं कि हिंदी साहित्य के आदिकाल से ही पूर्वोत्तर में हिंदी लेखन प्रारंभ हो गया था। कामरूप पीठ कामाख्या में प्राचीन काल से ही तंत्रयान, वज्रयान और सहजयान साधकों का केंद्र स्थल रहा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ग्रंथ में इस बात का उल्लेख किया है कि 'अपभ्रंश या प्राकृताभास हिंदी के पद्यों का सबसे पुराना पता तांत्रिक और योगमार्गी बौद्धों की साम्प्रदायिक रचनाओं के भीतर विक्रम की सातवीं शताब्दी के अंतिम चरण में लगता है।'

सरहपा (विक्रम संवत् 690)- आचार्य शुक्ल के मतानुसार सिद्धों में 'सरहपा' सबसे पुराने हैं एवं उनकी रचनाओं में प्राकृतभास हिंदी के रूप मिलता है। शुक्ल जी ने अपने इतिहास में 'सरहपा' को असम का सिद्ध माना है। अन्य विद्वानों ने भी सरहपा के साथ-साथ अन्य सिद्धाचार्यों को असम का निवासी प्रमाणित किया है। अत: असम (असम से तात्पर्य वर्तमान के आठों राज्यों से है, क्योंकि स्वाधीनता प्राप्ति के बाद धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों से छोटे- छोटे राज्य बने हैं। पहले इस पूरे क्षेत्र को 'प्राज्ञज्योतिषपुर' के नाम से जाना जाता था) में हिंदी साहित्य लेखन 'सरहपा' (7वीं सदी) से शुरू माना जाता है।

लुइपा (8वीं सदी)- कुछ विद्वान इन्हें बंगाली मानते हैं परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि ये कामरूप के निवासी थे। इनकी रचनाओं में संस्कृत एवं अपभ्रंश का सरलीकृत ग्रामीण अपभ्रंश एवं पुरानी हिंदी के रूप मिलते हैं।

यथा–

''काआ तरुवर पंच विडाल।
चंचल चीए पाइठो काल।।"

यहाँ 'पइठना' शब्द ठेठ पूर्वी हिंदी का है।

इनके अतिरिक्त भी 'दारिकप', 'कारुपा', 'कुक्कुरीपा' आदि सिद्धाचार्यों की रचनाओं में हिंदी देखने को मिलती है। ये सभी किसी न किसी रूप में पूर्वोत्तर क्षेत्र से ही सम्बन्ध रखते थे।

पूर्वोत्तर में मध्यकालीन हिंदी

यह एक ऐसा समय था जब सम्पूर्ण भारतवर्ष में उथल-पुथल मची थी। जिस समय भक्ति आंदोलन का उदय हुआ था उस समय हमारा समाज परिवर्तन के लिए व्याकुल था। भारतवर्ष तमाम तरह की रूढ़ियों, बन्धनों से मुक्त होना चाह रहा था। इस तरह की विषम परिस्थिति में भारत में हमेशा से महापुरुषों का प्रादुर्भाव होता रहा है। इस काल में भी अनेक साधु- संत, मुनि- महात्मा, समाज- सुधारकों का जन्म भारत भूमि पर हुआ। डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं- "कैसा महान युग था वह! दक्षिण में पुरंदरदास, उत्तर में सूरदास, तुलसीदास, पश्चिम में नरसी मेहता और पूर्व में शंकरदेव। ये लोग खूब यात्रा करते थे। पुरंदरदास ने तीन बार उत्तर भारत की यात्रा की, शंकरदेव बारह वर्ष भारत के विभिन्न प्रदेशों में घूमते रहे। इस तरह उन्होंने अपने प्रदेश की जातीय संस्कृति के साथ-साथ पूरे देश की राष्ट्रीय संस्कृति को अपने अनुभव से समृद्ध किया। इस देश में एक सांस्कृतिक सातत्यता का भाव रहा है और वह भाव अपने ढंग से यहाँ की रचनाओं में भक्ति आंदोलन में रहा है और इस भाव का प्रतिनिधि हिंदी करती है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष की भाँति मध्यकाल में असम में भी राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक असंतुलन व्याप्त था। पूर्वी असम के शासक आहोम राज परिवार में गृह कलह, हुसैन शाह के द्वारा पश्चिम असम के शासक महाराज नीलाम्बर के साथ विश्वासघात आदि राजनीतिक उथल- पुथल का दौर पूर्वोत्तर में चलता रहा।

धार्मिक दृष्टिकोण से देखें तो इस समय असम में तंत्र-मंत्र का प्रभाव लोकजीवन में इतना व्यापक रहा कि असम के कामाख्या एवं ताम्रेश्वरी मन्दिर में नरबलि की प्रथा रही। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- "शक्तियों सहित देवताओं के युगनबद्ध स्वरूप की भावना चली और उनकी नग्न मूर्तियाँ, सहवास की अनेक अश्लील मुद्राएँ बनने लगी, जो कहीं-कहीं आज भी देखने को मिलती हैं। ... जिस समय मुसलमान भारत में आए उस समय देश के पूर्वी भागों में धर्म के नाम पर दुराचार फैल गया।" ऐसी ही विषम परिस्थितियों में अक्टूबर सन् 1449ई. में श्रीमंत 'शंकरदेव' का प्रादुर्भाव हुआ।

श्रीमंत शंकरदेव (1449ई.-1568ई.)- इनका जन्म नगाँव ज़िले के बरदोवा ग्राम में हुआ था। इन्होंने बहुदेव पूजा, तंत्र- मंत्र, बलि प्रथा आदि कुरीतियों का खंडन करते हुए 'एक देव एक सेव' का उपदेश दिया। इन्होंने संस्कृत, असमिया एवं ब्रजबुलि आदि भाषाओं में काव्य रचना की है। ब्रजबुलि हिंदी की उपभाषा मानी जाती है। 'वरगीत' और 'नाट्य' रचना इन्होंने इसी ब्रजबुलि अथवा ब्रजावली में की। श्रीमंत शंकरदेव द्वारा उद्भावित 'ब्रजावली' भाषा असमिया, बांग्ला, मैथिली, मगही, भोजपुरी का सम्मिश्रण है।

शंकरदेव द्वारा रचित 'वरगीत' के प्रत्येक पद भक्ति से ओत- प्रोत हैं। इन गीतों में राम- कृष्ण की उपासना पर महत्त्व दिया गया है। इन गीतों में धर्म, साहित्य, सभ्यता, संस्कृति एवं दर्शन का एक साथ समावेश है, जो कहीं न कहीं भारत की सांस्कृतिक एकता को और मज़बूती प्रदान करता है।

इन गीतों के अलावा शंकरदेव ने नाटकों की रचना भी 'ब्रजावली' में की। शंकरदेव को आधुनिक नाट्यशास्त्र का जनक कहा जा सकता है। क्योंकि इनसे पहले असमिया अथवा किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में नाट्य साहित्य का विकास नहीं हुआ था।

इस प्रकार श्रीमंत शंकरदेव ने भारत की सांस्कृतिक यात्रा में अपने प्रदेश को जोड़ा।

महापुरुष माधवदेव (1489ई.- 1596ई.)- इनका जन्म असम के लखीमपुर ज़िले के लेटेपुखुरी नामक ग्राम में हुआ। जिस प्रकार शंकरदेव ने भारतवर्ष के बड़े भू- भाग का भ्रमण करके देश की एकता अखण्डता में अपना योगदान दिया ठीक उसी प्रकार आगे उनके सुयोग्य शिष्य माधवदेव ने इस कार्य को आगे बढ़ाया। इस कार्य के लिए माधवदेव ने भी 'ब्रजावली' भाषा का सहारा लिया। उन्होंने ब्रजावली भाषा में 'वरगीत' और 'नाटकों' की रचना की। इन रचनाओं का मुख्य उद्देश्य वैष्णव धर्म का प्रचार-प्रसार और अपने गुरु श्रीमंत शंकरदेव के एक भारत के लक्ष्य को पूरा करना था।

गोपालदेव आता (1541ई.-1611ई.)- महापुरुष माधवदेव से इनकी भेंट भवानीपुर में हुई। माधवदेव द्वारा दिए गए भक्ति व्याख्यान को सुनकर इनका हृदय भाव विभोर हो उठा और वे माधवदेव के शिष्य हो गए। इन्होंने महापुरुषिया मत की एक नई शाखा स्थापित की और अपने गुरु के आदर्शों को आगे बढ़ाया। इन्होंने विभिन्न पौराणिक नाटकों की रचना

की। नाटकों के अतिरिक्त अनेक गीत एवं पदों की रचना की।

मध्यकाल में पूर्वोत्तर भारत में इन विद्वानों के अतिरिक्त भी अनके ऐसे विद्वान हुए जिनकी रचना साहित्यिक दृष्टि से बहुमूल्य है। इन सभी विद्वानों की साहित्यिक रचना में हिंदी पूर्वोत्तर के राज्यों में स्थापित हुई। रामचरण ठाकुर, भूषण द्विज, दैत्यारि ठाकुर, श्रीराम आता, रामानंद द्विज, विश्वंभर द्विज, आदि ऐसे विद्वान हुए जिनकी रचनाओं के माध्यम से हिंदी का प्रचार-प्रसार पूर्वोत्तर के राज्यों में हुआ।

पूर्वोत्तर में आधुनिक कालीन हिंदी

पूर्वोत्तर में हिंदी का औपचारिक रूप से प्रवेश वर्ष 1934ई. में हुआ, जब अप्रैल माह में महात्मा गांधी 'अखिल भारतीय हरिजन सभा' की स्थापना हेतु असम आए। सत्राधिकार एवं स्वतंत्रता सेनानी श्री पीताम्बर देव गोस्वामी के आग्रह पर गांधी जी ने 'बाबा राघव दास जी' को हिंदी प्रचारक के रूप में असम भेजा। 3 नवम्बर 1938ई. में 'असम हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना गुवाहाटी में हुई। आगे चल कर इसे 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' नाम दिया गया। असम के स्कूलों में हिंदी प्रारम्भ करने के उद्देश्य से जोरहाट, गोलाघाट, शिवसागर, डिब्रूगढ़ आदि जगहों पर हिंदी स्कूलों की स्थापना की गई। यद्यपि इन स्कूलों में हिंदी की पढ़ाई होती थी, परंतु परीक्षाएँ इलाहाबाद या वर्धा में जाकर ही देनी पड़ती थी। 1948ई. से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा के अधीन न रहकर स्वतंत्र रूप से अपनी परीक्षाओं को आयोजित करने लगी। 1970ई. में उत्तर गुवाहाटी में एक हिंदी महाविद्यालय खोला गया। इसके ठीक अगले वर्ष यानी 1971ई. में गुवाहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी स्नातकोत्तर स्तर पर पढ़ाई प्रारम्भ कर दी गई। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान समय तक अकेले असम में लगभग 3500 से ज्यादा माध्यमिक स्तर पर हिंदी शिक्षण के लिए विद्यालय स्थापित हो चुके हैं।

हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए यहाँ पूर्वोत्तर के पत्र-पत्रिकाओं का भी काफी योगदान रहा है। 'प्रकाश', 'नव जागृति', 'छात्र', 'दीप' 'असम प्रदीप' 'प्रभात' 'साहित्य सारथि' आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन अबाध गति से प्रवाहमान है।

इस युग के प्रमुख साहित्यकार हैं- 'कमल नारायण देव', 'रजनीकांत चक्रवर्ती', 'महेश्वर महंत', 'बापचन्द्र महंत', 'डॉ. हीरालाल तिवारी', 'अशोक वर्मा','सुरेन्द्र सिंह', 'शुभदा पाण्डे', 'डॉ. शांति थापा', आदि। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्वोत्तर में हिंदी का प्रचार-प्रसार काफी तीव्र गति से हुआ है।

मणिपुर में हिंदी- यह राज्य भारत की पूर्वी सीमा पर अवस्थित है एवं पड़ोसी देश म्यांमार से सीमा साझा करता है। जिस कारण सुरक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। भारत की एकता और अखंडता को मज़बूती प्रदान करने के लिए भाषा के स्तर पर एक होना भी मायने रखता है। इस उद्देश्य से 1953ई. में 'मणिपुर हिंदी परिषद्' की स्थापना इम्फाल में हुई, जो अपने स्तर पर मणिपुर में हिंदी प्रचार-प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है।

नागालैण्ड में हिंदी वर्ष 1951- 52 में असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति द्वारा नागालैण्ड में हिंदी का प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ। हिंदी के साधक एवं महात्मा गांधी के परम भक्त श्री पी.टी. जामीर दीमापुर के निवासी थे। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन नागालैण्ड में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। नागालैण्ड राज्य के विश्वविद्यालयों में पाँचवीं कक्षा से आठवीं कक्षा तक हिंदी तृतीय भाषा के रूप में पढ़ाई जाती है। सन् 1980 से नागालैण्ड की हिंदी पाठ्यपुस्तकों में गुणात्मक सुधार किया गया। ये पुस्तकें पाँचवीं से आठवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों को पढ़ाई जाती हैं।

मेघालय में हिंदी- 20 जनवरी, 1972ई. को मेघालय, असम से अलग होकर एक पूर्ण राज्य बना। वर्ष 1976ई. में हिंदी संस्थान के शिलॉन्ग केन्द्र की स्थापना हुई। ईसाई मिशनरियों के माध्यम से यहाँ अंग्रेजी का वर्चस्व रहा है। तथापि केंद्रीय हिंदी संस्थान शिलॉन्ग के महत्त्वपूर्ण योगदान से हिंदी की स्थिति बनी हुई है। रेडियो स्टेशन शिलॉन्ग से हिंदी गाने प्रसारित किए जाते हैं जिसके माध्यम से हिंदी में अच्छी खासी रुचि पैदा होती है।

त्रिपुरा में हिंदी-वर्ष 1972ई. के पहले त्रिपुरा असम का ही एक अंग था। जिस कारण यहाँ हिंदी का प्रचार-प्रसार असम के साथ ही होने लगा। त्रिपुरा विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग है। जिससे पता चलता है कि वहाँ के लोग हिंदी पठन- पाठन के प्रति सचेत हैं।

अरुणाचल प्रदेश में हिंदी- यह भारत के पूर्वी सीमांत पर अवस्थित है, जिस कारण इसे 'सूर्योदय की भूमि' कहा जाता है। अरुणाचल प्रदेश एक ऐसा राज्य है, जिसकी सीमाएँ तिब्बत, म्यानमार देशों के साथ प्राय: 1300 कि.मी. व्याप्त हैं। इस दृष्टि से इस क्षेत्र का काफी महत्त्व है। सरकारी कामकाज अंग्रेजी में चलता है परंतु नई पीढ़ी के लोगों में हिंदी ही ज्यादा प्रचलित है। खुशी की बात यह है कि अरुणाचल प्रदेश में लोगों के बीच सम्पर्क भाषा हिंदी है। इस

राज्य में हिंदी को लेकर किसी भी प्रकार की विरोध भावना नहीं है।

मिजोरम में हिंदी– प्रारम्भ में यहाँ हिंदी का प्रचार–प्रसार असम के साथ ही हुआ क्योंकि मिजोरम असम का ही एक छोटा ज़िला था। परंतु असम से अलग होने के बाद यहाँ हिंदी प्रसार के लिए अनेक संस्थाएँ कार्यरत हैं।

सन् 1975ई. में केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा के सहयोग से 'मिजोरम हिंदी प्रशिक्षण संस्थान, आइजोल' की स्थापना हुई। जहाँ हिंदी विकास के लिए अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। जैसे दो वर्षीय हिंदी शिक्षण डिप्लोमा आदि।

इसके अतिरिक्त 'मिजोरम हिंदी टीचर्स एसोसिएशन', 'मिजोरम हिंदी प्रचार समिति, आइजोल', आदि संस्थान कार्यरत हैं।

सिक्किम में हिंदी– भारत के उत्तरी सीमा पर अवस्थित यह प्रदेश अपनी प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण होने के कारण पर्यटन के लिए विशेष महत्त्व रखता है। सिक्किम में हिंदी विद्यालयों के माध्यम से, सिनेमा, दूरदर्शन आदि हिंदी के प्रचार–प्रसार में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ

इन सब के अतिरिक्त पूर्वोत्तर के राज्यों में हिंदी भाषा को ले कर काफी चुनौतियाँ भी हैं। अहिंदी भाषी क्षेत्र होने के कारण ग्रहण योग्यता को लेकर समस्या आती हैं। शुद्ध हिंदी बोलने के दबाव की वजह से गैर हिंदी भाषी सार्वजनिक मंच पर हिंदी बोलने में कतराते हैं। पूर्वोत्तर के सबसे महत्त्वपूर्ण राज्य असम में हिंदी को लेकर कोई बड़ी समस्या नहीं दिखाई पड़ती क्योंकि असमिया भाषा में अत्यधिक शब्द संस्कृत के होने के कारण हिंदी सीखने व समझाने में कुछ सुविधा होती है। मणिपुर में भी कमोबेश यही स्थिति है। यहाँ भी हिंदी सम्पर्क भाषा के रूप में जगह बना ली है। मेघालय में विश्वविद्यालय स्तर पर हिंदी का विकास हुआ है परंतु सम्पर्क भाषा के रूप में यहाँ हिंदी आज तक विकसित नहीं हो पाई है। हालाँकि केंद्रीय हिंदी निदेशालय एवं अन्य हिंदी प्रचार संस्थाओं द्वारा कार्यशाला, संगोष्ठी का आयोजन किया जाता है अत: यह उम्मीद की जा सकती है कि आने वाले समय में मेघालय में हिंदी की स्थिति बेहतर होगी। मिजोरम में हिंदी का काफी प्रचार–प्रसार हुआ है। यहाँ भी हिंदी की स्थिति संतुलित है। इसके अतिरिक्त पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों– नागालैण्ड, अरुणाचल, त्रिपुरा, सिक्किम में हिंदी का भविष्य विकासोन्मुख है। इस सम्बन्ध में वर्तमान सरकार भी काफी सक्रिय है। फरवरी 2020 में गुवाहाटी विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना के स्वर्ण जयंती वर्ष के अवसर पर 'हिंदी की स्थिति– चुनौतियाँ और संभावनाएँ' विषय पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन हुआ। इस तरह से अनेक कार्यक्रम सरकारी तथा गैर– सरकारी संस्थानों के द्वारा समय–समय पर आयोजित किए जाते हैं। देश के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के हिंदी विभाग में भी पूर्वोत्तर को लेकर एक सक्रियता दिखाए पड़ने लगी है। देश के प्रमुख विश्वविद्यालयों में पूर्वोत्तर के विषयों पर शोध कार्य करवाए जाते हैं, जिसका लाभ आने वाली पीढ़ी को मिलेगा।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2000
2. भारतीय साहित्य की भूमिका, डॉ. रामविलास शर्मा
3. महापुरुष शंकरदेव ब्रजबुलि ग्रन्थावली, सं. लक्ष्मीशंकर गुप्त
4. महाकवि शंकरदेव: विचारक एवं समाज सुधारक, डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद 'मागध', हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय
5. माधवदेव व्यक्तित्व और कृतित्त्व, कृष्ण नारायण 'मागध'
6. पूर्वांचल प्रदेश में हिंदी भाषा और साहित्य, डॉ. सी.इ. जीनी
7. पूर्वोत्तरीय राज्यों में हिंदी साहित्यलेखन का इतिहास, हरेराम पाठक, अनंग प्रकाशन, दिल्ली
8. पूर्वोत्तर भारत: अतुल्य भारत, वीरेंद्र परमार, हिंदी बुक सेंटर नई दिल्ली– 110002
9. उत्तर– पूर्व भारत का इतिहास, राजेश वर्मा, मित्तल पब्लिकेशन, दरियागंज दिल्ली– 110002
10. पूर्वोत्तर भारत के सांस्कृतिक आयाम, वीरेंद्र परमार, मित्तल पब्लिकेशन, दरियागंज दिल्ली– 110002

– अनंत मिश्र
शोधार्थी, हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली– 110007

हिंदी भाषा और पूर्वोत्तर भारत : कल, आज और कल

–मीनाक्षी

पूर्वोत्तर भारत वर्तमान में आठ राज्यों से मिलकर बना है। सिक्किम को छोड़कर अन्य सात राज्यों को 'सात बहनें' के नाम से भी जाना जाता है। यह 'सात बहनें' की संज्ञा सर्वप्रथम असम के एक सिविल सेवक ज्योति प्रसाद साइकिया ने दी थी। पूर्वोत्तर भारत में संपर्क भाषा के रूप में हिंदी भाषा का प्रयोग होता रहा है किंतु इसके अतिरिक्त यहाँ पर विभिन्न भाषाओं और बोलियों का प्रचलन है जैसे असमिया नेपाली, मणिपुरी, बांग्ला, गारो, खासी, लेपचा आदि। मुनीन्द्र मिश्र लिखते हैं कि– "पूर्वोत्तर भारत एक भाषाई क्षेत्र है जहाँ विभिन्न भाषा परिवारों यथा भारोपीय, साइनो तिब्बतन, ताई कादाई, आग्नेय समूह की 220 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं।"

'वर्ल्ड लैंग्वेज डाटाबेस' के 22वें संस्करण इथोनोलॉज के अनुसार विश्व में सबसे अधिक बोली जाने वाली 20 भाषाओं (जिसमें छः भारतीय भाषाओं को भी स्थान मिला है) में हिंदी तीसरे स्थान पर है संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को शामिल किया गया है, जिसमें हिंदी, असमिया, बोड़ो, मणिपुरी, बांग्ला भी आती हैं। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार– "हिंदी विश्व की महान भाषा है।" ऐसा माना जाता है कि जिस भाषा की लिपि देवनागरी होती है उस भाषा के माध्यम से हिंदी का प्रचार–प्रसार किया जा सकता है। जैसे अरुणाचल प्रदेश की भाषा 'मोनपा', 'मिजि' और 'अका', असम में 'मिरि', 'मिसमि' और 'बोड़ो', नागालैण्ड में 'अडागी', 'सेमा', 'लोथा', 'रेग्मा', 'चाखे तांग फोम' तथा 'नेपाली' है, सिक्किम में– 'नेपाली', 'लेपचा', 'भडपाली', 'लिम्बू' आदि भाषाओं की लिपि देवनागरी है। देवनागरी लिपि के संदर्भ में प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी लिखते हैं कि– "देवनागरी लिपि पूर्वांचल की भाषाओं के लिए अधिक उपयुक्त है। देवनागरी की एक विशेषता है कि इन भाषाओं की ध्वनि प्रक्रिया को देवनागरी लिपि में समायोजित किया जा सकता है। देवनागरी लिपि की विस्तृत वर्णमाला में भारत की अनेक भाषाओं की ध्वनियों को उसके भीतर समेटा जा सकता है और समेटा भी गया है। यह लिपि पूर्वांचल की भाषाओं को एक सूत्र में बाँध सकती है और इससे पूर्वांचल की भाषाओं तथा संस्कृतियों का प्रसार और विकास होगा।"

पूर्वोत्तर भारत अहिंदी भाषी क्षेत्र है। संविधान सभा में संविधान बनाते समय भारत के दक्षिण और पूर्वोत्तर राज्यों को भाषाई आधार पर गैर हिंदी मानते हुए इन्हें 'ग' श्रेणी में रखा गया था किन्तु व्यावहारिक तौर पर ऐसा नहीं है। यहाँ के लोग पर्याप्त मात्रा में हिंदी भाषा बोलते और समझते हैं। आर. के. सिन्हा अपनी पुस्तक 'बात बोलेगी हम नहीं' में लिखते हैं कि– "इन राज्यों में सेना सुरक्षा के जुड़े हुए जवान व्यापार के लिए हिंदी क्षेत्रों से जाकर इन राज्यों में बस जाने वाले व्यापारी, पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार से काम के सिलसिले में आठ राज्यों में आए हुए मजदूरों के कारण यहाँ हिंदी भाषा का प्रचार–प्रसार हुआ।"[1]

इस प्रकार प्रो. गिरीश्वर मिश्र 'मातृभाषा हमारा अधिकार है' (हिंदी समय) में लिखते हैं कि– "भाषा की सत्ता उसके प्रयोग से बनती है और उससे आदमी इस कदर जुड़ जाता है कि वह उसके अस्तित्व की निशानी बन जाती है।"[2]

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी भाषा के प्रचार–प्रसार को लेकर बजरंग बिहारी तिवारी का मानना है कि– "हिंदी का प्रचार–प्रसार महात्मा बुद्ध के द्वारा पूर्वोत्तर में हुआ था। साथ ही शंकरदेव और माधवदेव आदि के द्वारा भी पूर्वोत्तर में हिंदी के प्रचार–प्रसार पर महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई लेकिन स्वतंत्रता संग्राम के समय में पूर्वोत्तर में हिंदी का प्रसार महात्मा गांधी के समय से माना जा सकता है।"[3] अतः पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की शुरुआत औपचारिक रूप से सन् 1934ई. में हुई जब महात्मा गांधी ने असम में 'अखिल भारतीय हरिजन सभा' की स्थापना की और एक जनसभा में अपने संबोधन से लोगों को हिंदी सीखने के लिए कहा। उस दौरान माजुली के एक सत्राधिकार श्री श्री पीतांबर देव गोस्वामी जी ने बताया कि– "यहाँ हिंदी सिखाने वालों की

कमी है, अतः इसकी व्यवस्था हो जाए तो हम हिंदी शिक्षण- प्रशिक्षण के कार्यक्रम को शुरू कर सकते हैं।"[4] उनके इस आग्रह पर महात्मा गांधी ने बाबा राघव दास को हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य सौंप कर असम भेजा।

बाबा राघव दास ने असम पहुँच कर कुछ हिंदी भाषी लोगों को हिंदी शिक्षण के लिए नियुक्त किया जिसमें मुख्य रूप से जोरहाट से अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी, डिब्रूगढ़ से शिव सिंहासन मिश्र, शिवसागर से सूर्यवंसी मिश्र, नवगाँव से देवेन्द्र दत्त शर्मा, गुवाहाटी से धनेश्वर शर्मा और गोलाघाट से बैकुंठनाथ सिंह थे। ये प्रशिक्षित अध्यापक तो नहीं थे किंतु असमिया भाषा जानते थे और व्याकरण अनुवाद पद्धति उनका माध्यम था। उस दौरान कुछ असमिया युवक-युवतियाँ 'काशी विद्यापीठ' जैसे राष्ट्रीय संस्थान में अध्ययन के लिए गए। जिसमें नवीनचंद्र कलिता, खर्गेश्वर मजूमदार का नाम उल्लेखनीय है। बाबा राघवदास के आश्रम में रजनीकान्त चक्रवर्ती और हेमकांत भट्टाचार्य जी हिंदी सीख रहे थे। बाद में नवीनचन्द्र जी भी आ गए। फिर इन तीनों को राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा द्वारा संचालित 'हिंदी अध्यापन मंदिर' में प्रशिक्षण के लिए भेजा गया। इन तीनों को ही असम में हिंदी- शिक्षण का पुरोधा माना जा सकता है। प्रशिक्षण समाप्त कर श्री नवीनचंद्र कलिता जी को गुवाहाटी, श्री रजनी कान्त चक्रवर्ती जी को शिवसागर और हेमकांत भटटाचार्य जी कोनगाँव के प्रचारक के रूप में नियुक्त किया गया। इन महानुभावों के उत्साह और प्रेरणा से ही पूर्वोत्तर भारत के विद्यालयों में हिंदी भाषा की नींव पड़ी।

असम

सन् 1938ई. में 'हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना गुवाहाटी में हुई थी। बाद में उसे 'असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के नाम से जाना जाता है, जो आज भारत के श्रेष्ठ हिंदी स्वैच्छिक संस्थानों में से एक है। डॉ. श्रुति पांडेय के अनुसार- "पूर्वोत्तर में हिंदी साहित्य एवं संवेदना के विकास का केंद्र मुख्यता असम ही रहा है। श्री कमल नारायण देव, डॉ. वीरेंद्र कुमार बरुआ, डॉ. मणिकांत कांपती, और डॉ. हरीशचंद्र देव शर्मा जैसे विद्वानों ने असमिया तथा हिंदी साहित्य को करीब लाने में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके साथ ही डॉ. हीरालाल तिवारी और डॉ. कृष्ण नारायण प्रसाद मागध इत्यादि के प्रयास से भी हिंदी साहित्य का विकास क्षेत्र में स्थायित्व प्राप्त कर सका।"

असम के न्यू बोगाईगाँव नामक जनपद मुख्यालय में बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में 31वीं वाहिनी पी.ए.सी. के सेनानायक डॉ. अजित कुमार सिंह ने पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के प्रयोग एवं व्यवहार के सम्बन्ध में अपना अनुभव साझा करते हुए कहा कि- "पूर्वोत्तर भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति लगाव में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। बोंगाई- गाँव, कोकराझार, धुबरी, रंगिया, गौहाटी एवं शिलॉन्ग में ही नहीं वरन् दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में भी हिंदी बोलनेवाले और समझनेवाले पर्याप्त संख्या में मिले। ....पूर्वोत्तर भारत में हिंदी समझने एवं जानने वाले तथा बोलने वाले की संख्या पर्याप्त है। हमारी वाहिनी के कर्मचारीगण जो मात्र हिंदी भाषी थे, वे दूरस्थ वन क्षेत्रों तक में नियुक्त थे। बाज़ार से सामान क्रय करने एवं एक-दूसरे की भावनाओं के आदान- प्रदान में उन्हें कहीं भी निराश नहीं होना पड़ा"।

पूर्वोत्तर राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में 'केन्द्रीय हिंदी संस्थान' का योगदान उल्लेखनीय है। इसके तीन केन्द्र गुवाहाटी, शिलॉन्ग तथा दीमापुर अपने- अपने कार्य क्षेत्रों के राज्यों में हिंदी के प्रचार-प्रसार के विशेष कार्यक्रम चलाकर हिंदी शिक्षण-प्रशिक्षण के क्षेत्र में कार्यरत हिंदी अध्यापकों के लिए आवश्यकतानुसार एक सप्ताह से लेकर चार सप्ताहों की लघु अवधी के नए पाठ्यक्रमों का संचालन करते हैं। इन पाठ्यक्रमों के माध्यम से अध्यापक भाषा-शिक्षण की पद्धतियों का ज्ञान प्राप्त कर अपने स्कूलों में उन विद्यार्थियों को हिंदी पढ़ाते हैं जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है तथा पूर्वोत्तर के विद्यार्थियों को हिंदी सीखते समय होने वाली कठिनाइयों का समाधान किस प्रकार किया जाए, इसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुवाहाटी केन्द्र के कार्यक्षेत्र असम, अरुणाचल प्रदेश एवं सिक्किम, शिलॉन्ग के केन्द्र का कार्यक्षेत्र मेघालय, त्रिपुरा एवं मिजोरम और दीमापुर के केन्द्र का कार्यक्षेत्र नागालैण्ड एवं मणिपुर है।

मणिपुर

मणिपुर में हिंदी के प्रचार-प्रसार का कार्य वर्ष 1928ई. में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' के द्वारा प्रारम्भ हुआ और उसके बाद कुछ वर्षों के पश्चात् यहाँ 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' वर्धा ने अपनी शाखा खोल दी। वर्ष 1953ई. में 'मणिपुर हिंदी परिषद्', इम्फाल की स्थापना हुई तथा एक वर्ष के पश्चात् सन् 1954ई. में इस संस्था ने हिंदी की परीक्षाएँ लेना प्रारंभ किया। इसकी स्थापना की शुरुआत श्री मणिस्ना शर्मा शास्त्री द्वारा बुलाई गई बैठक से हुई, जिसमें नीलवीर शास्त्री, भागवत देव शर्मा और चन्द्रमणि सिंह आदि उपस्थित थे। मणिपुर की दूसरी संस्था 'मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' है। मणिपुर में हिंदी के प्रचारक के रूप में जिन लोगों का नाम लिया जाता है वे इस प्रकार है- लाइयुम ललित माधव शर्मा, टी.वी. शास्त्री फु. गोकुलानंद, एन. तोम्बीसिंह, हेमाम

नीलमणि सिंह, अरिबम पंडित राधा मोहन शर्मा, क. हिमाचार्य शर्मा, एस. नीलवीर शर्मा शास्त्री, अरिबम घनश्याम शर्मा, राधागोविंद थोङाम, कालाचाँद शास्त्री, नन्दलाल शर्मा, नवीन चाँद, सिजगुरुमयुम लाइमयुम नारायण शर्मा, फिराइलात्पम पंडित जगदीश शर्मा और द्विजमणि देव शर्मा। इसके अतिरिक्त मणिपुर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई और वहाँ पर हिंदी में पीएच.डी. भी कराई जाती है और वहाँ पर पुस्तकालय की भी व्यवस्था की गई है। हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु संगोष्ठियाँ भी आयोजित की जाती हैं और उसमें हिंदी के विभिन्न विद्वानों को उनके वक्तव्य सुनने के लिए आमंत्रित किया जाता है। "पूर्वोत्तर भारत के राज्यों में मणिपुर ऐसा राज्य है, जिसने हिंदी भाषा और उसके साहित्य का स्वागत राष्ट्रीय अस्मिता और राष्ट्रीय आवश्यकता के संदर्भ में किया है। हिंदी एक भाषा ही नहीं है बल्कि वह भावात्मक एकता को प्रवाहित करने वाली धारा है। इसी भावना के फलस्वरूप मणिपुर में आज ऐसे सैंकड़ों छोटे-बडे हिंदी लेखक- लेखिकाएँ हैं, जो पूरे अधिकार के साथ हिंदी भाषा में मातृभाषा की तरह साहित्य रचना करते हैं। मणिपुरी भाषी हिंदी लेखक अपने सृजनात्मक साहित्य द्वारा हिंदी साहित्य की परंपरा के अंतर्गत एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाते जा रहे हैं। वहाँ पर हिंदी में मौलिक सृजन भी हो रहा है तथा अनुवाद कार्य भी चल रहा है। साथ ही हिंदी की कई पत्रिकाएँ जैसे महीप, कुंदोपरेड्, युमशकैश, लटचम आदि प्रकाशित हो रही हैं।"

कुछ लेखकों ने हिंदी में मौलिक लेखन, पाठ्य-पुस्तक निर्माण, मौलिक रचनात्मक लेखन, अनुवाद के साथ हिंदी पत्रकारिता का कार्य शुरू किया तथा वहाँ के वाचिक साहित्य को भाषांतरित कर हिंदी में प्रस्तुत किया।

नागालैण्ड

नागालैण्ड में हिंदी के प्रचार-प्रसार के कार्य के लिए 'नागालैण्ड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' कार्यरत है। यहाँ पर असमिया तथा हिंदी के मेल- जोल से तैयार समन्वित भाषा का चलन समय के साथ बढ़ता जा रहा है। जिसे नागालैण्ड के लोग 'तेञीदिए' के नाम से पुकारते हैं और अंग्रेजी के ग्रंथों की देखा- देखी में 'नागामीज' कहा जाता है। इसमें मौसम, प्रार्थना, अंग आदि अनेक हिंदी शब्दों का प्रयोग होता है तथा हिंदी फिल्मों के संवादों तथा गानों में प्रयुक्त शब्दों का चलन भी बढ़ता जा रहा है। 'केन्द्रीय हिंदी संस्थान', नागालैण्ड द्वारा वर्ष 1972ई. में प्रमुख हिंदी सेवक ब्रज बिहारी कुमार के द्वारा शिक्षक प्रशिक्षण शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें प्रतिवर्ष नागालैण्ड से बीस- तीस हिंदी अध्यापक आगरा आकर प्रशिक्षण के बाद अपने यहाँ 'हिंदी के राजदूत' बनकर लौटते हैं। उसके पश्चात् सन् 1992-1998ई. के बीच 'केन्द्रीय हिंदी संस्थान' ने हिंदी शिक्षण डिप्लोमा पाठ्यक्रम की पाठ्य-पुस्तक का संशोधन एवं परिवर्द्धन करके उसकी पाण्डुलिपि प्रकाशन के लिए नागालैण्ड सरकार को सौंप दी। नागालैण्ड शिक्षा बोर्ड ने कक्षा 9वीं से कक्षा 10वीं तक के लिए हिंदी पाठ्यपुस्तकों के निर्माण हुआ। उसके पश्चात् के. फ्योखामो लोथा को 'हिंदी-अंग्रेजी-लोथा शब्दावली और शब्दकोश' बनाने के लिए प्रेरित किया तथा कार्य सम्पन्न होने पर उसको प्रकाशित करने के लिए सहमति दी और अंगामी द्विभाषी शब्दकोश भी प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त प्रसारण के लिए 'नागालैण्ड' राष्ट्रीय प्रसारण कार्यक्रम तैयार करता है। हिंदी के साधक एवं महात्मा गांधी के परम भक्त श्री पी.टी. जामीर (दीमापुर)ने अपना सम्पूर्ण जीवन नागालैण्ड में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित कर दिया। विद्या भारती नागालैण्ड के कुछ वर्ष अध्यक्ष भी रहे हैं और राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से सम्मानित भी हुए हैं, जिसमें उन्हें भारत के राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री 'भाऊराव देवरस राष्ट्रीय सम्मान' भी मिला है।

मिजोरम

मिजोरम में हिंदी के प्रचार का कार्य श्री दारछोना के द्वारा प्रारंभ हुआ। 'केन्द्रीय हिंदी संस्थान' ने सन् 1998-99ई. में वहाँ के हिंदी सीखने वालों की सुविधा के लिए 'हिंदी- लुशाई शब्दकोश' का निर्माण किया जो कि प्रकाशित हो चुका है। संस्थान के द्वारा मिजोरम राज्य की पाँचवीं कक्षा से लेकर आठवीं कक्षा तक की पाठ्यपुस्तकों का संशोधन कार्य भी सम्पन्न किया तथा उनकी पाण्डुलिपियाँ राज्य सरकार को सौंप दी। मिजोरम में संस्थान की हिंदी की प्रोफेसर डॉ. इंजीनियरी जेनी ने 'पूर्वांचलीय हिंदी साहित्य' पर शोध कार्य किया तथा आर.एल.थनमोया एवं ललथलमुआनो द्वारा 'हिंदी- मिजो शब्दकोश' प्रकाशित हुआ।

मेघालय

मेघालय में हिंदी के प्रचार-प्रसार के लिए वर्ष 1976ई. में हिंदी संस्थान के शिलॉन्ग केन्द्र की स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त शिलॉन्ग में ही हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु एक राष्ट्रभाषा विद्यालय भी खोला गया और यहाँ के विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्ति की भी व्यवस्था की गई। हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु विभिन्न क्रियाकलापों के माध्यम से इसने काफी लोकप्रियता हासिल की। मेघालय की अन्य स्वैच्छिक संस्थाओं में 'मेघालय हिंदी प्रचार परिषद', शिलॉन्ग और

'पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी' भी आती हैं। इसमें 'पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी' की स्थापना सन् 1990ई. में हुई और इसे सन् 2003ई. में सरकारी मान्यता प्राप्त हुई। यह संस्था परिचय, प्रथमा और प्रवेशिका का शिक्षण कराती है। संस्थान ने मेघालय के सरकारी स्कूलों के पाँचवीं कक्षा से आठवीं कक्षा तक की पुस्तकों का निर्माण किया है। 'केंद्रीय हिंदी संस्थान आगरा' से डॉ. रमा सूद और डॉ. मीरा सरीन द्वारा संपादित 'हिंदी- खासी द्विभाषी कोश' प्रकाशित है।

त्रिपुरा

त्रिपुरा में हिंदी के प्रचार-प्रसार हेतु 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' वर्धा द्वारा 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति', धर्मनगर की स्थापना की गई। इसके लगभग दस केंद्र संचालित हैं। यहाँ पर प्राथमिक, प्रारंभिक, प्रवेश, परिचय परीक्षाएँ होती हैं। इसके अतिरिक्त 'त्रिपुरा राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' एक अन्य संस्था है। त्रिपुरा विश्वविद्यालय (जो अगरतला में स्थापित किया गया) में हिंदी विभाग है। रामेन्द्र कुमार पाल ने हिंदी प्रचारक के रूप में उल्लेखनीय कार्य किए हैं। वर्तमान में पूर्वांचल में सौ से भी ज्यादा हिंदी विद्यालयों का संचालन हो रहा है। जहाँ बहुत से छात्र-छात्राएँ हिंदी में अपनी पढ़ाई पूरी कर रोज़गार भी प्राप्त कर रहे हैं।

अरुणाचल प्रदेश

अरुणाचल प्रदेश में सम्पर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग होता है तथा सरकारी कामकाज के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग होता है नई पीढ़ी के लोगों में हिंदी ही ज्यादा प्रचलित है। 14 सितंबर, 1974ई. को वहाँ के मुख्यमंत्री श्री खुंगन की उपस्थिति में 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना की। इसके अतिरिक्त लखीमपुर में 'राष्ट्रभाषा महाविद्यालय' की शुरुआत हुई। उसके अंतर्गत कोविद एवं रत्न की परीक्षा होती है। अरुणाचल प्रदेश 'हिंदी समिति' हिंदी की अन्य स्वैच्छिक संस्था है। 'राजीव गांधी विश्वविद्यालय' की स्थापना भी की गई। वर्ष 1956ई. में 'नेफा' में केन्द्र सरकार के प्रशासनिक आदेश के द्वारा विद्यालयों में हिंदी पढ़ाना अनिवार्य कर दिया गया। डॉ. जोराम यालम नाबम द्वारा रचित कहानी संग्रह 'साक्षी है पीपल' अरुणाचल के साहित्यकार द्वारा हिंदी में किया गया पहला सृजनात्मक प्रयास है। जिसमें समाज में व्याप्त अरुणाचल की स्त्रियों के जीवन संघर्षो को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया है। वीरेंद्र परमार के अनुसार- "अरुणाचल की 25 प्रमुख जनजातियों की अलग- अलग भाषाएँ हैं लेकिन सभी लोग संपर्क भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करते हैं, यहाँ तक की विद्यालयों महाविद्यालयों में भी माध्यम भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग किया जाता है।"

ईटानगर के युवाकवि एवं अध्यापक श्री तारो सिंदिक व डॉ.जोराम आन्य ने भी हिंदी के प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में कार्य किया।

सिक्किम

सन् 2007ई. में सिक्किम में 'केंद्रीय विश्वविद्यालय' की स्थापना और 'नॉर्थ ईस्ट रीजनल लैंग्वेज सेंटर' के माध्यम से 'लिंग्विस्टिक एँड कल्चरल डॉक्यूमेंटेशन ऑफ सिक्किम'से हिंदी के प्रचार-प्रसार में बढ़ोत्तरी हुई। कुछ स्कूल ऐसे स्थापित हुए थे जिनमें हिंदी पढ़ने-पढ़ाने का कार्य शुरू हुआ। पर्यटन में निरंतर विकास को देखते हुए लोगों ने हिंदी सीखने का प्रयत्न किया।

इसके अतिरिक्त कुछ समाचार- पत्रों की शुरुआत भी हुई हिंदी भाषा का पहला पत्र डिब्रूगढ़ से श्री विश्वेश्वर दत्त शर्मा द्वारा संपादित प्रकाश सन् 1919ई. में निकला, परंतु हिंदी पत्रकारिता में एक क्रांतिदेखने को मिलती है सन् 1939ई. में जब नव जागृति तथा उसके बाद अकेला, नवीन समाज, शंखनाद, पूर्व ज्योति, रणभेरी, जागृति, जय हिंद इत्यादि पत्रों का प्रकाशन प्रारंभ होता है। मणिपुर से कामाख्या न्यूजलेटर आधुनिक जैसे पत्रों का प्रकाशन हुआ। असम के गुवाहाटी से प्रकाशित समाचार पत्र दैनिक पूर्वोदय, पूर्वांचल प्रहरी, प्रातः खबर, सेंटिनल, सिचलर से प्रकाशित प्रेरणा भारती, अरुणाचल से प्रकाशित अरुणभूमि का प्रकाशन हुआ। इसके अतिरिक्त अरुण प्रभा, अरुण ज्योति, मेघालय दर्पण, रूपांजलि, श्रोता वाणी, पूर्वाशा आदि पत्र- पत्रिकाएँ है।

सरकारी एवं गैर- सरकारी सभी कार्यालयों में हिंदी के प्रयोग में काफी वृद्धि देखने को मिल रही है। कुछ संस्थाएँ जैसे नागरी लिपि प्रचार सभा इंफाल, मणिपुर ट्राइबल्स हिंदी सेवा समिति, शब्द भारती, ईटानगर साहित्य सभा और अरुणाचल नागरी संस्था आदि से भी हिंदी का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया एवं प्रिंट मीडिया में भी हिंदी का प्रयोग मिलने लगा। प्राचीन काल में महापुरूष शंकरदेव तथा उनके समसामयिक अन्य रचनाएँ ब्रज भाषा में हुई। इस प्रकार पूर्वोत्तर राज्यों में हिंदी का संपर्क पूर्वोत्तर की सभी भाषाओं के साथ देखने को मिलता है। कमलापति त्रिपाठी के अनुसार- "हिंदी भारतीय संस्कृति की आत्मा है।"

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की शुरुआत किस प्रकार हुई और समय-समय पर उसका विकास किस प्रकार हुआ इसके बाद यह समझना भी आवश्यक है कि आने वाले समय में

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी की क्या स्थिति होगी अथवा क्या होनी चाहिए।। इस पर विचार करते हुए सुश्री एल डिंपल देवी का मानना है कि- "हिंदी भाषा शिक्षण के माध्यम से छात्रों में सांस्कृतिक बोध विकसित किया जाए। हिंदीतर प्रदेशों में छात्रों के लिए हिंदी भाषा शिक्षण का पहला सोपान संभाषण है। प्रथम भाषा के रूप में हिंदी का प्रयोग करने वालों के साथ विद्यार्थियों का सम्पर्क बढ़ाया जाय तथा हिंदी भाषी व्यक्तियों के साथ सजीव संपर्क स्थापित करने की सुविधा विद्यार्थियों को उपलब्ध कराई जाए।"

इस प्रकार पूर्वोत्तर भारत के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में डॉ. विद्याश्री का मानना है कि- "व्यक्तित्व वाले मनुष्य का ज्ञान ही तेजस्वी बन जाते हैं, यह ज्ञान के विस्फोट का युग है। आगामी युग की चुनौतियों को स्वीकार करने के लिए पूर्वोत्तर भारत के विद्यार्थी हिंदी भाषा- शिक्षण में भाषा और पाठेतर साधन दोनों के माध्यम से ज्ञान का विस्तार करके ही आगे बढ़ सकते हैं। " डॉ. महीप सिंह का मानना है कि- "पूर्वोत्तर भारत में कौन से लेखक हिंदी में सृजन- कार्य कर रहे हैं, उनकी क्या कठिनाइयाँ हैं, इसकी पूरी जानकारी महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय एवं केंद्रीय हिंदी संस्थान को होनी चाहिए।"

अत: यह कहा जा सकता है कि हिंदी का प्रचार-प्रसार प्रारंभ होने से लेकर अभी तक उसका विकास हो रहा है। राष्ट्र के विकास एवं एकता के लिए हिंदी का विश्व स्तर पर प्रचार-प्रसार होना चाहिए। पूर्वोत्तर की भाषाओं के साहित्य का हिंदी अनुवाद, हिंदी में पुस्तक लेखन, पुस्तक प्रकाशन, शब्दकोश निर्माण, संगोष्ठी, पत्रकारिता, फिल्म, संगीत और रंगमंच आदि से जो हिंदी का विकास हुआ उसमें तीव्रता होनी चाहिए। हिंदी को अधिक रोज़गार उन्मुख बनाना चाहिए और हिंदी में सृजन कार्य कर रहे लोगों एवं उनके सृजन कार्य की जानकारी भी होनी चाहिए।

सहायक ग्रंथ सूची

पुस्तकें

1. पूर्वोत्तर भारत का इतिहास, सदानीरा प्रकाशन, लखनऊ, 1998
2. पूर्वोत्तर भारत : लोक और समाज, आलोक सिंह (संपा.), सर्व भाषा ट्रस्ट, 2021
3. हिंदी भाषा की परंपरा : प्रयोग और संभावनाएँ, दयानिधि मिश्र (प्रधान संपा), वाणी प्रकाशन।
4. मोदी- शाह मंजिल और राह, आर के सिन्हा, प्रभात प्रकाशन, 2020
5. बात बोलेगी हम नहीं, आर के सिन्हा, प्रभात प्रकाशन 2021

पत्रिकाएँ

1. समन्वय पूर्वोत्तर, डॉ. कमल किशोर गोयनका (संरक्षक), प्रो. नंद किशोर पांडेय (प्रधान संपा.), त्रैमासिक पत्रिका, जुलाई- दिसंबर 2019
2. समन्वयपूर्वोत्तर, डॉ. कमलकिशोरगोयनका (संरक्षक), प्रो. नंदकिशोर पांडेय (प्रधानसंपा.), त्रैमासिकपत्रिका, अक्तूबर- दिसंबर 2011
3. नई धारा, डॉ. शिवनारायण (संपा.), द्विमासिक साहित्यिक पत्रिका, 12 दिसंबर 2014
4. हिंदुस्तानी भाषा भारती, सुधाकर बाबू पाठक (संपा), त्रैमासिक हिंदी पत्रिका, जनवरी- जून 2019
5. भाषा (पत्रिका), सितंबर- अक्तूबर 2020, द्विमासिक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, भारत सरकार।
6. Indian Streams Research Journal] Monthly Multidisciplinary Research Journal] July 2013
7. GYA NKUNJ BBS COLLEGE JOURNA L] December] 2018
8. डॉ. अमरनाथ, हिंदी के लिए लड़ने वाला सबसे बड़ा योद्धा महात्मा गांधी, मीडिया मंच।
9. श्रीमती मनोहरमयुम यमुना देवी, मणिपुर के हिंदी साहित्य में राष्टीय तत्त्व, राजस्थान साहित्य अकादमी।
10. जाकिर हुसैन, पूर्वांचलीय भाषा, हिंदी और देवनागरी लिपि, प्रयास।

देश को जोड़ती हुई पूर्वोत्तर की हिंदी

–सूर्यप्रकाश

भाषा किसी समाज की अस्मिता का प्रतीक होती है। भाषा भावों और विचारों को प्रकट करने का एक मात्र उत्कृष्ट साधन है। भाषा ही किसी समाज को मूर्त रूप प्रदान करती है भाषा वह साधन है जिसके द्वारा हम अपने विचारों को व्यक्त कर सकते हैं और इसके लिए हम वाचिक ध्वनियों का प्रयोग करते हैं। भाषा मुख से उच्चारित होने वाले शब्दों और वाक्यों आदि का वह समूह है जिनके द्वारा मन की बात बताई जाती है। किसी भाषा की सभी ध्वनियों के प्रतिनिधि स्वर एक व्यवस्था में मिलकर एक सम्पूर्ण भाषा की अवधारणा बनाते हैं। हम जब भाषा का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि एक निश्चित भूखण्ड में भी बोलने वालो की भाषा में अंतर पाया जाता है।

'तीन कोस पर पानी बदले
चार कोस पर बानी।'

इस तरह की उक्ति भाषा के संदर्भ में सुनने को मिलती है। समाज में भाषा के चलन पर गौर करें तो देखते हैं कि भाषाई ध्वनियों, संकेतों, प्रतीकों के आधार पर कुछ न कुछ समानता मिल ही जाती है। दुनिया में समाज अपनी भाषा, बोली, क्षेत्रीयता रंग रूप में वैविध्य रखते हुए भी भेदरहित है।

"दुनिया भर की भाषाओं, संस्कृतियों और कई अनुभवों में यदि भिन्नता के साथ समानता के भी कुछ तत्त्व हैं, तो इसका अर्थ है किसी भी भाषा की कोई एक सीमित पारिवारिक विरासत नहीं है। हर भाषा की एक मिश्रित बहुभाषाई विरासत है।"

मनुष्य जाति ने भाषा का प्रयोग भावों को प्रकट करने के लिए ही किया। अपने अनुभवों को प्रकट करने के लिए जिन भाषाई तत्त्वों का प्रयोग किया वह आज समूचे विश्व में फैला हुआ है।

"मनुष्य जाति जहाँ- जहाँ थी, इसने विश्व के अपने अनुभवों को मूलतः भाषा की ध्वनियों में ही प्राप्त किया था। भाषा की ध्वनियों के साथ ये अनुभव एक दिशा से दूसरी दिशा में और कई दिशाओं में गए। एक जगह की संस्कृति दूसरी जगह गई।

पूर्वोत्तर भारत जिसका कालांतर में प्राग्ज्योतिषपुर (पूर्वोत्तर का सांस्कृतिक नाम) नाम है। अपनी वैविध्य पूर्ण संरचना में यह क्षेत्र विविधता लिए हुए सांस्कृतिक संपन्न रहा है। इस क्षेत्र का अवलोकन ही ऐतिहासिक है।

"ज्ञान की सरणी का ब्रह्मपुत्र पार करना ही ऐतिहासिक है। ब्रह्मपुत्र महाबाहु है। महाबाहु का मतलब है बड़ी भुजाओं वाला, शक्तिशाली और बलवान।"

पूर्वोत्तर भारत का जो मूल्य बोध है वह भारतीयता का समन्वयक है। पूर्वोत्तर भारत अपनी संस्कृति अपने उत्सव-त्यौहारों में भारतीय सांस्कृतिक परंपराओं को ही संचालित करता है।

"पूर्वोत्तर भारत की जनजातियों के मूल्य-बोध भौगोलिक रूप से इस एक जैसे ईशान क्षेत्र में भारतीयता को जोड़ने वाला मूल्य बोध है। सिक्किम से लेकर अरुणाचल तक और नागालैण्ड से लेकर त्रिपुरा तक अनेकानेक भाषाओं, बोलियों, समुदायों, नृत्य-संगीत, वनस्पतियाँ, वन्यजीवों, पारिस्थितिक विविधताओं, लोक-संस्कृतियों और रीति-रिवाजों को जीता हुआ यह प्रदेश मूलतः उत्सव धर्मी है। इसका टोन और टनर फेस्टिवल है।"

यह क्षेत्र अनेकों संभावनाओं से परिपूर्ण है। इस क्षेत्र का अवलोकन अत्यंत आवश्यक है। यदि भारतीयता को समझना है उसके होने के कारणों को जानना है तो इस क्षेत्र में कई अनुसंधान की आवश्यकता है।

भारतवर्ष में पूर्वोत्तर भारत ऐसा क्षेत्र है, जहाँ पर सर्वाधिक भाषिक एवं सांस्कृतिक विविधता है। समस्त भारतवर्ष में ऐसा दूसरा भाग नहीं है, जहाँ पर इतनी अधिक भाषिक एवं सांस्कृतिक विविधता हो। यही कारण है कि पूर्वोत्तर भारत में भाषा एवं सांस्कृतिक अनुसंधान एवं इन भाषिक एवं सांस्कृतिक पहचान को स्थापित करने की असीम संभावनाएँ हैं।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी के उत्स की खोज करें तो पाते हैं कि यहाँ कथाओं, पुराणों के माध्यम से हिंदी का परिचय मिलता है। पूर्वोत्तर भारत में पौराणिक, आध्यात्मिक, एवं दैविक पूजा पद्धतियों का समुच्चय है। यहाँ सूरज, चांद आदि को दैवीय स्वरूप की संकल्पना के पीछे बहुत से आख्यान हैं। पूर्वोत्तर अपनी पूजा पद्धति में भी विशिष्ट है। यहाँ सत्र, नामघर, समानता की कसौटी तैयार करते हैं।

महाभारत में नाग जाति तथा ऐसी कुछ जातियों का उल्लेख है, जो उत्तर-पूर्वी भारत की थी। यह मिथ है, इसे इतिहास नहीं कहा जा सकता, लेकिन उत्तर- पूर्व के भारत का शेष क्षेत्रों से एक पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

पूर्वोत्तर भारत में भारतीय बोध के तत्त्व पहले से ही विद्यमान थे परंतु भाषा के आगमन से यहाँ के लोगों को भारत के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में संपर्क करना अत्यंत सरलता पूर्वक संभव हो सका।

पूर्वोत्तर भारत के अनेक राज्य हिंदी को केन्द्र सरकार की प्रतिनिधि भाषा समझते थे किंतु आज की स्थिति में पूर्वोत्तर भारत में कोई भी प्रदेश ऐसा नहीं रह गया है जहाँ के लोग हिंदी न समझते हों। इसलिए हिंदी को वाचिक तथा लिखित भाषा के रूप में समझने के लिए प्रचार-प्रसार करने की आवश्यकता है। "रवींद्रनाथ ठाकुर ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय के स्थापना समारोह में भाषण देते हुए कहा था कि "कली की एकता ही एकता नहीं होती खिले फूल की एकता में एकता होती है।"

पूर्वोत्तर में हिंदी का औपचारिक रूप से प्रवेश 1934ई. में हुआ, जब महात्मा गांधी जी अखिल भारतीय हरिजन सभा की स्थापना हेतु असम आए थे। उस समय गड़मूड़ (माजुली) के सत्राधिकार (धर्मगुरू) एवं स्वतन्त्रता सेनानी पीताम्बर देव गोस्वामी के आग्रह पर गांधी जी ने बाबा राघवदास को हिंदी प्रचारक के रूप में असम भेजा। 1938ई. में असम हिंदी प्रचार समिति की स्थापना गुवाहाटी में हुई। यह समिति आगे चलकर असम राष्ट्र भाषा प्रचार समिति बनी। आम लोगों में हिंदी भाषा तथा साहित्य के प्रचार-प्रसार करने हेतु- प्रबोध, विशारद, प्रवीण आदि परीक्षाओं का आयोजन इस समिति के द्वारा होता आ रहा है। जिस क्षेत्र को पूर्वोत्तर भारत के नाम से जाना जाता है उसमें असम सबसे बड़ा प्रदेश है। उसके बाद सिक्किम, नागालैण्ड, अरुणाचलप्रदेश, त्रिपुरा, मेघालय, मणिपुर और मिजोरम शामिल हैं। इस क्षेत्र में अनेक जनजातियाँ हैं तथा उनकी अलग-अलग भाषाएँ हैं और अनेक बोलियाँ है। इनमें बोडो, कछारी, जयंतियाँ, कोच, गारो, देउरी, रियांग, लापुंग, मिजो, खासी जामातिया, कार्बी, मिसिंग, निशी आपातानी इत्यादि महत्वपूर्ण हैं।

खुद हिंदी एक बहुभाषाई विरासत से बनी भाषा है। इसका कोई एक स्रोत नहीं माना जा सकता। हिंदी को संस्कृत से एक बड़ी विरासत हासिल हुई है, हिंदी एक विविधतापूर्ण विशाल क्षेत्र की साझी निर्मिति है। हम पौराणिक दुर्गा की निर्मिति से इस प्रक्रिया को थोड़ा- बहुत समझ सकते हैं। दुर्गा को बहुत से देवताओं ने अपने अस्त्र- शस्त्र देकर एक शक्ति के रूप में पैदा किया, हिंदी भी इसी तरह अस्तित्व में आई।

पूर्वोत्तर क्षेत्र में कई भाषा परिवार हैं विभिन्न देशों की सीमाओं से सटे होने के कारण यह क्षेत्र उन देशों की भाषा से प्रभावित हो जाता है। अनायास ही अन्य भाषी परिवार का इनकी भाषा से जुड़ाव हो जाता है। इस क्षेत्र में भारतीय- आर्यन परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं।

उत्तर- पूर्वी भारत के असम, मणिपुर और त्रिपुरा में मुख्य रूप से भारतीय- आर्य परिवार की भाषाएँ बोली जाती हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण बात है कि भारत के उत्तरी- पूर्वी हिस्से में जितनी भाषाई- सांस्कृतिक विविधता है, भारत के किसी क्षेत्र में नहीं है।

भारतीय परंपरा को समेटने का कार्य हिंदी ने किया है। यह परंपराएँ बोलियों के माध्यम से हिंदी से एक सूत्रता में जुड़ जाती है। लोकभाषाएँ हिंदी को समृद्ध बनाने का काम करती हैं। इसलिए विभिन्न बोलियाँ मिलकर हिंदी का निर्माण करती हैं।

संस्कृत ही नहीं भारत में कई अन्य भाषाएँ और लोकभाषाएँ भी प्राचीन काल से रही हैं। भारत कई महान परंपराओं वाला पुराना देश है। उन परंपराओं को समेटते हुए हिंदी धीरे-धीरे एक महत्त्वपूर्ण संपर्क भाषा के रूप में विकसित हुई है। हिंदी 'व्यापक संपर्क भाषा' के रूप में अभी भी लगातार विकसित हो रही है। हम यह उत्तर- पूर्व के लोगों की बातचीत में भी देख सकते हैं। निश्चय ही हिंदी को अन्य भारत की भाषाओं पर विजय पाकर या उनका स्थान छीनकर विकसित नहीं होना है बल्कि साथ-साथ विकसित होना है। जिससे हिंदी एक दिन उत्तर- पूर्व की 'व्यापक संपर्क भाषा' के रूप में भी अधिक स्वीकृति पाएगी। यदि यह समझने की कोशिश हो कि तिब्बती- बर्मी भाषा परिवार की भारतीय भाषाओं का संस्कृत की ध्वनियों से तथा एकदम भिन्न जान पड़ने वाली कई दूसरी भारतीय भाषाओं से गहरा सम्बन्ध है।

यदि हिंदी को और भी समृद्ध रूप में भारतीय देखना

चाहते हैं तो भाषा एवं बोली के विवाद समाप्त कर देना चाहिए क्योंकि यह बोली और भाषा की पृथकता की जो मांग करते हैं यह हिंदी को कमजोर रूप में देखने की संकल्पना है।

दो भारतीय भाषाओं के बीच सिर्फ भेद खोजने से बाज आना चाहिए। निश्चय ही भारत के उत्तर- पूर्वी राज्यों की भाषाओं को पहले दृढता से सभी स्तरों पर भारतीय भाषाएँ कहने की जरूरत है। फिर यह अनुसंधान करने की जरूरत है कि संस्कृत और अन्य भारतीय भाषाओं से इसके सम्बन्ध के वस्तुत: कौन से प्रमुख भाषा वैज्ञानिक सूत्र हैं।

ठीक इसी रूप में पूर्वोत्तर की भाषा के साथ भी किया जाता है वहाँ भी कई लोग सीधे- सीधे यह साबित करने पर लगे हैं कि पूर्वोत्तर भाषाएँ हिंदी से सम्बन्धित न होकर बल्कि अन्य विदेशी भाषाओं से सम्बन्धित है। इस तरह वहाँ की जनता को गुमराह करने का प्रयास किया जाता है परंतु वह लोग अब हिंदी की ताकत को समझने लगे हैं।

पूर्वोत्तर भारत की भाषाओं के कुछ कट्टरवादी विद्वान पृथकता दिखाने के लिए तिब्बती- बर्मी परिवार की भाषाओं पर आर्य- द्रविड़ भाषाओं का प्रभाव अस्वीकार करते हैं और कई बार मणिपुरी को भी 'तिब्बती- बर्मी' से जोड़ देते हैं। भाषा विज्ञान राजनीति का जितना अधिक अखाड़ा बनेगा, उसे वैज्ञानिकता से उतना हाथ धोना पड़ेगा। इस पृष्ठभूमि में यदि उत्तर- पूर्वी राज्यों की भारतीय भाषाओं के संस्कृति और अन्य भारतीय भाषाओं से सम्बन्ध का भाषा- वैज्ञानिक अध्ययन शुरू किया जाए और इस काम के दौरान उत्तर- पूर्वी क्षेत्र की भाषाओं के भाषावैज्ञानिक अंतर्सम्बन्ध की भी वस्तुपरक जाँच- पड़ताल हो तो इससे एक नई जमीन टूटेगी और चौंकानेवाले निष्कर्ष आएँगे।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी को जानने वाले और बोलने वालों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है। यहाँ के लोग हिंदी भाषा में अपनी परंपराओं का समावेश देखते हैं। हिंदी भाषा वर्तमान समय में पूर्वोत्तर की आवश्यकता बन चुकी है। पूर्वोत्तर भारत के लोगों को अन्य भाषी लोगों से संपर्क करने लिए हिंदी और अंग्रेजी इन दो भाषाओं में किसी एक का चयन करना होता था परंतु पूर्वोत्तर के लोग अब अंग्रेजी भाषा और पश्चिम की सभ्यता संस्कृति को छोड़ हिंदी का दामन पकड़ने लगे हैं। उन्हें हिंदी भाषा में अपनी परंपरा के सुरक्षित बचे रहने की संभावना दिखाई देती है।

आठ राज्यों के विभिन्न लोगों को आपस में संपर्क करने के लिए अंग्रेजी का या हिंदी का प्रयोग करना पड़ता हैं, किंतु कम शिक्षित समुदाय के लोग हिंदी का ही प्रयोग करते हैं। यहाँ के (पूर्वोत्तर भारत) कई विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए पूर्वोत्तर भारत के बाहर जाना पड़ता है। उन लोगों को बाहर के राज्यों के व्यक्तियों से संपर्क करने के लिए हिंदी भाषा अर्जित करना जरूरी हो जाता है।

भारत के उत्तर-पूर्व की भाषाओं का संस्कृत से भाषावैज्ञानिक सम्बन्ध प्राचीन काल से है और उनका सम्बन्ध हिंदी से भी है। उदाहरण के तौर पर नागालैण्ड की आम बोलचाल की भाषा नागामीज में हिंदी के शब्दों का धड़ल्ले से प्रवेश हुआ है। इसमें मौसम, प्रार्थना, अंग आदि कई शब्द नागामीज में हैं। हिंदी फिल्मों और गानों ने भारतीय भाषाओं की संरचना को खासकर बोलचाल के स्तर पर बहुत प्रभावित किया है।

उपनिवेशी विद्वानों ने सदा से ही पूर्वोत्तर के लोगों की भाषा को हिंदी से पृथक दिखाने के कई प्रयास किए जो लगातार जारी भी हैं।

"हमारे ज्ञानियों के समाज में शुरू से ही फर्क और पृथकता का अध्ययन औपनिवेशिक असर के कारण लोकप्रिय ज्यादा रहा है। भाषावैज्ञानिक क्षेत्र में व्यतिरेकी अध्ययन जितने हुए हैं, सादृश्यमूलक अध्ययन उसकी तुलना में काफी कम हैं। इससे यह झलकता है कि भारतीय भाषाओं के बीच भेद दिखाने वाले अध्ययन के मामले में उपनिवेशवादी सोच के विद्वानों ने बड़ी कर्मठता का परिचय दिया है पर सम्बन्ध दिखाने के मामले में भारतीय विद्वानों ने भाषाविज्ञान की शक्ति का बहुत थोड़ा इस्तेमाल किया है। यह स्थिति जितनी चिंताजनक है, उतनी ही चुनौतीपूर्ण भी है। भारतीय भाषा वैज्ञानिक इस चुनौती को स्वीकार कर भारत के उत्तर- पूर्व की भाषाओं में एवं अन्य भारतीय भाषाओं में समानता देखने का प्रयास करें, तो आज अलगाव की भयावह स्थिति से उबरा जा सकता है।"

हिंदी के प्रयोग को बढ़ाने के लिए मिजोरम में शैक्षणिक संस्थानों में अत्यधिक कार्य किए जा रहे हैं। केंद्रीय सरकार एवं राज्य सरकार दोनों ही इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। क्योंकि यहाँ के लोग अब हिंदी की आवश्यकता महसूस करने लगे हैं।

बड़े हर्ष की बात है, कि पिछले साल 2010 से मिजोरम के विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग की स्थापना की गई है, जिसके लिए मिजोउ समुदाय कई वर्षों से बाट जोह रहा था। वे जानने लगे हैं कि हिंदी के बिना व्यापार करना, व्यक्तित्व में निखार लाना, साहित्यिक रसास्वादन, अपने को भारतीय अनुभव करना तथा नवीन संस्कृति के प्रति जानकारी पाना असंभव है। राष्ट्रीय एकता के लिए हिंदी भाषा को

जानना जरूरी है, हिंदी के प्रति रूझान देखते हुए हिंदी स्पोकेन क्लास खुल गए हैं, जहाँ हजारों लोग बोलचाल की भाषा सीखकर बेझिझक हिंदी बोलने लगे हैं।

किसी भी भाषा को प्रचार-प्रसार के माध्यम से उसके प्रचलन में वृद्धि की जा सकती है इस पर पूर्वोत्तर के स्थानीय लोगों ने हिंदी के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान देना प्रारंभ कर दिया है। इसका सकारात्मक परिणाम भी पूर्वोत्तर के लोगों ने महसूस किया।

प्रचार-प्रसार के क्षेत्र में स्थानीय लोगों की भागीदारी होनी चाहिए। यह देखा गया है कि जब से स्थानीय लोग अपने बच्चों को हिंदी पढ़ाने लगे हैं, लोगों के विचार बदल रहे हैं। एक दिन ऐसा भी था कि कई कारणों से लोगों के मन में हिंदी के प्रति सकारात्मक भाव नहीं था। इसलिए हिंदी प्रचार-प्रसार में सही रूप में लोगों की आकांक्षा, रूचि एवं माहौल का ध्यान रखते हुए आगे बढ़ने की जरूरत है।

पूर्वोत्तर भारत में हिंदी प्राचीन काल से प्रचलन में रही है। भारतीय बोध हिंदी के रूप में समग्र देश में फैला है। पूर्वोत्तर भारत के संस्कार में हिंदी स्थित है। आज पूर्वोत्तर अपनी आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, धार्मिक परिस्थिति में हिंदी को संभावना के रूप में देख रहा है। इसलिए पूर्वोत्तर के लोगों को हिंदी आकर्षित कर रही है। क्योंकि हिंदी ही ऐसी भाषा है जो विभिन्न बोलियों व परंपराओं को अभिव्यक्त करने का कार्य कर रही है।

सूर्यप्रकाश
एम.फिल.शोधार्थी
हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
E-mail : surya3581@gmail.com

अक्षर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

E-mail : aksharpub211@gmail.com | Mob.: 9711255121

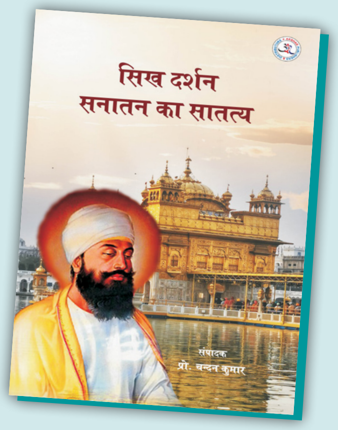

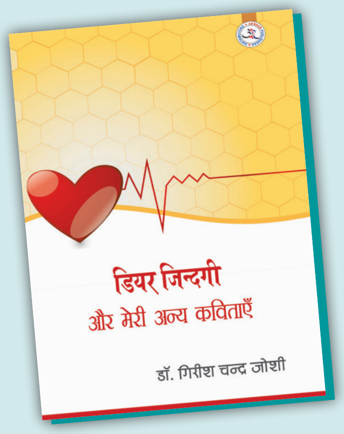

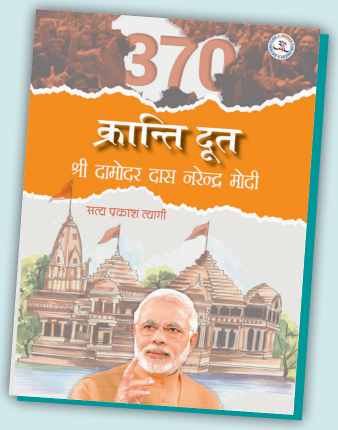

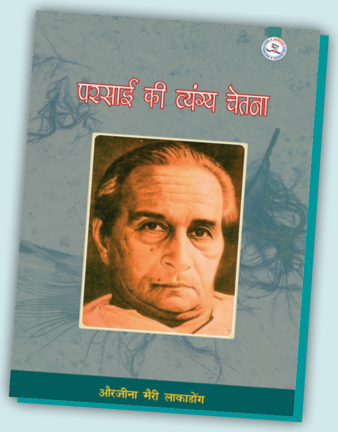

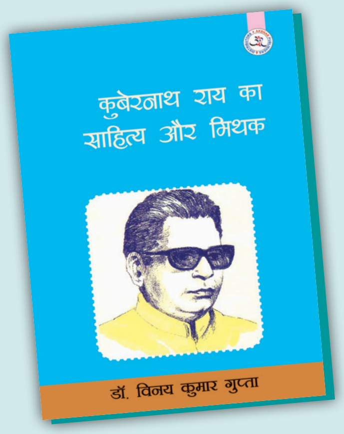

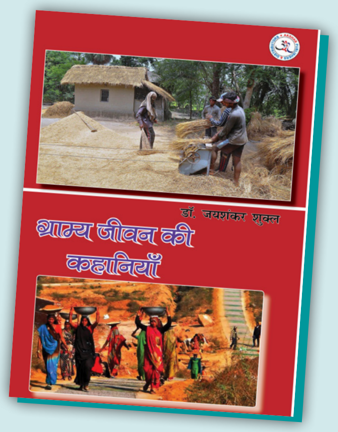

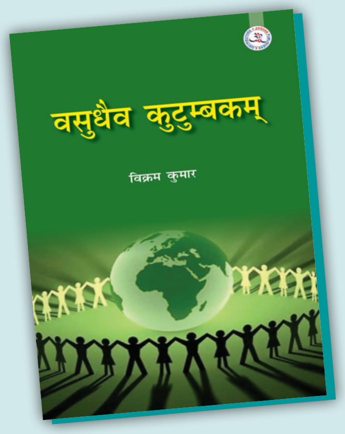

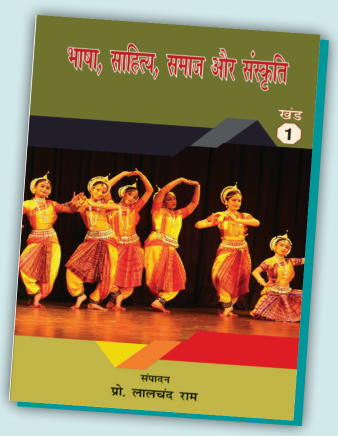

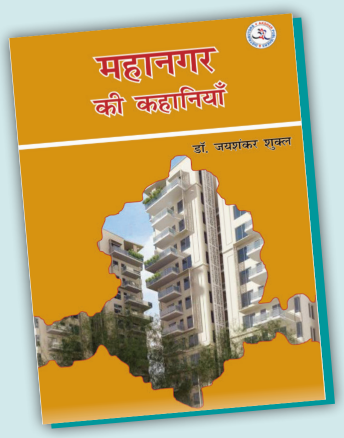

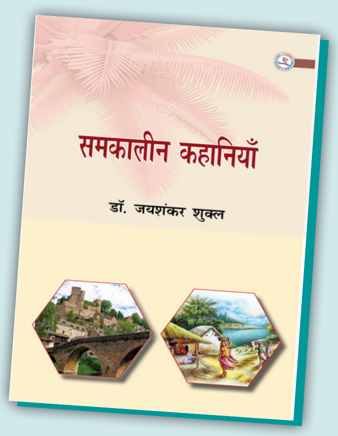

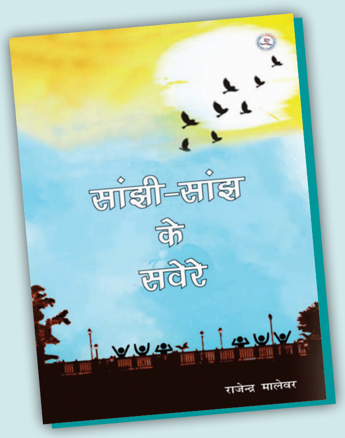

आज़ादी का
अमृत महोत्सव